

चौमासा

वर्ष-23 अंक-70
मार्च - जून, 2006

सम्पादक
डॉ. कपिल तिवारी

सहायक सम्पादक
अशोक मिश्र



आदिवासी लोक कला अकादमी
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
भोपाल का प्रकाशन

© स्वत्वाधिकार सुरक्षित

सम्पर्क
आदिवासी लोक कला अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्
मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल,
बाणगंगा, भोपाल-462003

मूल्य
एक प्रति बीस रुपये
वार्षिक पचास रुपये
आजीवन सदस्यता पन्द्रह सौ रुपये
चौमासा का वार्षिक शुल्क अनुषंग पुस्तिका के साथ सौ रुपये

प्रचार/प्रसार
श्रीमती उर्मिला पारखे / प्रवीण गावण्डे

आवरण
गोंड जनजातीय चित्र- श्री नर्मदा प्रसाद तेकाम

शब्दांकन
आदिवासी लोक कला अकादमी,
मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल

मुद्रण
शासकीय मुद्रणालय, भोपाल

चौमासा में प्रकाशित सामग्री लेकों के अपने कार्य और विचार हैं। आवश्यक नहीं कि अकादमी उससे सहमत हो।

पत्रिका और प्रकाशन से सम्बन्धित समस्त विवादों का न्यायालयीन कार्यक्षेत्र भोपाल रहेगा।

डॉ. कपिल तिवारी, निदेशक, आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, भोपाल सम्पादक, मुद्रक, प्रकाशक द्वारा शासकीय मुद्रणालय, अरेरा हिल्स, भोपाल से मुद्रित कराकर आदिवासी लोक कला अकादमी, मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद्, मुल्ला रमूजी संस्कृति भवन, आधार तल, बाणगंगा, भोपाल से प्रकाशित।

सम्पादक- डॉ. कपिल तिवारी

इस अंक में-

- तसव्वुफ की रूह / मौलाना रूमी और कबीर / आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी / 5
उज्जैन में सूफी संत व साधक / डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलू / 14
सूफी कलाम और संगीत / निसार अहमद / 34
वीर लोरिक शौर्यगाथा / डॉ. अर्जुनदास केसरी / 40
गाथाओं में कथात्मकता / डॉ. ओंकार सिंह चन्देल / 55
निमाड़ी लोकगीतों में वृक्ष / रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी' / 63
बुन्देली लोकगीत सैरा / गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त / 73
मुंडियारी गीत / डॉ. हरिसिंह पाल / 86
अवधी लोक साहित्य में लोरी / डॉ. हरिप्रसाद दुबे / 91
संत सिंगाजी के पद / अनिता राजपूत / 96
कुमाउँनी कहावतें / डॉ. शेर सिंह बिष्ट / 102
अरुणाचल की विवाह परम्परा / डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह / 107
वाराणसी की देव दीपावली / बी.एल.द्विवेदी / 115
चुनार की मृद् कला का स्वरूप / शिवप्रसाद 'कमल' / 118
उराँव जनजाति में करमा पर्व / निरंजन महावर / 121
अनुष्ठानिक नृत्य-गीत करमा / प्रो. अश्विनी केशरवानी / 127
निमाड़ का दर्शनीय स्थान मांधाता / गजानन वर्मा / 134
लोक-कलाओं में धर्म और समाज / डॉ. कीर्ति शर्मा / 138
लोक देवता गणीनाथ / मृदुल / 143
संस्मरण : महाराजपुर के बहाने / डॉ. सुरेश मिश्र / 150
साक्षात्कार : गोविन्दराम निर्मलकर से सुनील मिश्र की बात / 154
समीक्षा : लोक धरोहर का अनुपम संरक्षक / डॉ. हरिसिंह पाल / 163

साध्य-साधन विमर्श

तसव्वुफ़ की रूह : मौलाना रूमी और कबीर

आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी

‘तसव्वुफ़’ की रूह माने जाने वाले मौलाना रूम का पूरा नाम है- मौलाना जलालुद्दीन मुहम्मद अलवल्खी अर रूमी तथा संक्षिप्त नाम है- मौलाना रूम। एशियाई कोचक को उस समय रूम कहा जाता था। आपके पिता का नाम शेख वहाउद्दीन और वतन वलख था। मौलाना रूम योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। इनका जन्म 604 हिजरी (1207 ई. के 30 सितम्बर) में हुआ। जन्मभूमि वलख (ईरान) रही। तसव्वुफ़ की आँख माने जाने वाले मौलाना अत्तार ने आपके पिता से कहा कि इस अनमोल रत्न से गाफ़िल मत रहना।

मौलाना की प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता के योग्य शिष्य मौलाना सैयद बुरहानुद्दीन से मिली। फ़िक्का (मुसलमानों का धर्मशास्त्र) हदीस तथा तकसीर (कुरआन की टीका) में पारंगत होने के बाद मालिक-ए-हक़ीक़ी (अन्तर की विद्या) भी उन्हीं से प्राप्त की। यह सबकुछ था, पर मौलाना पर सांसारिक विद्याओं (अपरा विद्या) का ही रंग छाया हुआ था। वास्तव में पारमार्थिक जीवन का प्रथम अध्याय प्रसिद्ध सूफ़ी सन्त शम्स तबरेज़ की देखरेख में आरम्भ हुआ और अन्त तक चलता रहा। शम्स तबरेज़ के गुरु बाबा कमालुद्दीन जंदी ने उन्हें हुक्म दिया कि वे रूम जाएँ- वहाँ एक व्यथित हृदय है- उसे शान्ति दें। मौलाना वहाँ गए और हकीम सनाई (तसव्वुफ़ की दूसरी आँख) का निम्नलिखित शेर पढ़ा-

इल्म कज जो तुरा न विस्तानद।

जहल जाँ इल्म बेह बुवद विसियार ॥

अर्थात् उस इल्म से जो तेरा आपा और खुदी न छुड़ा दे, जहालत बहुत बेहतर है। शम्स का यह वाक्य सुनकर मौलाना ने उन्हें अपना गुरु बना लिया और मौलाना तसव्वुफ की रूह हो गए, जिसका प्रमाण उनकी मसनवी है। मसनवी की रचना अपने अप्रतिम सेवक हिसामुद्दीन चलपी के निवेदन पर की गई। निवेदन पर उन्होंने चन्द शेर फरमाए- जो इस प्रकार हैं- हिंदी रूपान्तर है-

सुन तो क्या करती है बातें बंसरी,
बस शिकायत कर रही है हिज्र की।
जब से काटा है नयस्ताँ से मुझे,
मर्दों जन रोते हैं मेरे शोर से।
पारा-पारा सीना चाहूँ अज फिराक
ता कहूँ मैं शरह दर्दे इश्तियाक ॥

अर्थात् सत्तनाम बसंती सुरत कहती है कि मैं जिस विपत्ति या वियोग में पड़ी हूँ यानी आदि से, जब से मैं (सुरत) अपने पति, कुल्ल-मालिक से बिछुड़ी हूँ, अब तक मुझ पर क्या-क्या गुजरी, उसका हाल मैं क्योंकर बयान करूँ? जो नाला (रोना-धोना) मर्द-ओ-जन कर रहे हैं- वह मेरे ही दर्द की कहानी है यानी मेरी आवाज से तमाम मर्द व औरत परेशान हैं। मैं चाहती हूँ कि मालिक दूरी और वियोग से मेरा दिल टुकड़े-टुकड़े होकर फट जाय और मेरा निर्मल सुरत अंग बरामद होकर उससे मिलने के दर्द का हाल साफ-साफ बयान कर सके।

इस तरह 'मसनवी-ए-मानवी' की शुरूआत हुई। मौलाना जामी ने इसके सम्बन्ध में कहा है-

मस्रवी-ए, मौलवी-ए मानवी,
हस्तकुर-ऑ-दर जुबाने पहलवी।
मन चे गोयम वस्फ ऑ आली जनाब,
नेस्त पैगम्बर वले दारद किताब।

अर्थात् मौलाना रूम की 'मसनवी मानवी' की जो पहलवी भाषा का कुरआन है- क्या तारीफ करूँ? मैं तो समझता हूँ कि वे यद्यपि पैगम्बर नहीं थे जिन पर कुरआन वाजिद हुआ किन्तु उनकी मसनवी जो पहलवी भाषा में है- कुरआन मालूम होती है।

सन्त शिरोमणि कबीर ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् 1455 (तदनुसार सन् 1398) को प्रकट हुए थे और एक लम्बी जीवन-यात्रा के बाद संवत् 1575 (सन् 1518 ई.) में अन्तर्हित हुए। इनका प्राकट्य स्थान काशी और अन्तर्धान स्थान मगहर (बस्ती) माना गया है। सन्तों-महापुरुषों के जीवनवृत्त के सम्बन्ध में किंवदन्तियों और जनश्रुतियों का ऐसा अम्बार लग जाता है कि सच क्या है- कहना कठिन हो जाता है। मौलाना रूम के विषय में भी ऐसा ही है।

कबीर संस्कारी व्यक्ति थे- अतः स्वार्थ-केन्द्रित तमाम दीवालों को तोड़ते हुए या नजरअंदाज करते हुए अपने सद्गुरु श्री रामानन्द की देखरेख में शीघ्र ही मंजिल पा ली। उन्होंने अपनी जीवन-यात्रा से संसार के समक्ष यह मान्यता स्थापित कर दी कि मानवता के विरुद्ध खड़ी होने वाली दुर्दान्त हैवानियत का समुचित जवाब भौतिक वर्चस्व नहीं, नैतिक वर्चस्व भी उतना नहीं-केवल आध्यात्मिक वर्चस्व या बल ही दे सकता है। काल या मृत्यु से भयमुक्त कोई कर सकता है तो वह आध्यात्मिक बल ही है। इस बल को पाने में सबसे अधिक बाधक बनता है- आपा (अहंकार) और आसक्ति (घर)। कबीर ने ऊर्ध्वबाहु घोषणा की-

आपा मेट जीवत मरैं सो पावै करतार।

xxx

कबिरा खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ।

जो घर फूँका आपणा, चले हमारे साथ ॥

वे निर्भय होकर मंजिल तक की यात्रा में बाधक बनने वाले समग्र दुस्तत्त्वों का खण्डन करते थे, स्वार्थ-केन्द्रित दीवालों को तोड़ते थे। दम्भ, पाखण्ड, रूहानियत से शून्य शरीरयत या कर्मकाण्ड का जमकर विरोध करते थे। दूसरी ओर मंजिल-यात्रा के साधक तत्त्वों की पक्षधरता करते थे। इन सबके साथ अपनी रूहानी चढ़ाई में आने वाले पार्यन्तिक तथा आन्तरालिक रहस्यमय अनुभूतियों का इजहार भी करते चलते थे।

इस प्रकार मौलाना रूम और कबीर-दोनों अपनी बानियों में प्रतिबिम्बित मान्यताओं और उपलब्धियों में अद्भुत साम्य रखते हैं। 'सारवचन' राधास्वामी वार्तिक, भाग-1 में माना गया है कि शम्स तवरेज और मौलाना रूम-दोनों पूर्ण एवं सच्चे फ़कीर थे। वहाँ सन्तों की कोटि में कबीर साहब का स्थान महत्त्वपूर्ण

माना है। इतना ही नहीं, परम्परा में तो इस धारा के आदिपुरुष के रूप में कबीर को ही माना जाता है। दोनों ही उफनते राग की प्रतिमूर्ति हैं। 'फलसफ़ा-ए-मुकरा' के लेखक सर अहमद हुसैन का मानना है कि सन्तमत भारत से ईरान गया और ईरान से शकल बदलकर तसव्वुफ़ के रूप में हिंदुस्तान आ गया।

परसियन विभाग की अध्यक्ष प्रो. (श्रीमती) शमीम अख्तर ने मौलाना रूम की निम्नलिखित पंक्तियों को ठीक ही रेखांकित किया है-

बशनौ अज़ नै चूँ हिक़ायत मी कुनद,
बज़ जुदाई हा शिकायत मी कुनद।
कज़ नेसताँ ता मरा ब-बुरीदा अन्द,
अज़ न फ़ीरम मरदो जन नालीदा अन्द ॥

इन पंक्तियों में कहा जा रहा है कि बाँसुरी, जो बाँसवाड़ी से काटकर अलग कर दी गई है- तब से वह निरन्तर रो रही है। कितनी हृदयवेधक व्यंजना है? इससे प्रस्तुत अर्थ यह निकलता है कि जबसे आत्मा अपने मूल उद्गम से यानी परात्पर सत्ता से बिछुड़कर इस संसार में आ फँसी है तब से वह दुःखी और रो-रोकर अपनी जुदाई की शिकायत कर रही है। सन्त प्रवर कबीर ने भी 'साखी' भरी-

उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनके से मिला तिनका तिनके पास ॥

अर्थात् यह प्रेम की आँधी है जिसने 'उनसे' बिछुड़े हुए तिनके को, सीमा में बँधी आत्मा को निःसीम कर मूल उद्गम से एकात्म कर दिया। कबीर को गहरी व्यथा है-

चकई जो निसि बिछुरै आई मिलै परमाति।
जो नर बिछुरै राम सौं ना दिन मिलै न राति ॥

मौलाना रूम और सन्त कबीर- इस मान्यता में उक्त पंक्तियों के साक्ष्य पर एक मत है कि जीवात्मा अपने मूल से विच्छिन्न उसी प्रकार व्यथित होकर रुदन कर रहा है जिस प्रकार बाँसवाड़ी से विच्छिन्न होकर बाँसुरी निरन्तर रोती रहती है। तात्त्विक दृष्टि से

यह मान्यता अद्वयवादी विचारधारा में ही संगत बैठती है।

तत्त्वचिन्तन (मौलाना रूम और कबीर)

कविराज पं. गोपीनाथ जी का कहना है कि क्रेमर, डोजी एवं सालि प्रभृति आचार्यों का मत है कि सूफी लोग अपने सिद्धान्त के लिए वेदान्त दर्शन के अत्यन्त ऋणी हैं। गेटे का भी यही पक्ष है। निकल्सन तथा गिव प्रभृति विद्वानों का विचार है कि सूफीमत का सादृश्य नव-प्लेटानिक मत के साथ है। पर स्वयं कविराज जी का विचार है कि सूफी सम्प्रदाय के सिद्धान्त और आचार-विशेष के साथ प्रत्यभिज्ञा, त्रिपुरा और गौड़ीय वैष्णव मत का सादृश्य परिदृष्ट होता है। भारत की ओर झुकाव शम्स तवरेज़ और मौलाना रूम का भी है।

मसनवी, दफ़तर दो (पृष्ठ 341-343) में मौलाना रूम एक कहानी के माध्यम से लिखते हैं- 'एक बुद्धिमान ने एक कथा के रूप में कहा कि हिंदुस्तान में एक ऐसा वृक्ष है जिससे किसी ने उसका मेवा खाया और प्राप्त किया, वह न कभी बूढ़ा हुआ न वह कभी मरा।' गुरु (शम्स तवरेज़) ने हँसकर कहा- 'हे भोले! यह वृक्ष विद्या का है और फकीरों एवं सन्तों के हृदय में छिपा है। यद्यपि वह एक है किन्तु उसके अनेक नाम एवं स्वरूप हैं।'

यह कहना अनावश्यक है कि सन्त कबीर की साधना 'सुरत शब्द योग' की है, न कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल द्वारा कथित नाथपंथियों से ली गई 'हठयोग' की। दोनों में अन्तर ही अन्तर है। हठयोगी की प्राण-साधना नाभि-देश से आरम्भ होती है जबकि सन्तों की दोनों नेत्रों के बीच भौंहों से। कारण, सुरत का वास वहीं है। हठयोग में सुषुम्णा का महत्त्व है, सन्तमत में बैकनाल का। हठयोग में षट्चक्र-वेध है, सन्तमत में अष्ट दल कमल का वेध है। हठयोग पिपीलिका मार्ग है जबकि सन्तों का विहंगम मार्ग है।

मौलाना रूम कबीर से शतकों पहले हुए, पर उनका मार्ग भी यही सुरत शब्द योग का मार्ग था। कारण, उन्होंने इसी 'सुरत शब्द योग' की ओर संकेत करते हुए कहा है- 'हजरत मुहम्मद साहब ने फरमाया कि उस परमसत् (हक़) की आवाज़ मेरे तक सदैव आ रही है किन्तु तुम्हारे कानों पर मुहर लगी हुई जिसके

कारण उस निरन्तर ध्वनित होने वाली ध्वनि को तुम नहीं सुन पा रहे हो। 'रूमी व कबीर' के लेखक डॉ. लल्लूराम सेठ ने इसकी संवादी उक्ति ढूँढ़ ली है-

गुप्त पैगम्बर के आवाज खुदा,
भी रसद दर गोशे मन हम चूँ सदा।
मुहरबर गोशे शुभ विनहाद,
हक़ ता ब- आवाजे खुदा न आरद सबक ॥-रूमी

इस प्रकार मौलाना रूम ने इस भारतीय साधना पद्धति से प्रभावित होने का संकेत 'मसनवी-मानवी' में अनेकत्र दिया है- परन्तु इसका श्रेय उन्होंने अपने गुरु शम्स तवरेज़ और हिन्दुस्तान को दिया है। अफ़लाक़ी के अनुसार मौलाना रूमी भारतीय साधना पद्धति (और तत्त्वदर्शन) से प्रभावित थे। (दरवेशेज, पृ. 270)

यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि 'सुरत शब्द योग' वैदिक काल में 'वाग्योग' के नाम से प्रचलित था- कविराज गोपीनाथ जी ¹ ने यह बात कही है। आध्यात्मिक तत्त्व अपनी प्रकृति में सार्वभौम होते हैं- साथ ही अनादि भी। किसी भी सन्त, महापुरुष या महात्मा द्वारा प्रकाश में ला दिया जाता है।

परात्पर सत्ता या तत्त्व की दृष्टि से सूफी अद्वैतवादी हैं। यह बात पहले कही जा चुकी है- 'आत्मा रूपी बाँसुरी अपनी जुदाई (विरह)' की शिकायत करती है- 'जबसे मुझे बाँसवाड़ी से काटा गया, उस समय से निरन्तर रो रही हूँ' अर्थात् जबसे आत्मा अपने मूल उद्गम परमात्मा से बिछुड़कर इस संसार में आ फँसी है, तबसे वह दुःखी है और रो-रोकर अपनी जुदाई की शिकायत कर रही है। कबीर की भी वेदना है-

सुखिया सब संसार है ख़ावै अरु सोवै।
दुखिया दास कबीर है जागै अरु रोवै ॥

वियोग, विच्छेद, अलगाव वहीं सम्भव है जहाँ योग, अविच्छेद और पूर्व में लगाव होता है। प्रश्न होता है कि क्या जीवात्मा अपने मूल उद्गम परात्पर सत्ता से एकात्म था? और था तो ऐसा होने में प्रमाण क्या है? प्रमाण है रस की चाह-ऐसे रस की जिससे तृप्ति मिले। भँवरा घूमता रहता है रस की चाह से,

योगी योगमग्न है- रस की चाह से, स्त्री पुरुष को और पुरुष स्त्री को चाहता है -रसाकांक्षा से। गरज यह कि चर-अचर, जड़-चेतना सभी अविश्रान्त हैं और मूल में है- रसाकांक्षा, जो तृप्त कर दे। पर देश और काल के चौखटे का रस सीमा का रस है- और यह सातिशय है- तरतम भावापन्न है, एक-से-एक बढ़कर है- वह न तो निरतिशय है और न ही नित्य। प्राणी चाहता इसी नित्य निरतिशय आनन्द को है।

देश-काल के चौखटे में ऐसा रस नहीं है- तब क्या यह मान लिया जाय कि यह चाह ही गलत है? चाह अनुभूत की होती है। जिसका अनुभव ही नहीं हुआ- उसकी कैसी चाह? आपाततः विरोध प्रतीत होने पर भी यह सत्य है कि उस निरतिशय रस का जब और जहाँ हमें अनुभव हुआ था- तब वहाँ न कोई काल था और न कोई देश। वही हमारी योग, अविच्छेद और मिलन की स्थिति या दशा थी। इसी के बाद यह वर्तमान अवस्था 'योगभ्रंश' अथवा 'विरह' की दशा है। कोई मापदण्ड चेतन-अचेतन में रस का है जिसके कारण देश-काल के चौखटे का रस हमें छोटा प्रतीत होता है- अतार्यक लगता है- अपनी प्यास बुझा नहीं पाता। कबीर और रूमी भी यही कहते हैं। योग दशा की वह अनुभूति सर्वथा विच्छिन्न नहीं है- अन्यथा उसकी चाह ही न होती- पर वह अस्पष्ट रूप में वियोग-काल में विद्यमान है। यदि वियोग सर्वात्मना हो गया होता- तो फिर मिलन की सम्भावना ही निःशेष हो जाती। फिर हमारा प्रयास निरर्थक जाता। मौलाना रूम कहते हैं- वियोग-पूर्व की स्थिति का अवहाल-

मकानम् ता-मकाँ बाशद निशागम् वे निशाँ बाशद।
न तने बाशद न जाँ बाशद के मन अज जाने जानम् ॥
(रूमी-दीवाने-ए-शम्स, नूतन भक्तमाल, पृ. 177)

वस्तुतः मेरा मकान (देश) ला-मकाँ-देशविहीन है और मेरा पता लापता में है। न मैं शरीर हूँ न प्राण अपितु मैं प्राणों का प्राण हूँ। सन्त कबीर भी मिलन की दशा का, अपने मूल रूप का विवरण देते हुए कहते हैं कि मेरी सारी विशेषताएँ मुझ पर थोपी हुई हैं- उपाधि हैं- मैं स्वयं निरुपाधि और केवल हूँ- और सच पूछो तो उपाधियाँ भी मुझसे अभिन्न हैं- उनसे मेरा द्वैत नहीं है। देखें-

जहँवा से आयो अमर वह देसवा ।
 पानी न पौन न धरती अकसवा, चाँद न सूर न रैन दिवसवा ।
 ब्राह्मण छत्री न सूद वैसवा, मुगल पठान न सैयद सेखवा ।
 आदि जोति नहीं गौर गनेसवा, ब्रह्मा, बिस्तु, महेस न सेसवा ।
 जोगी न जंगम मुनि दुरुवेसवा,
 आदि न अन्त नकाल कलेसवा ।
 दास कबीर ले आया संदेसवा,
 सार सबद गहि चलो उहि देसवा ॥

मौलाना रूम ने भी उस मूल दशा का नेति-नेति की इसी पद्धति से विवरण दिया है। उन्होंने बाँसुरी के अप्रस्तुत से बड़ी सटीक बात कही है-

विश्रौ अज नै चू हिकायत भी कुनद,
 बज जुदाई हा शिकायत भी कुनद ।
 कज नेस्तां ता मरा विबुरीदा,
 अन्द अज नकीरम मर्दो जल नालीदा अन्द ॥

अर्थात् बाँसुरी (जीवात्मा) कहती है- 'क्या ही खूब दिन थे वे, जब रात और दिन की सीमा से पहले दुःख और तकलीफ से रिक्त थे, खोजबीन (शोध) से भी मुक्त थे।' 'मसनवी मानवी' की ये पंक्तियाँ योग दशा का सुस्पष्ट विवरण प्रस्तुत करती हैं। इससे भी उनकी द्वयात्मक अद्वयवाद में आस्था व्यक्त होती है।

सवाल खड़ा होता है फिर हुआ क्या- जो यह दशा भंग हुई? उपनिषदें कहती हैं-

'स एकाकी नारमत । स द्वितीयमैच्छत्' इत्यादि ।
 'सोऽकामयत बहुस्याम्, प्रजायेय'

इस विच्छेदमयी सृष्टि के सन्दर्भ में सूफियों में भी एक हदीस प्रचलित है। कहा जाता है कि जब दाउद ने भगवान् से पूछा कि सृष्टि क्यों की गई। तो भगवान् ने उत्तर दिया-

"I was a headen Treasurer, therefore was I fain to be known, and so I created in order that I should be known."

अर्थात् मैं एक छिपा हुआ वैभव था और गोपन स्थिति में अकेले न रह सकने के कारण आत्मप्रकाश के लिए सृष्टि की। पर विरोध के या अभाव के बिना वह भाव रूप में आत्मप्रकाश कर कैसे सकता था? उन्होंने अपने स्वातन्त्र्य बल से एक विराट् अभाव, एक महाशून्य (Not seeing) का आविर्भाव किया। इस अभाव रूप दर्पण में भावमय का प्रतिबिम्ब पड़ा। यह अभाव प्रतिबिम्बित भाव ही विश्व है। इस अभावांश को दूर कर उभयात्मक मानव अपने भावमय मूल रूप में प्रतिष्ठित हो सकता है। इस अभावांश को दूर करने में एक मात्र बाधक है- अहम्, जिसके निवारण का सन्त और सूफी एक मात्र ढाई अक्षर के प्रेम को ही साधन मानते हैं। यह नफ्त या अहम् ही है जो दर्पण स्थानीय क्रल्व पर छाया हुआ है- उसे इश्क की आग ही जलाकर खाक कर सकती है। स्वच्छ क्रल्व के माध्यम से आशिक अपने माशूक का दर्शन पा सकता है- तब पुनः वियोगी या विरही योग अवस्था में आ जाता है।

उक्त चिन्तन या विचार के आलोक में मौलाना रूम और कबीर का तत्त्वदर्शन एक ही मालूम होता है- दोनों ही अद्वयवादी हैं- द्वयता उसकी शक्ति का ही विस्तार है- फलतः वह द्वयता उसी का आत्मविस्तार होने से न मिथ्या है और न ही उससे भिन्न। यह अद्वयवाद मायावादी नहीं, शक्तिवादी है। परमसत्ता शक्तिमान् है और तत्त्वतः शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। कहने में न वे भिन्न हैं और न अभिन्न। कबीर साहब कहते हैं-

साधो सतगुरु अलख लखाया-आप आप दरसाया ।
 बीज मधे ज्यों बिरछा दरसै, वृच्छा मध्ये छाया ।
 परमात्मा में आतम तैसे, आतम मद्धे गाया ।
 ज्यों नभ में सुत्र देखिए, सुत्र अण्ड आकारा ।
 निह अच्छर में अच्छर वैसे, अच्छर घर विस्तारा ॥

परमसत्ता स्वतंत्र है-कार्यमात्र में वह आत्म-सापेक्ष तथा अन्य-निरपेक्ष है- फलतः 'आप आप दरसाया'। जायसी ने भी कहा है-

'आपुहिं आप जो देखन चहा ।
 आपन प्रभुत आपु सों कहा ॥'

-पद्मावत

चौमासा 9

उक्त पंक्तियों में स्पष्ट रूप से कहा जा रहा है कि जैसे बीज में वृक्ष पहले से विद्यमान है उसी प्रकार परमसत्ता में तदितर प्रतीत होने वाला सबकुछ समाया है। निह अच्छर अर्थात् स्पन्दतात् में स्पन्दन की सम्भावना विद्यमान है और उसी अच्छर या स्पन्दन से समस्त विश्व का प्रसार है। मौलाना रूम भी मानते हैं कि मानवीय अस्तित्व में विभिन्नता इस भौतिक जगत् की विशेषता है- किन्तु आध्यात्मिक जगत् में ये अनेकों अस्तित्व अद्वैत में बदल जाते हैं-

तफ्रेका बरखेज दो शिककों दुई,
वहअदस्त अन्हर वजूदे मानवी

-रूमी, अफ्रकारे रूमी, पृष्ठ 282

मौलाना मानते हैं कि सृष्टि रचना के मूल में उसकी इच्छा ही है जिसके लिए उपादान कारक के रूप में उसकी दिव्य वाणी (अम्रेकुन) है। इसी के द्वारा सम्पूर्ण सृष्टि साकार होती है। रागमार्गी मौलाना रूम और कबीर की रूहानी चढ़ाई में एक मंजिल आती है- 'तौहीद' की- जहाँ साधक साध्य से अद्वैत (अनहलक) का अनुभव करता है। एक 'सर्व खल्विदं ब्रह्म' के स्वर में कहता है-

जैसे जलहिं तरंग तरंगिनि ऐसे हम दिखलावेंगे।
कहै कबीर स्वामी सुखसागर हंसहिं हंस मिलावहिंगे ॥

अथवा-

'जैसे बहु कंचन के भूषण'

ऐसे ही परात्पर सत्ता और आपाततः भिन्न प्रतीत तदितर तत्त्वतः एक ही हैं। इसी प्रकार वुजूदिया वर्ग कहता है- 'हम्मा ओस्त' (सबकुछ वहीं है) मौलाना भी कहते हैं-

ई मुनो माँ हमा यक जाँ शबन्द,
आकेवत मुस्तगरिक जाता शबन्द।

अफ्रकार-ए-रूमी

अर्थात् मैं और तू ही नहीं, बल्कि सब 'मैं' एक हो जाते हैं

और एक ही एकान्त में सब गुम हो जाते हैं और उसमें ही सब खो जाते हैं।

वह तत्त्व अपनी मूल प्रकृति में दो-'अलजात और अलसिफ़ात' का समरस रूप है। यह 'अल-जात' की ही 'सिफ़त' है कि वह विश्वात्मक परिणति लेता है। कबीर के यहाँ वह तत्त्व सुरत-शब्द का समरस रूप है। उन्होंने कहा है-

कबीर आधी साखि यह कोटि ग्रन्थ कर जान।
नाम सत्ति जग झूठ है, सुरति सब्द पहचान ॥

तुलसी साहब ने भी कहा है-

'सुरति सब्द के भेद बिनु, होय न पूरन काम'

सन्त पलटूदास ने भी कहा है-

'सुरति सुहागिन उलटि के मिली सबद में जाय'

सन्तों और मौलाना सूफी रूमी के मन्तव्यों को दार्शनिकों ने अत्यन्त तर्कसंगत ढंग से रखा है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की एक रचना है-'बलाका'। उसमें कबीर और रूम के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा गया है-

'नाहि रात्रि दिन मान आदि अन्त परित्राण,
से ऊतले गीत गान किछु नाहिं बाजे।'

मनुष्य का पूर्व इतिहास बताते हुए कहा जा रहा है कि जो अहंता उसके भीतर विकास प्राप्त है अथवा विकासोन्मुख है- उसका प्रथम उन्मेष भी जब लक्षित नहीं हुआ था, तब वह कहाँ था? वह कौन सी अवस्था है? उसका स्वरूप क्या है? इन्हीं प्रश्नों का उत्तर देते हुए कवि कह रहा है- वह अव्यक्त पद है, वहाँ 'मैं' और 'तुम' का भेद नहीं है। जहाँ आलोक नहीं, अन्धकार भी नहीं है- किसी भी प्रकार का द्वन्द्व नहीं- उसका मानवीय भाषा में वर्णन नहीं किया जा सकता..... उस चिर नीरव गम्भीर प्रशान्त समुद्र में न जाने किस अनिर्वचनीय स्वभाव की प्रेरणा से एक दैव मुहूर्त में स्पन्दन उठा। जैसे ही स्पन्दन उठा - वैसे ही अव्यक्त के गर्भ में 'मैं' का उदय हुआ। 'मैं' उठा 'तुम' भी उठा- अव्यक्त

रूप में भगवान् अप्रकाश है- अहन्ता के साथ-साथ वे स्वप्रकाश हुए। जब तक वे अपने में स्वयं डूबकर एकाकी रहते हैं तब तक अपने को ही नहीं देखते अथवा नहीं जानते। यह एक प्रकार की निद्रा है। महादेवी ने भी कहा है-

छिपाए थी कुहरे में नींद,
काल का सीमा का विस्तार
एकता में अपनी अनजान
समाया था सारा संसार ॥

(महादेवी-साहित्य खण्ड-1, पृ. 172)

इस निद्रा का भंग ही उनका आत्म-परिचय या आत्म-बोध है, 'मैं' की उत्पत्ति है। साथ-साथ महाशून्य में आनन्दमयी ज्योतिर्मयी सृष्टि की धारा रहती है।

इस दर्शन का अधिक विस्तार न करते हुए यहाँ मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि प्राक्-सृष्टि परमसत्ता, जो द्वयात्मक अद्वय रूप है- स्पन्दातीत और विश्वोत्तीर्ण थी। सृष्टि की इच्छा हुई स्पन्दातीत सस्पन्द हुआ- निःअच्छर अच्छर दशा में आया, फिर उसमें समाया हुआ क्षर या छर बाहर फूट पड़ा। सन्तजन तथा सूफी भी इस स्पन्दन को धुनि या सबद कहते हैं। यह ध्वनि ज्योतिर्मय है। मौलाना रूम कहते हैं- 'तेरा प्रकाश सब वस्तुओं के साथ ही साथ मिला हुआ है और सबसे अलग भी है'-

नीस्त अन्दर बहरे सिकों पेंच,
लैक वा अहनल च गोयम हेच हेच।

मसनवी, दफ्तर-6, पृष्ठ 208

कबीर तो परासत्ता को कनक से उपमित कर सभी आभूषणों में उसे व्याप्त मानते हैं- इस तरह कनक की सत्ता प्रागाभूषण भी है और आभूषण के साथ भी- फलतः वह विश्वोत्तीर्ण भी है और विश्वात्मक भी। कुरआन भी मानता है- खुदा की इसी ज्योतिर्मयी वाणी से सृष्टि हुई- उसने कहा- 'कुन' (हो जा) सृष्टि हो गई। कबीर भी उस तत्त्व को प्रकाशमय मानते हैं और सूफी सन्त तो 'नूर' कहते ही हैं-

'अल्लातु नूरु अस्समावाति वअल अर्दि'

अर्थात् अल्लाह धरती और आकाश का प्रकाश है। कबीर कहते हैं-

'कोटि कोटि सूर जाकै परगास'

(संत कबीर, राग भैरव, पृ. 228)

सन्त, पैगम्बरों एवं विभिन्न धर्मग्रन्थों ने परमात्मा को निरुपाधिक रूप से प्रकाश स्वरूप कहा है। इनकी दृष्टि में वह अनामी ज्योति का ऐसा विशाल सागर है जिसमें निरन्तर अनाहत या अनहद नाद की तरंगें उठती रहती हैं जिस प्रकार समुद्र में तरंगें। इस प्रकाश और ध्वनि का वर्णन कहीं साथ-साथ मिलता है और कहीं अलग-अलग।

इस उक्त दार्शनिक विवरण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि सिसृक्षा-समकाल स्पन्दातीत सस्पन्द हुआ। जहाँ स्पन्दन होगा, वहाँ ध्वनि होगी ही। यह अनाहत ध्वनि है जो प्रकाशमय परसत्ता की सिफ़त या शक्ति है। यही अधोमुख होकर विश्वात्मक परिणति लेती है। एक आहननजन्य आहत ध्वनि भी होती है- उससे उसका कोई सम्बन्ध है भी और नहीं भी है। है- इसलिए कि सबकुछ उसी की प्रसूति है, और नहीं- इसलिए कि वह अनाहत है और यह आहत। एक तरफ उस प्रकाशमय ही यह सस्पन्द सृष्टि है और दूसरी तरफ अपने स्वरूप का स्वेच्छया गोपन कर जीवात्माओं (सुरत) के रूप में वह एक से अनेक हो गया है। यह सुरत पिण्ड और ब्रह्माण्ड की संधि पर औंधी पड़ी है- अपने मूल रूप तक पहुँचने के लिए उसे इसी अनाहत ध्वनि की डोर पकड़नी है।

सुरत दशम द्वार से नीचे उतरकर पिण्ड से सम्बद्ध होकर पूर्ण संसारी बन जाती है और शरीर के नौ द्वार सक्रिय हो जाते हैं। इससे ऊपर उठने पर आत्मा (सुरत) का सम्बन्ध पिण्ड से छू जाता है और वह ब्रह्माण्ड में पहुँच जाती है। पर यह हो कैसे? एतदर्थ नाम स्मरणपूर्वक नेत्र की पुतलियों को उलटना पड़ता है। पुतलियों के उलट जाने पर सुरत की 'सुरति' (असाधारण अग्र दृष्टि) विभिन्न दृश्य और ध्वनियों का दर्शन-श्रवण करने लगती

है- फिर उसे ध्वनि की डोर पकड़ में आ जाती है जिसके सहारे रूहानी चढ़ाई आरम्भ हो जाती है। यही आत्मा (सुरत) और परमात्मा (अनाहत ध्वनि) का सम्बन्ध 'सुरत शब्द योग' है- जिसको सूफी और सन्त- दोनों अपनाते हैं। दोनों आँखों के दो तिलों के पीछे होने के कारण दशम दुआर को सेतु अथवा तीसरा तिल भी कहा जाता है। यह दश महार मुक्तिहार है। यहाँ सुरत में एकाग्रता आ जाती है। वह अष्टदल कमल का भेद कर जाती है। सूफियों में इसे 'घर-दर' (घर का द्वार) कहा जाता है। सन्तों के यहाँ इसे 'मुकुति दुआर' कहा जाता है। इस स्थान पर परासत्ता ने मजबूत ताला लगा रखा है। वही सद्गुरु के रूप में आकर इस ताले को खोलता भी है। मौलाना रूम इसी रहस्य को अपने ढंग से कहते हैं। वे कहते हैं-

आँ बादशाहे आजम दरबस्त : बूद मुहाम।
पोशीदा दल्के आदम यानी के बद दर आदम ॥

-सन्तों की बानी

अर्थात् उस महान् बादशाह ने हमें बाहर निकालकर पके तौर पर दरवाजा बन्द कर दिया है। फिर वही आदमी की पोशाक में (सद्गुरु बनकर) छिपकर खुद ही दरवाजा खोलने आ गया। मौलाना आगे यह भी कहते हैं कि सुमिरन से साधक की आँख खुल जाती है। उन्होंने कहा है- 'मनुष्य ईश्वर का खगोलदर्शी यन्त्र है। वह आत्म-ज्ञान रूपी यन्त्र से दिव्य सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लेता है'-

आदम उस्तुर लावे औसाके उलुदत्त बस्फे
आदम मजहरे आयते उस्त।
हर चे दर वै भी नुमायद अक्ते उस्त,
हम चू अक्ते माह कान्दर आने जूस्त ॥

अर्थात् मनुष्य उच्च गुणों का खगोलदर्शी यन्त्र है। मौलाना ने कहा है कि शरीर के नौ द्वारों से मुक्त हुए बिना आन्तरिक रहस्य का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

फा चूँ हिस्स बेरूँ नियामद आदमी,
बाराद अज तसवीरें गोवी अजनबी ॥

-रूपी-मसनवी

इसकी पुष्टि ख्वाजा हाफिज़ साहब ने भी की है। उनकी रचना है- दीवान-ए-हाफिज़। कबीर साहब तो कहते ही हैं-

आठ मरातिव द दरवाजा, नौ में लगी किवरिया।
खिरकी बैठि गोरी चितवन लागी उपराँ झाँप झोपरिया ॥

आगे मौलाना ने फिर बताया है कि मानव शरीर रूपी खगोलदर्शी यंत्र पर मकड़ी के जाले की कलाकृति बनी है जो उसके शाश्वत गुणों को प्रमाणित करती है तथा जिससे उस दिव्य आकाश और आत्मा के सूर्य का व्याख्या सहित अध्ययन किया जा सके-

बरसुतुर लावश नुकुशे अंकबूत,
बहरे औसाफे अजल दारद सबूत ॥

मकड़ी के जाले और उसकी व्याख्या से स्पष्ट है कि इसी दसवें द्वार या तीसरे तिल पर साधक को अनहद नाद की रस्सी का सहारा मिल जाता है तथा मकड़ी रूपी परमात्मा को यह भी खबर मिल जाती है। परमात्मा रूपी मकड़ी कीट रूपी आत्मा को आत्मसात् करना चाहती है। आत्मा रूपी कीट उस अनाहत नाद के सहारे ऊपर बढ़ती है जो प्रतिक्षण उसे 'वापस लौट आओ' कहके पहले से ही बुलाती रहती है। आत्मा और परमात्मा का यही सब सम्बन्ध सुरत शब्द योग² कहा जाता है।

सन्त जन दशम द्वार खुल जाने पर त्रिवेणी में स्नान कर सुन्न भँवर गुहा होते सत्य राज्य तक की सुरत की यात्रा का इजहार करते हैं।

मौलाना रूम की कुछ और भी पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में रखी जा सकती हैं-

बाँग मीदारद कि हाँ ए कारवाँ
सूए मन आएद यक राहो निशाँ।

रूपान्तर-

अभ्यासी को कहे पुकारी।
सब्द सुनो आओ सरन हमारी ॥

उनकी दृष्टि से शब्द के दो रूप हैं- एक काल शब्द (नश्वर) और दूसरा कालातीत शब्द (अनहद)। जो काल शब्द सुनता है- वह असली घर नहीं पहुँच पाता- रास्ते में ही गल-पच जाता है। मूल का रूपान्तर इस प्रकार है-

काल शब्द की यह पहचान।
मन चाहे धन आदर मान ॥
भर्म की टेंठी निकालो कान से।
तब लगाओ ध्यान अनहद तान से ॥
सुर्त के कानों से फिर तू शब्द सुन।
शब्द कहो चाहे कहो अन्तर वचन ॥
जो निदा (आवाज) खँचे है ऊँचे को तुझे।
जान वह धुन आई ऊँचे से तुझे ॥

सुर्त मन में प्रेम गुरु जिसके बसा।
फूल से ज्यादा है हरदम वह खिला ॥
प्रेमियों का मत है सब मत से जुदा।
प्रेमियों का इष्ट है मालिक सचा ॥

‘मौलाना रूम के दृष्टान्त और औलिमाओं की कथाएँ’- से कबीर तो ढाई आखर वाले प्रेम में ही सारा ज्ञान समाया मानते हैं। वे मानते ही हैं-

सूरत जाय विहंग है

यानी सुरत शब्द योग में जो है वही विहंगम मार्ग में है। मार्ग ही गंतव्य तक ले जाता है।

सन्दर्भ :-

1. भारतीय संस्कृति और साधना, भाग-1, पृ. 383, शब्द योग और वाग्योग-शीर्षक आलेख
2. रूम एवं कबीर- डॉ. लछू लाल सेठ, पृष्ठ 202-203

उजैन में सूफी संत व साधक

डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलू

ईमान लाया रसूल पर और उस चीज़ पर जो रब की तरफ से नाज़िल (आकाश से उतरी हुई) है और मोमेनीन, सब के सब ईमान लाए। अल्लाह पर और उसके फरिश्ते पर और उसकी किताबों पर और उसके रसूलों पर हम तफ़रीक नहीं करते।

सूफी वे साधक थे या हैं- जो आध्यात्म के आकाश में ऊँचाई पर अपनी आत्मा रूपी हंस की उड़ान भरते रहे और धार्मिक सौहार्द्र, बन्धुत्व एवम् प्रेम के सागर में डुबकी लगाते थे। वे राजहंस, आध्यात्म के रहस्यों के मोती चुगते रहे। उनका मूल मंत्र था-

*जो है अरबाबे सियासत वह सियासत जाने,
अपना तो पैगाम है मोहब्बत जहाँ तक भी पहुँचे।*

विश्व में व्याप्त शाश्वत तथा अमूर्त सत्ता की सर्वत्र झलक पाकर मुस्लिम साधकों ने उस सत्ता के रहस्योद्घाटन के संबंध में जो धाराएँ व्यक्त की, उन्हीं के संग्रहीत रूप का नाम सूफी विचारधारा है। इस्लाम में निहित रहस्यवाद तसत्त्वुफ (सूफीमत) तथा मुस्लिम रहस्यवादी सूफी कहलाते हैं।

उत्पत्ति

सूफी शब्द की उत्पत्ति 'सफा' (पवित्रता), सूफ (ऊन), अहल अक्त सूफा (चबूतरे वाले लोग), सफफे अब्वल (प्रथम पंक्ति), सफ. (पंक्ति), वेनूसूफा (घुमकड़ जाति), सोफिया (ज्ञान) आदि शब्दों से होना बतायी जाती है। सूफी शब्द का व्यवहार सर्वप्रथम 8वीं शताब्दी ई. में कूफा के शेख अबू हाशिम कुफी (मृत्यु 767 ई.) के लिये हुआ। सूफी विचारधारा के उद्भव का

मूलस्रोत यद्यपि कुरआन एवं हदीस रहा तथापि इसके विकास में ईसाई मत, यूनानी दर्शन, नवअफलातूनी मत, जरथुस्त्र धर्म, नास्तिक मत, भारतीय वेदान्त तथा बौद्धमत का प्रभाव भी रहा। परन्तु यह प्रभाव नकल के रूप में नहीं रहा बल्कि उन बाहरी विचारधाराओं को सूफी संतों एवं तत्त्व चिंतकों ने अपने ढंग से अपनाया और सूफी विचारधारा का विकास इस्लाम धर्म को ध्यान में रखते हुए ही किया। किसी भी आन्दोलन अथवा मत के विशिष्ट विकास के लिए शताब्दियाँ लग जाती हैं। सूफी विचारधारा के संबंध में यह कहना अनुचित न होगा, इसके विकास की चार अवस्था मानी जाती है।

प्रथम

प्रारंभिक अवस्था अथवा अंकुरण काल में 'तौबा' (प्रायश्चित्त) एवं तवक्कुल (ईश्वर में विश्वास) ही सूफियों के लिए सब कुछ था। सूफी एकांत तपस्वी या संन्यासी जीवन व्यतीत करते थे। प्रारंभिक सूफियों में चार खलीफा, मोहम्मद साहब के साथी (सहाबी), ओवेस करनी, इमाम जाफर, सादिक, सलमान, अबु जार, हुदैफा, मिवादाद, हसन बसरी, राबिया बसरी इत्यादि थे। बसरा व कूफा सर्वप्रथम सूफियों के केन्द्र बने।

द्वितीय

सैद्धांतिक विकास-8वीं शताब्दी के अंत एवं 9वीं के प्रारंभ में सूफी विचारधारा ने एकेश्वरवाद संबंधी आध्यात्मिकता का रूप धारण किया। जिसका आधार रहस्यवाद का उदय तथा उसका उत्तरोत्तर विकास हुआ। इस काल के सूफी संतों में मारूफ अल करखी, जूननून अल बायजीद अल बिस्तामी, मन्सूर, हल्लज आदि के नाम सूफी विचारधारा की विशिष्ट प्रवृत्तियों के साथ जुड़े हुए हैं।

तृतीय

सूफी सम्प्रदायों का संगठित विकास ईसा की 12वीं शताब्दी में होना आरंभ हुआ। इस काल में तसबुफ की क्रान्ति अपनी उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गयी। यह अवस्था सूफी विचारधारा का स्वर्ण युग थी। इस काल में कई महान सूफी संतों ने सूफी सिद्धांतों तथा सम्प्रदायों का विकास किया। यथा- ख्वाजा अल

अब्दुल चिश्ता (चिश्ती) अब्दुल क्रादिर जिलानी (कादरी) शेख शहाबुद्दीन (सहरवर्दी) इब्नुल अरबी, जीली, शेख सादी, फरीदउद्दीन अत्तार, जलालुद्दीन रूमी व अन्य कई।

चतुर्थ

अंतिम अवस्था हास अवस्था है। कालक्रम से सूफी मत की शक्ति क्षीण होती गई। इसके बहुत से अनुयायियों में अनाचार की वृद्धि होती गई और वह उसके पतन का कारण बनी क्योंकि 18वीं और 19वीं शताब्दी तक आते-आते सूफीमत ने उच्च आदर्श, आध्यात्मिक प्रेम, श्रेष्ठ साधना का स्थान, चमत्कार, अंधविश्वास, आडम्बर, जादू-टोना, तंत्र-मंत्र ने ले लिया। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी लोगों का इन बातों से विश्वास हट गया। लोगों ने न केवल इसके प्रति उदासीनता प्रकट की, वरन् इसका विरोध भी करना आरंभ कर दिया। इस प्रकार से सूफी विचारधारा की शक्ति का हास हुआ। वर्तमान में उसकी उपस्थिति नगण्य हो गयी है।

सूफी मत अथवा इस्लामी रहस्यवाद का जन्म वहदत-उल-वुजूद अथवा आत्मा और परमात्मा की एकता के सिद्धांत से हुई है। इस सिद्धांत के अनुसार हक़ को सृष्टा और ख़लक को सृष्टि माना जाता है। सृष्टि की विभिन्नता में ईश्वर की एकरूपता निहित है और सभी नज़ारों के पीछे वे ही वास्तविकताएँ हैं। अल्लाह (ईश्वर) के अतिरिक्त कुछ नहीं है वह 'अनहक़' (परम सत्य) है। सूफी संतों का अंतिम लक्ष्य उस अनहक़ के दर्शन कर उसमें 'फना' (एकमेक) होकर उसके साथ पुनः एकत्र (वक्रा) प्राप्त करना है।

सूफियों को अपने चरम लक्ष्य फना एवं वक्रा की प्राप्ति के लिए आत्म (नफ़्स) पर विजय प्राप्त करना आवश्यक है। इसके लिये सूफियों ने प्रेम (इश्क़) एवं आध्यात्मिक ज्ञान (मारिफ) का आश्रय लिया। सूफी साधकों ने ईश्वर को परम सौन्दर्य प्रियतमा के रूप में असीम इश्क़ किया। प्रियतम (अल्लाह) के लिए प्रेमी (सूफी) की तड़पन ही सूफी दर्शन का सार है। सूफी के अगाध प्रेम का पर्यावसान उसका अल्लाह में फना होना है।

सूफियों में यह प्रेमवाद एक श्रेष्ठ स्तर का रहस्यवाद है। ईश्वरी ज्ञान की प्राप्ति एवं नफ़्स (जड़-आत्मा) पर नियंत्रण के

लिए सूफियों ने कठोर साधना, उपवास, एकांतवास (चिल्ला) जिक्र (जप), ध्यान तथा समां (संगीत) का आश्रय लिया। संगीत के द्वारा 'वज्र' एवं हाल की स्थिति उत्पन्न होने पर फ़ना की दशा प्राप्त होती है।

सूफी मार्ग की चार मंज़िलों शरीयत, तरीकत, मारफ़त एवं हक़ीक़त को प्राप्त करने पर परम सत्य के दर्शन होते हैं। ईश्वर के दर्शन तथा उसमें लीन होने की स्थिति की प्राप्ति के लिए सूफी को दस अवस्थाओं से होकर गुजरना पड़ता था- तौबा, वारा, जुहद, फ़क्र, सब्र, शुक्र, ख़ौफ़, रज़ा, तवक्कुल और रिज़ा।

आध्यात्मिक विकास की अवस्थाओं से गुज़रने में सूफी ईश्वर के प्रति प्रेम और उसमें लीन हो जाने की आतुरता को अत्यधिक अनुभव करते हैं, जिस प्रकार प्रेमी अपनी प्रियतमा से मिलने के लिए सदैव आतुर रहता है। 'मैं' और 'तू' का भेद समाप्त हो जाता है। अपने लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए सूफी सदाचार व वैराग्य प्रवृत्ति की वृद्धि, संत स्वेच्छा से भौतिक जीवन का परित्याग कर देते हैं और राजपदों, शासकों तथा अधिकारियों से दूर रहने का प्रयत्न करते हैं। फलस्वरूप उनमें मानव जाति के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है और निर्धनता, शांति, अहिंसा, शाकाहार में विश्वास करने लगते हैं। सूफियों का लक्ष्य केवल परमात्मा से सीधा, बौद्धिक और भावनात्मक संपर्क स्थापित करना ही नहीं होता, वरन् मानव जाति की सेवा करना भी होता है। गुरु परम्परा-सूफी साधना की सफलता के लिए गुरु (पीरो मुर्शिद) को अत्यधिक महत्त्व दिया गया। इसके बिना सूफी साधना अधूरी है। क्योंकि पीर ही सूफी साधक को चरम लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। पीर अपने शिष्यों में श्रेष्ठ शिष्य को ख़लीफ़ा (उत्तराधिकारी) नियुक्त करता था ताकि पंथ की परम्परा निरन्तर बनी रही। गुरु-शिष्य संबंध तथा संबंध सम्प्रदाय के विकास में 'खानकाह' (विहार या मठ) का भी विशेष योगदान रहा है, क्योंकि यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण में शिष्य अनुशासित, पवित्र जीवन व्यतीत करते हुए साधना से अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में शीघ्र सफलता प्राप्त करता है।

सूफी साधना में सूफी के लिए ब्रह्मचर्य व्यतीत करना आवश्यक नहीं बताया गया। सूफियों ने अपने प्रकृति के अनुसार ब्रह्मचर्य अथवा गृहस्थ जीवन व्यतीत किया, फिर भी किसी

नवागन्तुक सूफी साधक के लिए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन श्रेष्ठ बताया गया।

गुरु शिष्य के घनिष्ठ संबंधों ने उर्स, समारोह, ज़ियारत (मज़ार के दर्शन) को प्रोत्साहित किया। इनके प्रोत्साहन में सूफियों से जुड़े विभिन्न चमत्कारों ने भी विशेष योगदान दिया। सूफी विचारधारा के सिद्धांत पर दृष्टिपात करने पर उसकी प्रमुख निम्नलिखित विशेषताएँ प्रकट होती हैं-

1. मात्र अल्लाह ही 'ज्ञात' (अस्तित्व) है। वह प्रत्येक वस्तु में है और प्रत्येक वस्तु ईश्वर में है। सारी वास्तविकता एक है, सृष्टि के सभी रूप एक ही परम सत्य के विभिन्न पहलू हैं।
2. वास्तविकता का सम्पूर्ण ज्ञान बुद्धि की अपेक्षा, भावना और अनुभूति पर आधारित है।
3. मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य है कि धार्मिक अनुभूति अथवा प्रेम के माध्यम से वह परम सत्य का साक्षात्कार करे और सत्य के साथ एकाकार हो जाय।
4. धार्मिकता, नैतिकता अथवा सूफी साधना का आधार प्रेम है। प्रेम के बिना धर्म, नीति और साधना निर्जीव हो जाती है। प्रेम के प्रकाश के बिना बुद्धि भी अंधकार में भटकती रहती है।
5. आत्मा शरीर रूपी पिंजरे में बंदी है। पिंजरा बाद में बना जबकि आत्मा पूर्व से उपस्थित रही है। पिंजरे के टूटे बग़ैर आत्मारूपी पक्षी स्वतंत्र नहीं हो सकता है। अतएव मृत्यु काम्य है।
6. सूफी का प्रमुख कर्तव्य है- प्रार्थना, नामस्मरण, ध्यान और समाधि। इन्हीं पद्धतियों से वह ईश्वर मिलन के मार्ग पर अग्रसर होता हुआ चरम लक्ष्य वरल (मिलन) को प्राप्त कर फना एवं वका की अवस्था में पहुँच जाता है।

सूफी संतों की प्रमुख शिक्षा मानव के प्रति प्रेम, ईश्वर, असीम, इश्रक, गुरु-शिष्य परम्परा का कठोरता से पालन, संगीत से प्रेम, कर्म पर विश्वास, पवित्र जीवन, संसार से विरक्ति, नफ़्स

पर नियंत्रण, मानव सेवा, मृत्यु से निर्भय होना, भौतिक इच्छाओं का दमन, आध्यात्मिक जीवन को प्रोत्साहन, सादा एवं संयमपूर्ण जीवन, राजनीति से परहेज, निष्पृहता, सभी धर्मों के प्रति समन्वयवाद प्रवृत्ति, मानव सेवा तथा प्रेम द्वारा ईश्वर प्राप्ति आदि थी। सूफी विचारधारा विकासक्रम में प्रसिद्धि प्राप्त सूफियों के शिष्य-प्रशिष्य होते गये और उन्होंने भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और उपसंप्रदायों का रूप ले लिया। ये सम्प्रदाय धीरे-धीरे अन्य देशों में फैल गये। 12वीं शताब्दी तक इन सम्प्रदायों का रूप स्पष्ट हो गया। प्रायः सभी सूफी सम्प्रदाय पैगम्बर मोहम्मद से अपना अविर्भाव बतलाते हैं तथा उनके दामाद हज़रत अली से अपना संबंध जोड़ते हैं। केवल नक़्शबन्दी अपना सम्बन्ध खलीफा हज़रत अबुबक्र सिद्दीक से जोड़ते हैं। सभी सम्प्रदायों का अविर्भाव चार पीरों कामिल, हसन, हुसैन और हसन बसरी से माना जाता है। इन चार पीरों से 14 खानवादे (परिवार) हुए। वास्तव में ये 14 खानवादे हसन बसरी के शिष्यों-प्रशिष्यों से हुये। इस शिष्य परम्परा से ही 175 से अधिक सूफी सम्प्रदाय संघटित हुए। यथा-जैदिया, ईयाज़िया, अद्यमिया, हुबैरिया, चिशतिया, हबीबियां, करखिया, सकतिया, तैफूरिया, जुनैदिया, गाजरूनियां, तरतवसिया, सहरवर्दिया, फिरदौसिया, सुनैलिया, खरजिया, कादिरिया, इश्क्रियां, नक़्शबन्दिया आदि।

भारत में सूफी विचारधारा

विश्व के प्रमुख सूफी केन्द्र में अरब, ईरान, ईराक, सीरिया, उत्तर अफ्रीका, मध्य एशिया के साथ ही भारत भी एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र रहा है। मुस्लिम आक्रमण के समय सूफी संतों का भारत में सर्वप्रथम आगमन सिंध, पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश में हुआ। वैसे सूफीमत द्वितीय खलीफा उमर (634-44 ई.) के समय से ही भारत में आ गया था। भारत में आने वाले प्रारंभिक सूफी संतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध सूफी शेख हुज्वेरी (कशुफल मेहजूब के रचयिता) 11वीं शताब्दी ई. थे। 13-14वीं शताब्दी में सूफी संत भारत के प्रायः सभी भागों में फैल गये तथा अपने सम्प्रदाय का प्रचार-प्रसार किया। भारत में प्रमुख सम्प्रदाय निम्नलिखित थे।

चिशती सम्प्रदाय

ख्वाजा अबू अब्दाल चिशती द्वारा स्थापित चिशती पंथ को

भारत में विकसित करने का श्रेय ख्वाजा मुईनुद्दीन चिशती सिंजरी अजमेरी (मृत्यु 1236 ई.), ख्वाजा कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी (मृत्यु 1227 ई. दिल्ली) शेख फरीउद्दीन गंज-ए-शकर (मृत्यु 1265 ई. पाकपहन), शेख निजामुद्दीन औलिया (मृत्यु 1325 ई. दिल्ली ग्यासपुर), नसीरुद्दीन चिराग देहलवी (1356 ई. दिल्ली), सैयद मोहम्मद बन्दानवाज़ गैसूदराज (मृत्यु 1421 ई. गुलबर्गा), मखदूम अलाउद्दीन साबिर (मृत्यु 1291 ई. कलीयर) शेख बुरहानुद्दीन गरीब (मृत्यु 1300 ई. दौलताबाद), शेख सलीम चिशती (मृत्यु 1572 ई. फतेहपुर सीकरी) व अन्य को जाता है।

भारतवर्ष में जितने भी सूफी पंथ हुए उनमें सर्वाधिक महत्त्व, प्रसिद्धि, प्रचार-प्रसार, लोकप्रियता, चिशती पंथों को निम्न कारणों से मिली- प्रथम, चिशती पंथ के पवित्र, सरल एवं उच्च आदर्श। द्वितीय, सूफी संतों का व्यक्तित्व उनका सरल जीवन एवं पवित्र दैनिक कार्यक्रम। तृतीय, अन्य धर्मों के प्रति उदार दृष्टिकोण तथा भारतीय परम्पराओं का ग्रहण। चतुर्थ, संगीत का महत्त्व एवं खानकाहों की स्थापना। पंचम, जीवन की वास्तविकताओं से भी सम्पर्क। षष्ठ, पंथ का प्रचार। सप्तम, मानव जाति की सेवा। चिशती सम्प्रदाय कालांतर में कई उपसंप्रदायों में बंट गया।

सहरवर्दी सम्प्रदाय

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक शेख शिहाबुद्दीन सहरवर्दी की आज्ञा पर शेख बहाउद्दीन जकारिया मुलतानी ने भारत में मुलतान को सहरवर्दी सम्प्रदाय का केन्द्र बनाया। इस सम्प्रदाय के संत चिशतियों के समान निर्धनता और शरीर को यातना देने व राजनीति से परहेज में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने इस्लाम के नियमों का दृढ़ता से पालन किया। यह सम्प्रदाय जलाली, मीशनशाही, इस्माईलशाही, दौलाशाही, फिरदौसी जैसे उपसंप्रदायों में बंट गया।

कादिरी सम्प्रदाय

कादिरी सम्प्रदाय के संस्थापक शेख अब्दुल कादिर जिलानी बगदारी (1166 ई.) थे। भारत में इस सम्प्रदाय का प्रचार 15 वीं शताब्दी में शाह नियाम तुल्ला मखदूम, मोहम्मद जिलानी, मोहम्मद ग़ौस जैसे संतों द्वारा हुआ। कालान्तर में कादिरी सम्प्रदाय बहलुलशाही, नवशाही, मुक्रीमशाही, क़ैसरशाही, रजकिया,

बहर्बिया, कुमेसी, बेनवा आदि में बंट गया। इस सम्प्रदाय का कट्टरपंथी इस्लाम से निकट संबंध रहने के कारण मुस्लिमों में अधिक स्वागत हुआ। इस सम्प्रदाय में 'जिक्र अली' तथा 'जिक्र खफी' पद्धति का प्रचलन रहा है परंतु संगीत को मान्यता नहीं दी। मुगल राजकुमार दाराशिकोह कादिरि पंथ का अनुयायी था।

नक्शबन्दी सम्प्रदाय

ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंद (मृत्यु 1389 ई.) आध्यात्मिक तत्त्वों से संबंधित 'नक्श' बनाते और उसमें रंग भरते थे, इसी कारण उनके अनुयायी नक्शबंदी कहलाये।

भारत को इस सम्प्रदाय से परिचित कराने वाले ख्वाजा बाकी बिल्लाह (मृत्यु 1563-1603) थे। इनके शिष्य शेख अहमद सरहिन्दी मुजद्दीद ने 'वहदतुल वुजूद' के सिद्धांत पर 'वहदतुश शुहूद' (प्रत्यक्षवाद) के सिद्धांत का प्रतिपादन किया।

प्रख्यात नक्शबंदी शाह वली उल्लाह (1707-62 ई.) ने दोनों सिद्धांतों का समन्वय किया। नक्शबंदी ख्वाजा मीर दर्द ने भी वहदतुल वुजूद का विरोध किया। इस पंथ ने सूफी रहस्यवाद के सिद्धांत को सनातन इस्लाम से संबंधित करने का प्रयास किया।

बेशरा सम्प्रदाय

भारत में प्रचलित विभिन्न सम्प्रदायों व उपसम्प्रदायों का बाशरा (इस्लाम के आचार-विचार) को मानना तथा बेशरा (स्वतंत्र प्रकृति) में विभाजित किया जाता है। बेशरा पंथ में प्रमुख लाल शहाबाजिया, सुहागिया, रसूलशाही, कलन्दर, मदारिया, मलंग, मलामती, हैदरी मज्बूब योद्धा आदि हैं।

इन बेशरा पंथी सूफियों ने सनातन इस्लाम की उपेक्षा की। धन के संबंध में उनकी प्रकृति स्वतंत्र थी। इन संतों ने विभिन्न प्रकार के चमत्कारों से लोगों को आकर्षित किया।

भारत में सूफी विचारधारा आगम से 18वीं शताब्दी तक फलती-फूलती रही। यहाँ आकर इसका पूरणरूपेण वह रूप नहीं रहा, जो मुस्लिम प्रधान देशों में था। इस विचारधारा ने भारत में शक्ति की अपेक्षा प्रेम से इस्लाम का प्रचार-प्रसार किया।

सूफी मत का अस्तित्व तथा संत

भारतीय इतिहास, सभ्यता, संस्कृति एवं समन्वयता की एक सतरंगी इंद्रधनुषी आभा अपने में समेटे हुए है, इनमें से एक सर्वाधिक प्रकाशमान है- सूफी संतों की क्रियात्मक गतिविधियाँ। मध्यकालीन भारत में यह ध्वनि हमें सब जगह प्रतिध्वनित होती नजर आ रही थी। स्वभावतः यह मालवा में भी प्रतिध्वनित हुई।

13वीं शताब्दी से ही भारत में सूफी विचारधारा का प्रचार-प्रसार होना आरंभ हो गया था। सूफी विचारधारा के भारत में प्रवेश के साथ ही यह परम्परा मालवा में भी फलने-फूलने लगी, क्योंकि मध्ययुगीन मालवा में मुस्लिम वंशों का शासन रहा। अतः कई सूफी संत यहाँ आये, साथ ही अपने विचारों के प्रचार के लिए उत्तर से दक्षिण की ओर गये, चूँकि मालवा इन दोनों के मध्य का अस्तित्व और प्रभाव क्षेत्र रहा है। विशेषतः मांडव के सुल्तानों के शासनकाल में सूफी परम्परा का प्रचार-प्रसार चरम सीमा पर हुआ। मांडव के सुल्तान सूफी संतों से बड़े प्रभावित रहे हैं। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि यह समय मालवा के सूफी मत के इतिहास का स्वर्ण काल था। मालव भूमि को उस समय के दरवेशों ने अपने ज्ञान व करामात से जगमगा दिया।

मालवा के विभिन्न नगरों में सूफी परम्परा के प्रमाण आज भी मिलते हैं, साथ ही हमें परम्परा के चिह्न वर्तमान संतों या पीरों के रूप में दृष्टिगोचर होते हैं।

मालव भूमि के लिए यह गौरव की बात है कि 13 वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक सूफी मत का अस्तित्व बना हुआ है। मालवा में सूफी परम्परा के मुख्य केन्द्र धार, माण्डव, उज्जैन, मंदसौर, सारंगपुर इत्यादि हैं।

मालवा के इन मशाहखों ने सृष्टि के अंधेरे कोने में अपनी निःस्वार्थ सेवा और कर्म से ईमान के प्रकाश का उजाला फैलाया है। आरंभ से लेकर मृत्यु के अंतिम क्षण तक खुदा के बंदों की सेवा की। शिक्षा के दीपक जलाए। हृदय से अशिक्षा की जंग मिटाई। संसार को शांति, प्रेम, संस्कृति, भाईचारा, सौहार्द्र व ईमान की शिक्षा दी। इन सूफियों ने मालवा की जिस भूमि पर अपने शुभाचरण रखे, उसे प्रेम के प्रकाश से प्रकाशित कर दिया।

निःसंदेह मालवा के तमाम सूफियों ने मनुष्य की सेवा अपने खून पसीने से की और इतिहास में अपना नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखवा लिया, जिन्हें कभी विस्मृत नहीं किया जा सकता।

प्रारम्भ से ही सूफियों के आगमन का क्रम भारत के उत्तरी अथवा समुद्री तट तक सीमित नहीं रहा, बल्कि आन्तरिक क्षेत्र मालवा को भी उन्होंने अपने आध्यात्मिक प्रभाव व बरकत से गौरवान्वित किया।

मालवा में इस्लाम के प्रसार में सुल्तानों का इतना हाथ नहीं जितना इन सूफी संतों का है। इन सच्चे दरवेशों की शिक्षा सादा जीवन उच्च विचार तथा असाधारण करामतों ने यहाँ के लोगों के दिलों को जीत लिया। इनके महत्त्व के कारण मालवा के प्रमुख सूफी को सुल्तान-ए-मालवा की उपाधि दी जाती थी।

कुछ विद्वानों का मत है कि भारत में इस्लाम तलवार के बल पर प्रवेश के पूर्व ही सूफीमत के रूप में प्रवेश कर चुका था। मालवा के ऐतिहासिक नगर पीराने-धार में यह परम्परा है कि मालवा में सर्वप्रथम इस्लाम का प्रवेश चालीस पीर के धार आगमन से हुआ, साथ ही धार नगरी के लिए यह गौरव की बात है कि ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती के भारत आगमन से लगभग 100 वर्ष पूर्व यह नगर इस्लाम का केन्द्र बन चुका था। इस प्रकार सर्वप्रथम तसव्वुफ का परचम पीराने-ए-धार में बुलंद हुआ।

उज्जैन के सूफी संतों के विचारदर्शन एवं शिक्षाएँ

उज्जैन के विभिन्न सूफियों के विचारदर्शन का सार निम्न बिन्दुओं में उल्लेखित है-

‘तौहीद’ (एकेश्वरवाद) में पूर्ण विश्वास रखना तथा ईश्वर और प्राणी की एकता ‘वहदत-उल-वुजूद’ के सिद्धांत में विश्वास करना है।

ईश्वर में मानव आत्मा को विलीन करना और ईश्वर को मानव द्वारा अपनी इच्छा का समर्पण किया जाना। ध्यान, भगवत-भजन, नृत्य, संगीत और प्रेम के माध्यम से ईश्वर से साक्षात्कार ‘फना’ की अवस्था प्राप्त करना है। ईश्वर में शारीरिक, मानसिक,

आध्यात्मिक सौन्दर्य की उपस्थिति होने के कारण सौन्दर्य की उपासना और प्रेम द्वारा ईश्वर की प्राप्ति संभव मानना है। सूफियों द्वारा प्रेम पर सर्वाधिक बल दिया गया, उनके विचारानुसार प्रेम नैतिकता व धर्म का आधार है। प्रेम की विरह वेदना में क्रन्दन सूफी साधना का एक महत्त्वपूर्ण अंग माना गया।

समस्त संसार में एक सत्ता और उसकी शक्ति का विश्वास किया जाता है। संसार के समस्त रूप उस सत्ता के विभिन्न पहलू हैं। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व ईश्वर में अन्तर्निहित है।

ईश्वर के अतिरिक्त मोहम्मद साहब, उनके वंशज, फरिश्ते, दिवंगत सूफी संत तथा दीक्षा गुरु के प्रति आस्था एवं श्रद्धा प्रकट की जाए। सूफी जीवन का प्रमुख लक्ष्य अनुभूति के माध्यम से सत्य का साक्षात्कार करते हुए निराकार सत्य में एकाकार हो जाना है। आचार-विचार नियंत्रण, आध्यात्मिक प्रगति का विकास और विकेन्द्रीकरण में सहायता देने के लिए आध्यात्मिक गुरु की महिमा को स्वीकारा।

सांसारिक प्रलोभनों से दूर रहकर हृदय (कल्ब) की शुद्धता उसमें ईश्वर की प्रतिछाया के दर्शना करना, कर्म पर विश्वास करना एवं ‘स्वर्ग’ और ‘नरक’ को ईश्वर की ‘समीपता’ (कुर्ब) और ‘दूरी’ का प्रतीक मानकर मृत्यु से भयभीत न होना। मानव द्वारा अपने पापों का पश्चाताप (तौबा) किया जाना और स्वच्छता, हृदय की शुद्धता, प्रार्थना वृत्ति, उपवास, दान तथा तीर्थ यात्रा के नियमों का पालन किया जाना। ‘तवक्कुल’ (ईश्वर पर निर्भरता) पर जीवन व्यतीत करना। समस्त भौतिक वासना एवं तृष्णा को मिटाकर ईश्वर की शरण में जाना श्रेयष्कर है। आभ्यन्तरिक जीवन की पवित्रता सूफी मार्ग के लिए आवश्यक है। शारीरिक यातना, एकान्तवास और क्रोध, गर्व, ईर्ष्या आदि दुर्गुण का दमन करना। भौतिक वस्तुओं से विरक्ति व अन्तरात्मा के प्रकाश के लिए सदैव प्रयत्नशील रहना। सत्य में विश्वास करना, सांसारिक इच्छाओं पर नियंत्रण रखना और बुराईयों से दूर रहना। सत्य की ओर मार्ग निर्देशित करना, धर्म ही सत्य है। मालवा के सूफियों ने यद्यपि स्वांतः सुखाय उपासना एवं ईश्वर प्राप्ति में अपना अधिकांश समय व्यतीत किया तथापि जनसामान्य को शिक्षा देने के प्रति भी उपेक्षा नहीं की। उनकी शिक्षा का सार इस प्रकार है- ईश्वर एवं मानव से

असीम प्रेम, प्राणीमात्र के प्रति दया, करुणा, सेवा एवं परोपकार का भाव, सबके प्रति समान भाव, कर्म, विश्वास, जातिवाद, छुआछूत, वाह्य आडम्बर, कर्मकाण्ड, संकीर्णता का विरोध, धार्मिक सौहार्द्र को प्रोत्साहन, निस्पृह जीवन की महत्ता, भौतिक के स्थान पर आध्यात्मिक जीवन की प्रेरणा, सादा एवं संयमपूर्ण जीवन, क्रोध एवं अहंकार पर नियंत्रण, स्वनिन्दा, बन्धुत्व एवं वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना का प्रचार, गुरु-शिष्य परम्परा का महत्त्व, कठोर साधना, संयम, आत्मानुशासन, आत्मनियंत्रण, नाम-स्मरण, ध्यान, संगीत आदि द्वारा ईश्वर से साक्षात्कार कर उसमें एकमेक होना है।

सूफी संतों के सिद्धांतों का तुलनात्मक अध्ययन

मालवा में पाये जाने वाले विभिन्न सूफी सम्प्रदाय यथा चिश्ती, शक्तारी, सहरवर्दी, कादिरी, नक्शबंदी, मदारी, मलंग, कलन्दर, महदवी, मज्जब अथवा वारसी के सिद्धांतों में केवल वही अंतर दिखाई दिये जो इस सम्प्रदाय के मौलिक अंतर हैं। वास्तव में विभिन्न सूफियों के सिद्धांत बहुत कुछ व्यक्तिगत, आध्यात्मिक और रहस्यवादी अनुभूतियों पर आधारित हैं, इसलिये एक ही सूफी सम्प्रदाय के संतों के मध्य भी कई प्रकार के मतान्तर दिखाई देते हैं।

मालवा के प्रमुख सूफी सम्प्रदायों में 'चिश्ती' सम्प्रदाय का विशेष महत्त्व है। इस पंथ के सूफियों ने ईश्वर प्रेम, भक्ति, अहिंसा, सौहार्द्र एवं संगीत को महत्त्व दिया। इसी कारण मालवा में यह सर्वाधिक लोकप्रिय रहा। इसमें उच्चकोटि की आध्यात्मिकता थी। इस्लाम के मूल सिद्धांतों के प्रति भी इन संतों ने विश्वास प्रकट किया। चिश्ती संतों ने 40 दिन के बाद 'चिल्ला' में कठोर साधना एवं संयम पर महत्त्व दिया। इन संतों ने तरीकत, मारफत एवं हक्रीकत की प्राप्ति के लिये शरीर का पाबंद होना आवश्यक बताया, यही विचार सहरवर्दी, फिदौसी, कादिरी एवं नक्शबंदी संतों के बीच है। परंतु कलन्दर, मज्जब इसके पाबंद नहीं थे। मज्जब जुनून में मस्त रहते थे, इसके कारण इनका विश्वास था कि इन पर शरीर का पाबंदी आवश्यक नहीं है।

चिश्ती सन्त जिक्र के समय 'कलमा' के शब्दों का उच्चारण करते थे। शब्द अल्लाह पर विशेष बल दिया जाता था। जप के

समय शरीर के ऊपरी भाग और सिर को हिलाया जाता है। सहरवर्दी परम्परा में सांस खींचकर 'अल्लाह-हू' का जप करने की प्रथा रही। जिक्र, जली एवं खफी दोनों करते थे। नक्शबंदियों ने 'जिक्र-जली' के स्थान 'जिक्र-खफी' को उचित माना। नक्शबंदी कादिरी सन्तों ने जिक्र जिली व खफी दोनों को उचित माना, वे दरूद शरीफ को बड़ा महत्त्व देते थे।

सिर को झुकाये, नेत्र को बंद किये भूमि पर ध्यान लगाये बैठते थे। शक्तारी पंथ पर जिक्र में कलमा व अल्लाह के नामोच्चार को प्रधानता दी गई।

चिश्ती, शक्तारी पंथ ने संगीत को विशेष महत्त्व दिया। 'हाल' अथवा भाविष्ठावस्था की प्राप्ति के लिये चिश्तियों ने संगीत में रूचि दिखाई किंतु सहरवर्दी संतों ने संगीत को निषिद्ध ठहराया। नक्शबंदी भी समा कादिरी के विरुद्ध थे।

यद्यपि कालान्तर में समन्वयवादी प्रवृत्ति के कारण कादिरी सहरवर्दी पंथ के कुछ संतों ने संगीत में रूचि दिखाई।

चिश्ती संतों ने निस्पृहता, धन के संग्रह के प्रति व्यक्ति को ध्यान साधना पर महत्त्व दिया। जिन संतों ने ग्रहस्थ धर्म का पालन किया उनका परिवार भी अत्यंत निर्धनता से जीवनयापन करता था। शक्तारी संतों ने सम्पत्ति को रखना बुरा नहीं माना। शाह अब्दुल्लाह शक्तारी माण्डव में राज्याश्रय में वैभव से रहते थे। शेख मुगीस की खानकाह में विशाल सम्पत्ति थी। शक्तारी व सहरवर्दी संत चिश्ती के समान निर्धनता और शरीर को यातना देने में विश्वास नहीं करते थे। वे सुखपूर्ण जीवन व्यतीत करते और अपने शरीर के प्रति उतना ही ध्यान देते थे, जितना अपनी आत्मा और बुद्धि की ओर। उनको अधिक उपवास और आत्मदमन में विश्वास नहीं था। उन्होंने धन के संग्रह को अपेक्षाकृत बुरा नहीं माना। अपने पुत्रों के पालन-पोषण, शिक्षा-दीक्षा की उत्तम व्यवस्था की। सहरवर्दी में सांसारिक सम्पत्ति और खिलाफत प्रायः पिता से पुत्र को प्राप्त होती थी। राजनैतिक मामले से अलग नहीं रहे। उन्होंने सुल्तानों से मेल-मिलाप रखा। शक्तारी संतों ने राज्याश्रय में रहते हुए ख्याति अर्जित की। चिश्ती संतों ने राजनीति से दूर रहना ही श्रेष्ठकार समझा। शक्तारियों ने उपहार, भूमि स्वीकार की उन्होंने सुख-सुविधाओं के बीच आध्यात्मिक जीवन व्यतीत किया।

शक्तारियों ने कठोर आत्मानुशासन का दृढ़ता से पालन नहीं किया। सहरवर्दी, कादिरी, नक्शबंदी संत चिश्ती व शक्तारी संतों की तुलना में कट्टर थे। उन्होंने इस्लाम के नियमों का दृढ़ता से पालन किया और इस्लाम के वाह्य आडम्बरों पर बल दिया। नक्शबंदियों ने मनुष्य और ईश्वर का संबंध प्रेमी व प्रेमिका का न मानते हुए साधक और साध्य का माना। सूफी रहस्यवाद के सिद्धांत को सनातन इस्लाम से समन्वित किया। उन्होंने 'बहदत-उल-वुजूद' के स्थान पर 'वहदत-उल-शुहूद' (प्रत्यक्षवाद) के सिद्धांत को मान्यता दी।

चिश्ती व शक्तारी पंथ ने धार्मिक सहिष्णुता का परिचय देते हुए हिन्दू-मुस्लिम संप्रदाय को निकट लाने का सफल प्रयास किया। सनातन पंथी नियमों के सांचे में स्वयं को ढालने से ये पंथ अपेक्षाकृत कम लोकप्रिय हुये। रहन-सहन की दृष्टि से चिश्ती संतों ने रंगीन या हल्के बादामी वस्त्र धारण करने, लम्बे केश रखने में रूचि दिखाई। कादरिया सूफी संत लाल पगड़ी पहनते थे तथा उनके वस्त्र का कोई न कोई भाग हल्के बादामी रंग का होता। कलन्दर पंथी दाढ़ी, मूँछ, भौहों के बाल सभी मुण्डवाते थे। शक्तारी पंथी बाल व दाढ़ी मुंडवाने वाले 'मुहिदनुमा' तथा रखने वाले 'रमलनुमा' कहलाते थे। यद्यपि शक्तारी संत शाह अब्दुल्लाह शक्तारी शाही वस्त्र धारण करते थे, तथापि कालान्तर में शक्तारी सूफियों ने सादा वस्त्र धारण करना ही उचित समझा। वारसी पंथी सूफी पीला ऐहराम धारण करते हैं।

पंथ के प्रचार-प्रसार की ओर चिश्ती तथा शक्तारी पंथ ने अधिक ध्यान दिया। वैचारिक आदान-प्रदान के संदर्भ में चिश्ती व शक्तारी संतों ने अधिक रूचि दिखाई।

चिश्ती सन्त प्रायः ईश्वर के जामाली (सौंदर्य) रूप के उपासक थे, जबकि सहरवर्दी जलाली (प्रतापी), इस कारण भी सहरवर्दी पंथ का अधिक प्रचार न हो सका।

सूफियों का चरम लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति है। सभी सूफियों ने इसके लिये कठोर साधना, एकांत तपस्या, ध्यान-जप आदि का आश्रय लिया। सूफियों को चार अवस्थाओं से गुजरना पड़ता था। उन्होंने प्रेम और आध्यात्मिक ज्ञान अपने लक्ष्य के लिए आवश्यक माना। अपने अभीष्ट की प्राप्ति के लिए साधक शनैः-शनैः विभिन्न

अवस्थाओं से गुजरता है। जबकि शक्तारी पंथी इस संबंध में विपरीत थे। शक्तार शब्द ऐसी आध्यात्मिक साधना की ओर संकेत करता है जिसके द्वारा अल्पकाल में 'फ़ना' और 'बका' की उपलब्धि हो सकती है। अन्य पंथी सूफी आध्यात्मिक ज्ञान का जो रहस्य प्राप्त कर पाते हैं, शक्तारियों का दावा था कि उसे आरंभ में ही प्राप्त कर लेते थे। शाह अब्दुल्लाह ने 'इश्कियां' पंथ का नामकरण शक्तारी (तेज गति) इसी कारण किया कि इस पंथ के सूफी सर्वोच्च रहस्यवादी आत्मानुभूति शीघ्र ही प्राप्त कर लेते हैं। जो पग अन्य पंथी सूफी का अंतिम होता है, वही शक्तारी सूफी का प्रथम पग होता है। कुछ शक्तारियों ने महामिलन में आत्मलय 'फ़ना' की अवस्था को नहीं माना क्योंकि उनमें ध्याता-ध्येय से पृथक होने के कारण द्वैत की भावना स्पष्ट झलकती है जो 'वहदते' (अद्वैतवाद) के सिद्धांत के अनुकूल नहीं पड़ती। अन्य पंथों के सूफी ईश्वर के प्रति, उसके प्रेम के प्रति सचेत रहते हैं या फ़ना की स्थिति में पहुँच जाते हैं। जबकि शक्तारी धारा में दोनों स्थितियाँ मिलकर एक नवीन तथ्य या संवाद उत्पन्न करती हैं। शक्तारी अपने अतिवादिता के कारण जाने जाते हैं।

शक्तारियों के समान शाह नजमुद्दीन कलन्दर का कथन था- वह एक शिष्य को एक दिन में ही सूफी मार्ग के सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँचा सकते हैं यदि वह सुरक्षित लौटा तो सूफियों में उच्च स्थान प्राप्त करेगा यदि न लौट सका तो चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेगा।

मालवा के विभिन्न सूफी सम्प्रदायों में वास्तव में कुछ भ्रमचारियों का ही अंतर था। मुख्य सिद्धांतों में सभी एक महासागर की बूंद के समान संयुक्त व समान हैं। जैसे एकेश्वरवाद, सृष्टि का प्रयोजन, आत्मा, फ़ना-बका, प्रेम-ज्ञान, दस अवस्थाएँ, साधना, उपवास, जिक्र, गुरुशिष्य परम्परा, बेअत, खिलाफत-खानकाह आदि। इसके अतिरिक्त मालवा में कालान्तर में विभिन्न सूफी संतों ने एक से अधिक सूफी संप्रदायों को एक साथ अपनाया, परिणामतः विभिन्न सूफी संप्रदायों के अनुयायियों में सीमाएँ नहीं रही।

उज्जैन में सूफी मत का अस्तित्व व विभिन्न सूफी संत

उज्जैन का अपना सांस्कृतिक महत्त्व है। यह नगरी प्रायः

सभी धर्मों को अपने यहाँ स्थान दिये हुये है। उज्जैन को एक पवित्र व धार्मिक नगरी माना जाता है। उज्जैन सूफी परम्परा का मुख्य केन्द्र रहा है। यहाँ पर अनेक सूफी संत हुये हैं, उन्हीं सूफी संतों में जो प्रमुख हैं, उनका वर्णन इस प्रकार है-

हजरत चमेली शाह बाबा

सांसारिक उद्यान में प्रतिदिन पुष्प खिलते हैं और मुरझा जाते हैं, कुछ वाटिका की शोभा बनते हैं और कुछ किसी के गले का हार बन जाते हैं, कुछ मजार पर चढ़ते है, कुछ पैरों के नीचे रेंदे जाते हैं। ऐसा ही एक पुष्प सैयद फ़ैज़ुल हसन की वाटिका में खिला, जिसकी सुगंध से न केवल मालवा बल्कि राजस्थान भी सुगंधित हुआ और वह चमेली कहलाया।

सैयद चमेली शाह का मूल नाम आले हसन था। उनके गुरु सैयद वजीर अली शाह थे, उन्होंने ही उनका नाम चमेली दिया था और वे मृत्योपरांत भी इसी नाम से प्रसिद्ध हैं।

चमेली शाह का मजार मदार साहब के मजार के परिसर में दक्षिणी दिशा में पश्चिमी कोने में स्थित था। चमेलीशाह के उत्तराधिकारी बाबू अब्दुल लतीफ ने ज़ेनुल आबेदीन की सहायता से मजार के चारों ओर पक्की चाहरदिवारी और गुम्बद निर्मित करवाया।

चमेली शाह के प्रत्यक्षदर्शी के अनुसार बाल्यावस्था में उनमें दरवेशों के गुण दृष्टिगोचर होने लगे थे, उनका परिवार बहुत बड़ा था परंतु वे एकांत में अपना समय ईश्वर उपासना में व्यतीत करते थे। अपनी आनन्दमयी स्थिति में बच्चों को मिट्टी की ठीकरी के गोल पैसे बनाकर बांटते थे, बच्चे उनको लाकर खान-पान की वस्तुएँ विक्रय कर लेते थे।

चमेलीशाह द्वारा कई चमत्कार भी प्रकट हुए। उन्होंने इंदौर, बड़वानी, सनावद, बड़वाह, रतलाम, जावरा और राजस्थान के बहुत से नगरों का भ्रमण कर सैकड़ों लोगों को अपना शिष्य बनाया।

अपने अंतिम समय में इंदौर में हाजी हाशिम और हाजी शकूर की दूकान में निवास किया। अंतिम क्षण बिल्कुल निकट

देख वे उज्जैन आ गये, यहाँ उनकी मृत्यु 30 मार्च 1946 को 80 वर्ष की आयु में हुई। मृत्योपरांत उनकी स्मृति में प्रतिवर्ष दो दिवसीय उर्स समारोह रब्बील सानी मास में 25-26 तिथि को होता है। उर्स में कुरान ख़्वानी, मिलाद शरीफ, लंगर एवं कव्वाली का कार्यक्रम होता है।

मौलाना मुगीसुद्दीन चिश्ती (उज्जैन)

जब इस संसार में मानव रचना की गई तो समयानुसार उसकी शिक्षा के लिए पैगम्बर भी भेजे गये, जिसकी परम्परा मोहम्मद साहब पर समाप्त होती है। पैगम्बरी समाप्त होने के पश्चात् उलमा-औलियों पर लोगों को अंधकार और अशिक्षा से निकालने का उत्तरदायित्व सौंपा गया।

इसमें कोई दो मत नहीं है कि हर समय लोगों का विश्वास एवं श्रद्धा गठित उलमाओं के स्थान पर औलियाओं से अधिक रही थी, क्योंकि वे सांसारिक बातों से भिन्न रहे हैं। औलियाओं को अल्लाह के अतिरिक्त किसी और का भय नहीं रहता। सांसारिक वस्तुएँ मिलने-न मिलने का दुख उन्हें नहीं होता, उनका हर कार्य अल्लाह की इच्छानुसार होता है। सूफियों के हृदय अल्लाह के नूर जमाल व कमाल से प्रकाशित और आधीन होते हैं। वह अंधकार और शोषण को दूर करने वाले होते हैं। संस्कार और लोगों की सेवा उनके हथियार और ढाल होते हैं।

सूफियों के सम्प्रदाय यूँ तो कई हैं, परन्तु उनमें मुख्य चिश्ती सम्प्रदाय है जिसको भारत में प्रसारित करने वाले ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती थे। उनके खलीफा ख़्वाजा कुतुबुद्दीन बख़्तियार लाली हुए जिनके खलीफा बाबा फरीदुद्दीन मसूद गंज-ए-शकर हुए जिनके प्रधान खलीफा ख़्वाजा निज़ामुद्दीन औलिया एवं उनके भान्जे अलाउद्दीन साबिर कलियरी हुए। इनके अतिरिक्त भारत के सैकड़ों दरवेश, फकीर और औलिया हुए जिनकी दरगाहें एवं खानकाहें आज भी हर धर्म के अनुयायियों के लिए श्रद्धा के केन्द्र बनी हुई हैं।

मालवा के ऐतिहासिक नगर उज्जैन को भी यह गौरव प्राप्त है कि क्षिप्रा के तट पर निर्धनों के मसीहा महान दरवेश मौलाना मुगीसुद्दीन चिश्ती ने अपने शुभ चरणों से इस नगर को आध्यात्मिक

ज्ञान दिया। आपने इस्लाम की जड़ मालवा में मजबूत की तथा रूहानियत की नहरें जारी की, जिनमें आज भी लोग डुबकी लगा रहे हैं।

मौलाना मुगीसुद्दीन महबूबे इलाही हजरत निजामुद्दीन औलिया के प्रसिद्ध खलीफाओं में से हैं। मौलाना के पूर्वज बलख बुखारा से 1246 ई. में नासिरुद्दीन मेहमूद के समय में दिल्ली आए। उनकी गणना उस समय के औलियों, विद्वानों और सूफी संतों में होती थी। सभी लोग उनको बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे। उन पर सुल्तान नासिरुद्दीन मेहमूद का फकीराना जीवन, ख्वाजा हिसामुद्दीन की संगत का प्रभाव था। वे कई विशेषताओं के धनी थे। उनके चार पुत्र थे- मौलाना बजीहुद्दीन, मौ. ग्यासुद्दीन, मौलाना ख्वाजमी एवं मौलाना मुगीसुद्दीन। चारों भाई निजामुद्दीन औलिया के मुरीद थे। मौलाना ख्वाजमी 'कालपी' में हैं और मौलाना वजीहुद्दीन कामजार मौलाना मुगीसुद्दीन के मजार के परिसर में सीढ़ियों के निकट हैं।

मौलाना मुगीसुद्दीन 22 रबीउल अव्वल 675, हिजरी (1253 ई.) सोमवार को सुबह सबेरे बयाना में बीबी फातिमा से हुए। आप जन्मजात वली थे। कुछ लोग आपको बयाना के काजी मुगीसुद्दीन से जोड़ते हैं, जिनसे सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने राजनीतिक मामलों पर यह सलाह ली थी कि इस्लामी कानून के अनुसार उन समस्याओं का क्या हल हो सकता है। दोनों के वार्तालाप का वर्णन तारीख-ए-फरिश्ना, तारीख-ए-फिरोजशाही इत्यादि पुस्तकों में है परन्तु इनसे उन दोनों के एक होने की पुष्टि नहीं होती। वास्तव में काजी मुगीसुद्दीन और मौलाना मुगीसुद्दीन दो भिन्न-भिन्न व्यक्तित्व हैं।

मौलाना की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा उनके पिताश्री की छत्र-छाया में हुई। पिताश्री उनको उनकी प्रवचन की मण्डली में बैठाया करते थे ताकि उनमें श्रेष्ठ गुणों का विकास हो सके। वे स्वयं भी यह आनन्द उठाना अत्यधिक पसन्द करते थे। उन्होंने मात्र सात वर्ष की आयु में कुरआन शरीफ कण्ठस्थ कर लिया और दस वर्ष की आयु तक तकसीर फिजलाहदीस और अन्य इस्लामी विधाओं का ज्ञान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त उस समय के चोटी के आलिमों की हद्दसीन से संगत करके अपने ज्ञान की वृद्धि की। आपने बगदाद के दारूल उलूम में तीन वर्ष

तक रहकर शिक्षा प्राप्त की। तीव्र वृद्धि और पवित्र आचरण के कारण वे जाहिरी व बातनी इल्म में निपुणता प्राप्त करके छोटी अवस्था में ही मौलाना की उपाधि से गौरवान्वित हुए।

मौलाना मुगीसुद्दीन बाल्यावस्था से ही सत्य भविष्यवाणी किया करते थे। एक समय की घटना है कि मौलाना मोज के पिताश्री ने कुरआन शरीफ कण्ठस्थ करने के उपलक्ष्य में एक समारोह रखा, उसमें सुल्तान नासिरुद्दीन मेहमूद और उनका गुलाम बलवन सम्मिलित हुआ। उन्होंने बलवन को देखते हुए कहा- 'आइये शहन्शाहे हिन्दुस्तान' समारोह में बैठे लोगों ने कहा- 'आप बादशाह नहीं हैं। मौलाना मोज ने कहा- 'हुक्म खुदाबन्दी का इन्तजार करो।' अन्ततः ऐसा ही हुआ 1266 ई. में नासिरुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् बलवन दिल्ली के सिंहासन पर बैठा, उस समय मौलाना मोज की वायु 13 वर्ष की थी। वे बलवन के राज्याभिषेक के समारोह में सम्मिलित हुए और अपना यह सन्देश कहला भेजा की बलवन तुमको खुदा ने उसकी सृष्टि की सेवा के लिए बादशाह बनाया है, तुम आज से शराब का सेवन बन्द कर दो। बलवन ने उनके आदेशानुसार शराब का निषेध कर दिया।

जब उनको हक्र (साय) के खोज की इच्छा हुई तो वे रूहानी शिक्षा प्राप्त करने के लिए उस समय के प्रसिद्ध सूफी ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया के 700 हिजरी में मुरीद हो गये। ख्वाजा निजामुद्दीन ने कहा- 'ए मुगीस आ गये बड़ा इन्तजार था।' ख्वाजा साहब ने उन्हें अपने कक्ष के निकट निवास करने के लिए जगह दी। वे सात बरस तक अपने मुर्शिद की सेवा में रहे।

सन् 707 हिजरी में अपने पीछे मुर्शिद से खिलाफत का खिरका प्राप्त कर मुर्शिद की आज्ञा से माण्डव के सुल्तान मेहमूद खिलजी के समय आकर एक दशक तक लोगों की सेवा में व्यस्त रहे। वास्तव में मालवा और उसके निकट के क्षेत्र में चिश्ती सिलसिले का प्रसार शेख निजामुद्दीन औलिया के निम्नलिखित खलीफाओं के द्वारा हुआ।¹ शेख वजीहुद्दीन युसुफ-चन्देरी, शेख कमाल-धार और मौलाना मुगीसुद्दीन-उज्जैन।

चौदहवीं शताब्दी में इन प्रकाशित दीपकों ने चिश्तिया सिलसिले को मालवा में प्रकाशित करने का सफल प्रयास किया।

माण्डव में कयाम के दौरान मौलाना मुगीसुद्दीन ने एक मस्जिद का निर्माण सागर तालाब के निकट कराया।

एक दिन शुक्रवार की नमाज़ के पश्चात् उन्होंने कहा कि 'फकीर ने माण्डव में बहुत समय व्यतीत किया। परन्तु अब शीघ्र सबसे विदा होगा। क्योंकि यहाँ पर हज़रत मौलाना अबुबक्र अपने पीरो मुर्शिद हज़रत शेरकल शेख ख्वाजा अब्दुल क़ादिर सानी मवली की आज्ञा से आने वाले हैं तत्पश्चात् मौलाना अबुबक्र माण्डव आये। मौलाना मुगीसुद्दीन अपने पीरो मुर्शिद निज़ामुद्दीन औलिया की आज्ञा के अनुसार दिल्ली गये और अपने पीर के दर्शन पश्चात् उनकी आज्ञा से वे बयाना नगर गए। 1320 ई. में अपने पीर की आज्ञा से मालवा की ओर आये और उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर इबादत में लीन हो गये।² क्षिप्रा के तट के पूर्वी घाट पर मौ. मुगीसुद्दीन अपने जीवन के अंतिम क्षण तक अल्लाह के नाम स्मरण में व्यस्त रहे। यहाँ रहकर उन्होंने भटके हुए लोगों को राह दिखाई, दुखियों की सेवा की एवं लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण की। यहाँ उन्होंने एक खानकाह स्थापित की। खानकाह में प्रतिदिन हज़ारों लोगों को लंगर वितरित होता था। मालवा के सुल्तान ने मौलाना मो. ज़की खानकाह के लिए बड़नगर परगने में 4000 रूपया वर्तमान सिक्का के महासिल का एक नया मौजा 'मौलाना' बसाकर उनको भेंट किया और मौजा मताना परगना उज्जैन में 100 बीघा भूमि माण्डव के सुल्तान की ओर से सनदी जागीर भेंट हुई।³ इसकी आय में ही मज़ार के मुतावल्ली के व्यय होते थे।'

मौलाना मुगीसुद्दीन की मृत्यु 17 रबी-उल-सानी 784 हि. (तदनुसार 1362 ई.) में शुक्रवार के दिन हुई। उस समय उनकी अवस्था 109 वर्ष की थी।

सुलतान मेहमूद खिलजी जो कि उनका मुरीद था उनकी मृत्यु का समाचार सुनकर उज्जैन आया। क्षिप्रा नदी के तट पर उनको दफनाया गया।⁴ जो अब तक वर्तमान है। जहाँ उनका निवास था उस स्थान पर दस बीघा भूमि उनके मज़ार के परिसर और कब्रिस्तान के नाम की और सुलतान ने अपने पीरो-मुर्शिद की स्मृति में काले बड़े पत्थरों से एक बड़े घाट का निर्माण किया। जो आज भी देखा जा सकता है।⁵ उनके मज़ार के स्थान के लिए मौलवी मोहम्मद गौसी सत्तार गुलज़ार-ए-अकबरार में

लिखते हैं- अजीब जगह है, हवा और फिज़ा के एतबार से बहिशन (स्वर्ग) का नमूना है।⁶

*चेलबे क्षिप्रा की मौजों में से उक्त चाँदनी।
ये मुगीसुद्दीन मौलाना की जीने ओर घाट।
इस मुकद्दस सरज़मीन पर इस तरह है जलवागर।
तख़ो ताउस पे हो जैसे शहन्शाहों के ठाट।*

मौलाना मुगीसुद्दीन अरबी, फारसी के उच्च कोटि के आलिम कदीब और शायर भी थे। उनका उपनाम 'मौज' था। उनके द्वारा लिखित दीवाने मौज और 'दिगर कुतुब वा' एक अनमोल धरोहर है। ये पुस्तकें मिस्त्र लाइब्रेरी और हस्तलिखित पुस्तकें हज़रत ख्वाजा हसन निज़ामी लाइब्रेरी देहली में और लाहौर में हैं।

उन्होंने उज्जैन में खानकाह बनाई है। ऐसी मान्यता है कि उन्होंने निवास के दौरान मस्जिद सागर तालाब के यहाँ निर्माण कराई और मस्जिद की मेहराब पर कुत्बा कुन्दा कराया था।

*बनाए मस्जिद आली मुगीसुद्दीन दुनियां
अब में आजमहमा खान हफ्ते अकलीन न किश्वर।
जदसते हिम्मद उसूद मर्तबेई चुनी मस्जिद।
कि दारूल उमा खान कसेकाबा बुनद बाबर ॥⁷*

मुरन्तब शुद सुलेहगाहे शब्बालई बनाए ख़ैर किवाई ख़ैर अंदर नाम अमाल खान मुज़गिर।

मौलाना मुगीसुद्दीन धार्मिक परन्तु दयालु और उदार विचार वाले थे। बाल्यावस्था से कभी उनकी नमाज़ कज़ा नहीं हुई वे अपने आयु के बालकों के साथ कभी हँसी मज़ाक नहीं करते थे। बाल्यावस्था से ही वे अल्लाह के नामकरण में लीन रहते थे। वृद्धों की सेवा करना व सम्मान देना अपना कर्तव्य समझते थे। छोटों की मदद करते, सभी को सलाम देकर सम्मान करते थे। वे निस्पृह व्यक्ति थे। धन सम्पत्ति को फकीर के लिए एक बुराई मानते हुए इसे गरीब निर्धनों को वितरित करते थे। उज्जैनवासी मौलाना मुगीसुद्दीन के प्रति अत्यधिक श्रद्धा रखते थे। मौलाना मुगीस के रहन-सहन, रूप-रंग एवं शारीरिक गठन के बारे में कई लोकपरम्पराएँ प्रचलित हैं। यथा, उनके बाल घने घुँघराले

पेचदार थे, माथा चौड़ा, आँखें बड़ी, नूर से भरी व प्रभावशाली थी। नाक तीखी व पतली थी, दाँत बारी चमकते हुए छोटे-छोटे थे, होठ पतले, ठोड़ी गोल, रंग सुर्ख (लाल) एवं सफेद गुलाब के समान था। ऊँचाई अधिक और इकहरा शरीर तथा आवाज़ बुलंद एवं मधुर थी।

उनके वस्त्रों में कुर्ता और तेहमद ही था। सर्दी और गर्मी के लिए केवल एक चादर थी जिसमें कई पेबंद लगे रहते थे। वे सदैव अल्प भोजन और वह भी रूखा-सूखा करते थे। उन्होंने अपने जीवनकाल में अपने मुरीदों को कई शिक्षाएँ दी। उसमें कुछ इस प्रकार हैं- दुष्चरित्र से मित्रता न रखो। दुष्चरित्र विषैले नाग से अधिक खतरनाक होता है। विषैला नाग केवल जान ले सकता है परंतु दुष्चरित्र मित्र तुम्हारा ईमान भी समाप्त कर सकता है। जो इहलोक, परलोक दोनों के लिए स्पष्ट रूप से हानिकारक है। अपने बड़ों का सम्मान करो। उनकी सेवा तुम्हें आदरणीय बना देगी।

केवल इबादत करने वाले, यथा नमाज़, रोज़ा, हज करने वाले अथवा स्नान ज्ञान व ध्यान लेने वाले ही श्रेष्ठ नहीं हैं। ऐसे लोग दुखी मनुष्यों की सेवा और परहेज़गारी का जीवन व्यतीत करते हैं वे भी अल्लाह तक पहुँच सकते हैं।

वह भाग्यहीन हैं जो माता-पिता और बुजुर्गों का आदर-सम्मान न करता हो। वह अज्ञानी हैं जो दुर्व्यवहार करता हो। यदि धन सम्पत्ति न हो तो चुप रहो और यदि हो तो खुदा के रास्ते में व्यय करते रहो।

अपने पड़ोसियों के गुणों की प्रशंसा करते रहो और उनकी बुराईयों को छुपाओ, यह पूर्णत्व है। ईमान यह है कि तुम ईश्वर के विश्वास से उसको पहचानो और रचना की भलाई में विश्वास करो।

नेकी (अच्छाई) के बदले नेकी मिलती है परंतु बदी (बुराई) के बदले में नेकी करना मनुष्य को श्रेष्ठ बना देता है। शायरी रूह का विकास करती है। मनुष्य को शान्ति देती है, हक़ (सत्य) की महफिल में जाया करो क्योंकि इससे मन नम्र रहता है। कम बोलना बुद्धिमत्ता को प्रकट करता है जैसा कि कम खाने

से स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

फर्ज़, नमाज़, जमात (सामूहिक) के साथ पढ़ना, चिल्ला करने से कहीं श्रेष्ठ है, क्योंकि उसके करने से कुर्बे-जिल्ली मिलता है। फर्ज़ नमाज़ को पढ़ने से कुर्बे-हक़ीक़ी प्राप्त होता है।

नमाज़ से आत्मा की उन्नति होती है, क्योंकि नमाज़ में बंदा अपने अल्लाह के बहुत निकट पहुँच जाता है। रोगी का हालचाल पूछना, सलाम का जवाब देना, दावत (निमंत्रण) देना, स्वीकार करना, जनाजे में जाना, नमाज़ों को सामूहिक पढ़ना आदि ऐसे कार्य हैं जिन्हें सभी को पूर्ण करना चाहिए। धन-सम्पत्ति से मनुष्य अमीर नहीं होता, निस्वार्थ और बेनियाज़ होना भी अमीरी है। शोषण को सहना धैर्य नहीं है बल्कि बदला न लेना धैर्य है।

समारोह में दूसरों को स्थान देना, प्रेम को बढ़ाता है। सलाम करने में पहल करना भी प्रेम को बढ़ाता है। कम सोना और सोने के पूर्व अपनी नफ्स का हिसाब-किताब करना इबादत है। कमजोरों की सहायता, बीमारों एवं माता-पिता की सेवा भी इबादत है।

चिशितया सिलसिले के लोगों को अत्यधिक खाना मना है तथा उनके लिए अमीरों और शासकों के नियंत्रण से भी बचना चाहिए।

आत्मसम्मान एवं श्रेष्ठ संस्कार चिशितयों की वास्तविक पहचान हैं। हर व्यक्ति के लिए अच्छे विचार रखना चाहिए यह भी नेकी है।

लोगों की जिक्र बीमारी है उससे बचो। अल्लाह का जिक्र (जाप) करो, इसी में बीमारी का इलाज है। अल्लाह के जिक्र के बिना हृदय कठोर हो जाता है और कठोर हृदय अल्लाह से दूर रहते हैं।

सूफी या वली वे होते हैं जो हक़ (सत्य) को खोजते रहते हैं, यदि तुम किसी की कमजोरी को जानकर उस पर पर्दा डालोगे तो वास्तविक अर्थों में उसका अदा करने वाले हो जाओगे, संबंध और सुलूक उसी का नाम है।

कोई नेक अच्छा काम करने के लिए निश्चय और नीयत करना अनिवार्य है। वह आलिम जो कहता कुछ और करता कुछ

हो। निरक्षर एवं अज्ञानी सूफी एवं ढोंगी फकीर से बचना चाहिए। मनुष्य अपने वंश से नहीं अपने चरित्र एवं कर्म से श्रेष्ठ एवं महान बनता है। माँगकर खाना लज्जाजनक कार्य है। मेहनत से रोटी प्राप्त करना इबादत है।

यदि वे कभी किसी को कुछ चीज देते हैं तो उसको सम्मान से उसके सामने रख देते थे, अर्थात् हाथ न देते थे। उनका कहना था कि मेरा हाथ ऊँचा और लेने वाले का नीचे रखूँ, यह मुझे ठीक नहीं लगता।

उनका कहना था कि लोग मक्का मदीना, काशी, बद्रीनाथ, बनारस, अमृतसर जैसे दूरस्थ स्थलों पर कष्ट उठाकर जाते हैं, वहाँ पर उनके मार्गदर्शकों के चिह्न हैं। मुझे उनसे यही कहना है कि नफ्स के तीर्थ स्थलों की यात्रा करके हृदय की दुनिया में भी पहुँचो, वहाँ तो उन सबके ईश्वर के दीदार हो जाते हैं।

अधिक मत बोलो, क्योंकि इसमें घमण्ड है परन्तु सुनो और अधिक ध्यान से सुनो क्योंकि इसमें नम्रता और ध्यान है।

ज्ञान प्राप्ति करने के पाँच मार्ग हैं। सुनकर (कानों द्वारा), देखकर (नेत्रों के द्वारा), सूँघकर (नाक के द्वारा), चखकर (जीभ के द्वारा) और छूकर (शरीर के द्वारा)।

अगर शासक दुष्चरित्र होगा तो ज़ाहिर खराब होगा और अगर सूफी संत दुष्चरित्र होगा तो ज़ाहिर व बातिन दोनों खराब हो जायेंगे।

मौलाना मुगीसुद्दीन ने कई लोगों को अपना मुरीद बनाया था। मुरीद के लिए अनिवार्य था कि वह चिश्ती सिलसिले की शिक्षा से पूर्णतया परिचित होकर अपने विश्वास को दृढ़ बनाये और जब बेअत करने का निश्चय करे तो प्रातः फज़िर की नमाज़ के पश्चात् ख्वाजा की सेवा में उपस्थित रहे। मौलाना मौज सर्वप्रथम उसका नाम पूछने के पश्चात् सूरे फातिहा और तीन बार सूरे अख्लास पढ़ने की आज्ञा देते और फिर स्वयं पढ़ते और मुरीद को यह आयत दोहराने की शिक्षा देते, तरजुमा इस प्रकार है—‘ईमान लाया रसूल पर और उस चीज पर जो रब की तरफ से नाज़िल (आकाश से उतारी गई) और मोमेनीन सब के सब ईमान लाये अल्लाह पर और उसके फरिश्ते पर और उसकी किताबों पर और

उसके रसूलों पर हम तफरीक नहीं करते। उन रसूलों में से किसी एक और लोगों ने कहा हमने सुना और हमने अमल किया।’

मुरीद को शिरनी का एक कौर अपने हाथ से खिला देते थे और पहली शिक्षा देते थे कि पाँचों समय की नमाज़ सामूहिक रूप से पढ़ते रहना चाहिये और जीवन में शरीयत के कारण को छोड़कर कभी शुक्रवार का गुस्ल (स्नान) मत छोड़ना। मनुष्यों की सेवा के लिए हर समय अपना हृदय, अपने शरीर का उपयोग और अपनी सम्पत्ति व्यय करते रहना।

स्त्रियों के लिए दीक्षा

स्त्रियों की बेअत के लिए उन्होंने आज्ञा दी थी तथा उनके लिए यही पद्धति अपनाई जाती थी— एक प्याला जल अपने सामने रखकर उसमें अपनी दाँयी तर्जनी को डुबाते फिर प्याला मुरीद होने वाली स्त्री अपने सामने रखकर अपने दाँयी हाथ की तर्जनी उसमें डालकर दृढ़ निश्चय करती थी और कहती थी कि मैं, मुरीद होती हूँ और खुदा से मग़फ़िरत (मोक्ष) चाहती हूँ और इस पानी से गीली अँगुली को अपने नेत्रों पर फेरकर वह पानी पी लेती थी। शरीर का कोर अपने हाथ से नहीं देते थे बल्कि उपस्थित लोगों में वितरित कर देते थे। मौलाना मौज उनसे मुरीद होने वाली स्त्री से कभी एकांत में मिलने या वार्तालाप करने की आज्ञा नहीं देते थे। प्रायः कक्ष के बाहर से ही मुरीद कर लेते थे।

वे एक जगह मुरीद हो जाने के पश्चात् दूसरे सिलसिले में मुरीद होना या बेअत करना बहुत बुरा समझते थे। उनके अनुसार बेअत भी जीवित पीर से करना चाहिए। चिश्ती सिलसिले में मजार से मुरीद होने को कभी पसंद नहीं किया गया।

मौलाना मुगीसुद्दीन ने अपने जीवनकाल में कई करामतें की और लोगों को लाभ पहुँचाया जैसे—एक बार उज्जैन और उसके आसपास में भयानक सूखा पड़ा। लोग भूख से मरने लगे। इसी बीच उनके एक मित्र सौदागर ने 25,000/- दिरहम भेजकर माँग की कि मेरे ठहरने के लिए उज्जैन में नदी के किनारे अपने निवास के निकट एक घर बनवायें, उनके पास सुबह व शाम आने में आसानी रहे। मौलाना मुगीसुद्दीन ने वह रकम पूरी की पूरी निर्धनों और बेसहारों में बिना धार्मिक भेदभाव के वितरित

की ताकि लोगों की जान बच सके। उन्होंने मित्र को कहलवाया कि मैंने तुम्हारे लिए जन्नत में एक मकान क्रय कर लिया है, मित्र ने उत्तर दिया कि यदि आप उसकी जमानत दें कि मुझे जन्नत का मकान मिलेगा तो मुझे स्वीकार है क्योंकि शरीअत के अनुसार कर्म तो ऐसे नहीं हैं। मौलाना मौज ने जमानत का विश्वास दिलाया और कहा कि तुम्हें जन्नत में मकान मिलेगा। ऐसी मान्यता है कि उसी रात उनको स्वप्न में भविष्यवाणी सुनाई दी- ऐ मुगीस! अबकी बार तो तुम्हारी जमानत स्वीकार कर ली है परंतु अब भविष्य में किसी के लिए इस प्रकार जमानत देने की भूल मत करना। पुण्य व उसका पुरस्कार देने का अधिकार अल्लाह ने अपने पास रखा। वे आजीवन इस बात के लिए अत्यधिक शर्मिन्दा रहते थे।

एक दिन कुछ सिपाही एक कैदी को रस्सी से हाथ बांधे हुए क्षिप्रा के तट पर पानी पिलाने के लिए ठहरे। उस समय ख्वाजा मुगीसुद्दीन वुजू फरमा रहे थे। मौलाना मुगीसुद्दीन की कैदी के मुख पर जैसे ही दृष्टि पड़ी तो उन्होंने तुरंत वुजू पूर्ण किया और खड़े होकर दुआ पढ़ी।

दुआ पढ़ने के पश्चात् सिपाहियों को संबोधित करते हुए कहा- अल्लाह उसका मददगार है और ये बरी होगा।

उपरोक्त सत्य सिद्ध हुआ और वह अपराधी न्यायालय में ससम्मान बरी हो गया। इस घटना के पश्चात् वह सिपाही और व्यक्ति मौलाना मुगीस के भक्तों में सम्मिलित हो गये।

मौलाना मुगीस के दफनाने के समय की भी एक चमत्कारिक घटना है, जब हजरत मुगीस को दफन के लिए कब्र में उतारा गया तो नीचे ज़मीन पर गुलाब के ताजा फूल बिछे हुए दिखाई दिये। एक मुरीद ने उनमें से एक फूल उठा लिया, ऐसी मान्यता है कि वह मुरीद 40 साल तक जीवित रहा और तब तक वह पुष्प ताजा व सुगंधित रहा है। उसकी मृत्यु के पश्चात् वह पुष्प मुरझा व सूख गया। मौलाना मुगीस के जीवनकाल में उपरोक्त प्रकार के और कई चमत्कार भी प्रकट हुए।

मौलाना मौज में हर धर्म के लोग विश्वास रखते थे। उनकी करामात लोगों पर प्रकट थी। कहा जाता है 'चिश्तिया एहमद शाह बादशाह दिल्ली को भी उनसे लाभ पहुँचा था। ग्वालियर के महाराज

की ओर से मज़ार की रक्षा की अच्छी व्यवस्था थी। सरदार आपाजी, सरदार घोरपड़े लश्कर को भी बहुत श्रद्धा थी, वे यहाँ से लाभावित्त होते रहे और 32 वर्ष तक उर्स में ग्वालियर से आकर अपनी श्रद्धा के सुबूत देते रहे। उस समय के मालवा के हाकिम यहाँ पर श्रद्धा के पुष्प चढ़ाते रहे और आँखें बिछाते रहे। स्वर्गीय सेठ इलाहीबख्श ने शपथ ली थी कि जब तक मज़ार पर छत न होगी, छतरी का प्रयोग धूप या बारिश के लिए नहीं करना। अतः सायामय सोने का कलश सेठ इलाहीबख्श की ओर से बनाया गया। वर्तमान में भी उनके भवन में दूर-दराज से लोग आते हैं।

उज्जैन में क्षिप्रा के तट पर मौलाना मुगीसुद्दीन मौज का मज़ार स्थित है, जो फिजाओं और दृश्यों की दृष्टि से स्वर्ग का नमूना है। हर शुक्रवार रात्रि को प्रायः लोग भेंट-प्रसाद दरवेशों को वितरित किया करते हैं।

मज़ार के उत्तर में पाँच बीघा, दक्षिण में आठ बीघा, दस बीघा पूर्व से पश्चिम तक इस प्रकार उपरोक्त बीस बीघा में उनका परिसर व रोजा है। मिर्जा आदिल बड़े (उज्जैन नगर के धनी सेठ) ने मौलाना साहब के मज़ार के चूबतरे को और अधिक ऊँचा करवाया। 1763 हिजरी में कलंदरी मस्जिद निर्माण कराई और अपने संरक्षण में वर्तमान कुत्बा खुदवाया।

उत्सव

मौलाना मुगीसुद्दीन का वार्षिक उर्स 172वीं उल सानी को अत्यधिक हर्षोल्लास से होता है। महफिलें समा होती हैं। मौलाना मुगीसुद्दीन पर आज भी लोग अत्यधिक श्रद्धा रखते हैं।

रहमत अली शाह (छुम-छुमशाह बाबा)

रहमत अली शाह बाबा ने छुमछुम शाह सुहागी बाबा के नाम से प्रसिद्धि पाई। उनका जन्म इंदौर के निकट धार में हुआ। 18 वर्ष की आयु में मोहम्मद शाह दरवेश (नौ जिला होशियारपुर से बेअत हुए) वे अमीर अली शाह इंदौर वाले के मुरीद थे। उनका पंथ मदारिया, सहरवादिया था। सूफी मत ग्रहण करने के पश्चात् उनके हृदय में ईश्वर के नाम का जाप करने की इच्छा जाग्रत हुई। अतएव उन्होंने माण्डव गढ़ के पहाड़ों एवं वनों में एकांत में पेड़ों की पत्तियाँ खाकर तप किया एवं वर्षों तक तपस्यारत

रहे। मदनी बाबा उनके समकालीन थे। एक समय जब मदनी बाबा ने छुम-छुम बाबा का वन में जाप देखा तो वे बहुत प्रसन्न हुए और उनकी पीठ थपथपाई।

इन्दौर, धार एवं माण्डव निवास के पश्चात् छुम-छुम बाबा ने उज्जैन की ओर प्रस्थान किया। प्रारंभ में गोपालमंदिर के निकट अब्दुल्लाह शाह के निवास स्थल पर ठहरे। इसके पश्चात् वे उज्जैन में विभिन्न स्थानों पर रहे।

15 फरवरी 1944 ई. को इन्दौर छावनी में उनका अवसान हुआ। उनकी वसीयत के अनुसार उन्हें उज्जैन में नीलगंगा मोहल्ले में दफनाया गया।

छुम-छुम बाबा ने आजीवन ब्रह्मचर्य धर्म का पालन करते हुए तपस्वी जीवन व्यतीत किया। 50 वर्ष की आयु के होने पर उन्होंने भोजन त्याग दिया तथा उल्टी चटाई पर सोना आरंभ कर दिया। शरीर को तपाने के कारण वे कृषकाय हो गए। स्वयं भूखा रहकर दूसरों को खिलाया, यदि किसी की बुराई दिखाई देती तो उसे मुख पर प्रकट कर देते थे। उज्जैन में प्रति 12 वर्ष में लगने वाले सिंहस्थ के मेले में अवश्य पधारते थे। इसी प्रकार अब्दुल्लाह बिबानी (काली बावड़ी, माण्डव) के वार्षिक उर्स पर अवश्य जाते थे। धर्मपुरी में भी निवास करते थे। उन्होंने कई लोगों को अपना शिष्य बनाया। उदयजीराव एवं महारानी (धार), महाराजा सेतुराम एवं महारानी (मल्डन) सरदार नारायण राव महाडिक (धार) टाटाभाई छावनी (इंदौर) देवास महाराज आदि शासक गण भी उनके भक्तगणों में से थे।

छुम-छुम बाबा का नियम था कि वे उसे ही शिष्य बनाते थे जो उनका शजरा (गुरुओं की वंशावली, जो पैगम्बर मोहम्मद साहब से प्रारंभ होती थी) अपने पास रखता हो।

छुम-छुम बाबा से संबंधित कई चमत्कार प्रचलित हैं। यथा-उन्होंने एक समय मिट्टी के नादिया को घास खिला दिया था। एक भण्डार के समय उन्होंने धार में बहुसंख्यक लोगों को भोजन करा दिया। उन्हें नर्मदा नदी से विशेष लगाव था। महेश्वर में भण्डारा के समय घी न होने पर नर्मदा के जल से भोजन पकवाया, जिसने घी का कार्य किया।

विचारदर्शन

छुम-छुम बाबा धर्मसहिष्णु थे। वे उज्जैन नगर में विचरण करते हुए मन्दिर-मस्जिद कहीं भी ठहर जाते थे। प्रायः उनके हाथ में एक तलवार रहती थी। समाज कल्याण की ओर भी उनका ध्यान रहता था। एक बार जब महाराजा जीवाजीराव सिंधिया उज्जैन पधारे तो उन्होंने बाबा से भेंट की। उन्हें कल्याण एवं निष्पक्ष न्याय का उपदेश दिया।

यद्यपि बाबा का जन्म इंदौर क्षेत्र में हुआ परन्तु उन्होंने अपना अधिकांश समय उज्जैन में व्यतीत किया।

उज्जैन नगर से उनका अटूट प्रेम था, इसी कारण उन्हें उनकी वसीयतानुसार उज्जैन में नीलगंगा मोहल्ले में रेलवे फाटक के दक्षिणी ओर ठीक सामने दफनाया गया। मज़ार सुन्दर पक्का व ऊँचे चबूतरे पर है जो चारों ओर से मेहराबों और जालियों से घिरा हुआ है। ऊपर बड़ा सा सुन्दर गोल गुंबद बना है। चबूतरे के मध्य पक्के मज़ार के ठीक नीचे कच्चा मज़ार है, जिसके लिए दक्षिणी ओर से मार्ग है। मज़ार के चारों ओर अमरूद के वृक्ष हैं। मज़ार के बाहर बड़ा सा परिसर है। मज़ार के निकट बंगाली बाबा का मज़ार है जो उनके उत्तराधिकारी थे। उत्तर की ओर एक कुँआ खुदा है उनके भक्तगण प्रतिवर्ष उनकी पुण्यतिथि पर उर्स करते हैं। इसमें उज्जैन के बाहर के कई भक्तगण आते हैं। समा की महफिल (कव्वाली) का विशेष आकर्षण रहता है। वर्तमान में भी कई देशों के भक्त उनके आचार-विचार, मानव-प्रेम एवं चमत्कारिक घटनाओं की सत्य कहानियाँ सुनाते हैं।

शाह मोहम्मद अब्दुल अजीज़ सूफी

उज्जैन की धरती पर बड़े दूर-दूर से सूफी औलिया अथवा दरवेश आए। प्रेम एवं परोपकार से लोगों के हृदय पर शासन किया और लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण हो इसके लिए ईश्वर से प्रार्थना की। इबादत एवं सेवा करते-करते वे चिरनिद्रा में सो गए।

उज्जैन की इस धरती पर जहाँ बहुसंख्यक औलियाओं का आगमन हुआ, वहीं इस पवित्र धार्मिक नगरी में 19वीं शताब्दी में एक पुण्यात्मा का भी जन्म हुआ जिनके आध्यात्म की सुगंध न

केवल मालवा बल्कि राजस्थान, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश आदि स्थानों पर फैली। उनके भक्तगण आज भी देश के कोने-कोने में फैले हुए हैं। शाह मोहम्मद अब्दुल अजीज सूफी, चिश्ती, साबिरी, सहरवर्दी, कादरी, नक्शबंदी, सम्प्रदायों के निचोड़ को मानते थे।

अकबर खाँ के यहाँ 1877 ई. में सूफी अब्दुल अजीज का जन्म उज्जैन नगर में हुआ, उनकी माता एक धार्मिक विचारों वाली स्त्री थी। उन्होंने अब्दुल अजीज को प्रारंभ से ही सदाचारी जीवन व्यतीत करने की शिक्षा दी। एक बार बाल्यावस्था में नमाज़ न पढ़ने के कारण माँ ने कड़ा दण्ड दिया जिसे वे आजीवन विस्मृत नहीं कर सके और वे पक्के नमाज़ी बने रहे।

उन्होंने फारसी-अरबी का गहरा अध्ययन किया। उन्होंने अपने मूसा सूफी मौलवी बुलंद खाँ नक्शबंदी (अब्बा मियाँ) से दीक्षा प्राप्त कर उनकी शिष्यता ग्रहण की। तत्पश्चात् मौलाना मौलवी शरफुल देहलवी से शिक्षा प्राप्त की। इसके पश्चात् कड़ी तपस्या करना प्रारंभ कर दिया। मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती के मज़ार पर वे सम्पूर्ण रात्रि खड़े होकर तपस्या किया करते थे। उस समय मात्र वे 19-20 वर्ष के ही थे। आजीवन उन्होंने लोगों की सेवा सुश्रुषा तथा इबादत की। वृद्धावस्था में उनके नेत्रों की ज्योति धीमी पड़ गई थी।

परन्तु उन्होंने कभी भी अपने निर्धारित कार्यक्रम में परिवर्तन नहीं किया। वे चारों प्रधान सूफी पंथ चिश्ती, सहरवर्दी, कादरी नक्शबंदी के नियमों के प्रतिपालक थे। उनके परिवार की विशेषताएँ थी कि इनमें एक न एक सूफी संत अवश्य होता था।

उन्होंने अन्य चिश्तिया पंथों के समान विवाह भी किया। उनकी पत्नी बिस्मिल्लाह बी की मृत्यु एक पुत्री कनीज़ फ़ातमा के जन्मदिन के कुछ माह पश्चात् ही हो गई, अतः उन्होंने नवजात बालिका का पालन-पोषण माता एवं पिता दोनों के रूप में किया। उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया।

उनकी ख्याति शीघ्र ही चारों ओर फैलने लगी। भुसावल (महाराष्ट्र) के असंख्य निवासी उनके शिष्य बन गये। भुसावल में उनकी भेंट एक मस्त बाबा पोटली वाले से हुई। जो किसी से न बात करते न अन्न जल ग्रहण करते थे। परन्तु उन्होंने बाबा अजीज से वार्ता की और उनके साथ चाय भी ग्रहण की। यह देख

लोगों की श्रद्धा और अधिक बढ़ गई और वे उनकी शिष्यता ग्रहण कर स्वयं को गौरवान्वित समझने लगे। पोटली वाले बाबा का मज़ार भुसावल में है। इसी प्रकार भुसावल में एक 'खाला अम्मा' नामक मस्त संत से भी मुलाकात हुई।

अमरावती के अब्दुल गनी जो चार-पाँच वर्ष की आयु से ही वलियों के समान आचार-व्यवहार करते थे। बाबा अजीज से मिलने पर उनके भक्त हो गए थे। उनका मज़ार नागपुर में है।

कुछ वर्ष बाबा जलगांव में भी रहे, परन्तु उनका उज्जैन आगमन होता रहता था। बाबा के मुरीद पुणे, नासिक, मुम्बई में भी थे।

बाबा साहब अपने अन्तिम समय में स्थायी रूप से उज्जैन में रहने लगे। उनका नियमित कर्म इबादत एवं लोगों की तन-मन से सेवा था। अन्त समय में उनके मानी सिराजुद्दीन बाबा ने उनकी पूर्ण सेवा की। आजमखान जो कि उनके मौसा और भक्त थे उनकी सेवा कर स्वयं को आध्यात्मिक रूप से लाभान्वित किया। मृत्यु से पूर्व उन्होंने अन्तिम खलीफा अहमद नूर हकीम इन्दौर को नियुक्त कर उन्हें अपनी लाठी व खिरका भेंट किया। 90 वर्ष की आयु में 1967 ई. सोमवार को प्रातः उनका अवसान हुआ।

उन्हें मौलाना कमालुद्दीन चिश्ती के मज़ार के परिसर में दफनाया गया। प्रतिवर्ष उनके मज़ार पर हिजरी मासानुसार 10 रबी उल अव्वल को उर्स होते हैं।

उनके उत्तराधिकारी नाती सिराजुद्दीन बाबा उनके स्थान पर गादी पर बैठे। वर्तमान में उनके अनुयायी भक्त उज्जैन के अतिरिक्त इंदौर, देवास, आष्टा, भुसावल, जलगांव, नागपुर, अमरावती, कानपुर, पुणे, नासिक, मुम्बई आदि में फैले हुए हैं।

शेख अली अफगान चिश्ती

शेख अली अफगान चिश्ती ने 50 वर्ष तक मौलाना मुगीसुद्दीन चिश्ती की मज़ार पर सेवाएँ दी। कभी किसी से उन्होंने किसी बात की अपेक्षा नहीं की, एकान्त में वे ईश्वर का नाम स्मरण करते रहे। हिजरी 1012 में मोहम्मद गौसी उज्जैन पधारे तो शेख अली अफगान के पास वृद्धावस्था की कमजोरी के

कारण न आ पाने का संदेश भेजा था किन्तु उन्होंने मिलने की उत्कट इच्छा की, तो शेख ने स्वयं भेंट की। यह उनकी अंतिम भेंट बताई जाती है। वे 100 वर्ष तक जिए उनकी कब्र केवल डेढ़ फुट की है जो शेख मुगीसुद्दीन की मजार के चबूतरे के नीचे उत्तर दिशा में है। इनके दब जाने से क्षिप्रा तट पर एक अन्य मजार बनाई गई है। जिसे जाली से विष्टित किया गया है।

बायन सज्जु उज्जैन

शेख बायन सज्जु चन्देरी से उज्जैन आए थे।

शेख औलिया

ये कालपी से उज्जैन आए थे।

शेख प्यारा नूर ज़हूर

उज्जैन के प्रसिद्ध मज्जब शेख प्यारा नूर ज़हूर प्रेम से ओत-प्रोत मधुर स्वर में कीर्तन करते रहते थे। मालवा निवासी मज्जब रहन-सहन, खान-पान के संबंध में बेसुध रहते थे। ऐसी अवस्था में वे अपने परम सत्य में फ़ना हो गये।

शेख अब्दुल क़ादिर

1560 में उज्जैन आए। 1615 में मृत्यु हुई। इनकी मजार हम्मालबाड़ी में है।

सैयद इब्राहिम नूरी

इनकी मजार शक़िबपुरा में है।

बाबा कमालुद्दीन

उज्जैन नगरी की यह विशेषता रही है कि भारत के अतिरिक्त अन्य मुल्कों से बड़े-बड़े सूफी यहाँ आये हैं।

बाबा कमालुद्दीन की मजार नई पैठ उज्जैन में है, ये मजार 800 वर्ष पुरानी है। यहाँ पर हर साल उर्स बड़े जोर-शोर से मनाए जाते हैं। उर्स के समय बाबा के मुरीद ग्वालियर से आकर बड़ी धूमधाम से यहाँ चादर चढ़ाते हैं फिर नागपुर के उर्स में जाते हैं।

मेगज़ीन बाबा

इनकी मजार सेठी नगर व भक्त नगर के बीच में है। मजार के आसपास पक्की मुंडेरें बनी हुई है। लोगों को इनके बारे में ठीक से ज्ञात नहीं है कि यह कहाँ से आए हैं और कौन हैं, पर लोग श्रद्धा से यहाँ अपनी मुरादें लेकर आते हैं और उनकी मुरादें पूरी भी होती हैं। इनके मजार के पूर्व दिशा की ओर मलंगशाह बाबा का चिल्ला है।

पीर मच्छन्न शाह

हज़रत पीर मच्छन्न शाह रजि-उल्लाह का मजार ग्राम भीतरी में है। जो भर्तहरि गुफा व गढ़ कालिका के निकट स्थित है। हज़रत पीर मच्छन्न शाह रजि-उल्लाह एक रूहानी बुजुर्ग थे। इनके मजार के लिए ग्वालियर के महाराजा सिंधिया ने 12 बीघा ज़मीन मजार शरीफ के इंतजाम के लिए वक्रफ की थी। वे वक्रफ ज़मीन खुर्द-बुर्द हो चुकी हैं। लेकिन मजार शरीफ के ही पास है।

उज्जैन जिले के सूफी संतों में पीर मच्छन्दर शाह का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

उज्जैन जिले के सूफी संतों में पीर मच्छन्दर शाह बाबा के मजार पर लाखों श्रद्धालु जाते हैं। हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्म के लोग इन्हें मानते हैं। मुस्लिम इनको पीर मच्छन्न शाह कहकर पुकारते हैं हिन्दू इन्हें मच्छन्दर नाथ कहते हैं। इनकी मजार के चारों ओर खुला मैदान है। नमाज़ के लिए दरगाह के करीब एक छोटा बरामदा है, जहाँ चमेली का पेड़ है। हिन्दुओं द्वारा यहाँ शरद उत्सव का आयोजन किया जाता है और मुस्लिमों द्वारा उर्स का।

मौलवी याकूब अली खान

मोहम्मद याकूब अली खान याकूब मियाँजी के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे महिदपुर के निवासी थे तथा पठान काज़ी परिवार से संबंधित थे। वे मौलवी मोहम्मद अहमद रज़ा के समकालीन थे। महिदपुर से उज्जैन आने पर कसाईपाड़ा मोहल्ले की मस्जिद में इमाम के पद पर सेवाएँ दी। वे अरबी व फारसी के ज्ञाता तथा लेखक भी थे। वे ब्रह्मचारी थे, कभी किसी से कुछ न मांगना उनका नियम था। कभी-कभी केवल चने एवं गुड़ से निर्वाह

करते थे। उन्हें पवित्रता, स्वच्छता अत्यंत प्रिय थी।

हजरत खलाल शाह बाबा

खलाल शाह लकड़ियाँ बेचते थे, वे जाने राकेब में निवास करते थे। मस्जिद की सेवा कार्य करते थे। परेशान, अस्वस्थ, पीड़ित व्यक्ति उनके पास आकर लाभान्वित होते थे। उनकी मृत्यु 1933 ई. में हुई। मृत्योपरांत उन्हें जामे शकेब में ख्वाजा शकेब के चरणों की ओर दफनाया गया। मजार कच्चा है और एक मेहराब के आकार का कक्ष बना है।

नबी साहब की दरगाह

गुदरी चौराहा से क्षिप्रा नदी की ओर जाने वाले मार्ग के बायीं ओर व्यापक क्षेत्र में एक पुख्ता मस्जिद नबी साहब की दरगाह तथा कुछ मजारात, हुजरा आदि स्थित हैं। यहाँ पुख्ता हिसार प्राचीन समय में ही पुराने मसाले का तामीर किया हुआ है। मस्जिद का मुख्य द्वार शाही तर्ज का बना है। इस प्रवेश द्वार के शीर्ष पर लगे शिलालेख को पढ़ने से ज्ञात होता है कि यह स्थान बादशाह फरुखसीयर ने हिजरी सन् 1132 में आबाद किया था। इसमें प्रवेश करने पर दायीं ओर सुन्दर मस्जिद पुख्ता तामीर है। समीप ही एक हुजरा बना हुआ है। मस्जिद के मध्य मेहराबों पर बारीक नक्काशी का कार्य किया हुआ है। छत के चारों कोनों पर 4-4 फिट के छोटे मीनार तथा उनके मध्य छोटे-छोटे मीनार बने हुए हैं। सेहन वाले भाग के समीप मुगलिया शिल्प कला शैली का एक सुंदर आकर्षक गुम्बद तामीर किया हुआ है। इस गुंबद में पत्थर के कदम शरीफ रखे हैं, जो हजरत मोहम्मद साहब के बताये जाते हैं। इस रोजे को नबी साहब की दरगाह के नाम से काफी पुराने समय से पुकारा जाता है और मस्जिद को नबी साहब की मस्जिद।

रोजे में रखे कदम शरीफ को 1130 हिजरी सन् में मोहम्मद अमीन खाँ साहब फरुखसीयर के समय मदीना मुनव्वरा से लाया गया था। उन्होंने ही इस रोजे में कदम शरीफ को रखा था। मोहम्मद अमीन खाँ के बारे में कहा जाता है कि बादशाह फरुखसीयर के दरबार के विश्वासपात्र उमरा में से एक थे। मस्जिद के सहन में थोड़ी दूर पर अहाते में ही मोहम्मद अमीन साहब की

मजार है। पुराने समय से यहाँ नाना प्रकार के गुल-फूल वाले दरख्तों तथा अनार, जाम, आम, जामुन, इमली, नीम, पीपल के वृक्षों की हरियाली और फूलों की सुगंध बड़ी भली मालूम पड़ती थी। लेकिन समय के साथ-साथ सब कुछ बदल गया। यहाँ पर न अब गुलाब-चमेली-मोगरा है और न ही नाग, चम्पा। गुले अब्बास अब कोई भी नहीं है। पुराने समय में तामीर एक गहरा पुख्ता कुँआ अभी मौजूद है। मस्जिद के मुख्य प्रवेश द्वार के शीर्ष पर लगा शिलालेख जिस पर फारसी के अहवाल का पता चलता है। शिलालेख पर प्रथम पंक्ति में कलगा फिर बादशाह फरुखसीयर का नाम व सन् अंकित है। मस्जिद में नियमित रूप से नमाज़, रमज़ान में तरावीह पढ़ी जाती है तथा रोज़ा अफ़तार भी होता है।

नज़मी रोज़ा

कमरी मार्ग स्थित नज़मी रोज़ा दाउदी बोहरा समाज का एक पवित्र स्थान है। कलात्मकता में ये छोटे ताजमहल का रूप माना जाता है। संगमरमर की बेहतरीन नक्काशी का नायाब नमूना है यह रोज़ा। करीब सात सौ वर्ष पूर्व इसका निर्माण सेठ नज़रअली भाई ने करवाया था।

आध्यात्मिकता के धनी नज़रअली भाई ने धार्मिक भावना से प्रेरित होकर एक पवित्र तीर्थ स्थल का निर्माण करने का संकल्प करके देश के ख्याति प्राप्त कारीगरों को बुलाकर करीब पाँच लाख रूपयों से अधिक राशि व्यय करके इस पावन तीर्थ स्थल का निर्माण कार्य करवाया।

इस रोज़े में सैयदना इब्राहिम वजीउद्दीन एवं सैयदना अब्दुल क़ादिर नज़मुद्दीन साहब की मज़ारे हैं। सारे विश्वभर के दाउदी बोहरा समाज के लोग इस तीर्थ में ज़्यारत करने आते हैं। इसी रोज़े में सेठ नज़रअली भाई की कब्र भी बनी हुई है। एक विशाल गुंबद के नीचे बने इस रोज़े में अनेक बुजुर्गों की कब्रें बनी हुई हैं।

इस रोज़े के बाहरी भाग में एक विशाल सुसज्जित मुसाफिरखाना भी है, जिसमें बाहर से आये यात्री नाम मात्र के शुल्क पर ठहरते हैं। मुसाफिरखाने में प्रतिदिन दोनों वक्त का भोजन यात्रियों के लिए मुफ्त मिलता है और समाज के जरूरतंद बेसहारा लोगों को यहाँ खाना मुफ्त खिलाया जाता है।

यहाँ उर्स मुबारक के पावन अवसरों पर मेला सा लगा रहता है। उर्स और ईद के पर्व पर गरीब लोगों को काफी चीजें भेंट स्वरूप प्रदान की जाती हैं। ऐसे ही उर्स के अवसरों पर चारों तरफ जगमगाती रोशनी से वातावरण इतना मोहक लगता है कि लोग देखते रह जाते हैं।

उज्जैन में आमिल साहब विशेष उत्सवों के अवसर पर सामूहिक प्रार्थना एवं धर्म के मानने वाले लोग यहाँ ज़्यारत करने के लिए नियमित आते हैं। यह रोजा धार्मिक सामंजस्य का अनोखा संगम स्थल है।

आसताना सैयद हसनजी बादशाह बाबा

उज्जैन बहादरपुरा बाखल में स्थित एक मस्जिद के सहन में संगमरमर से तामीर इस सुंदर व आकर्षक रोज़े में बोहरा सम्प्रदाय का वह मान सूफी आराम की नींद सो रहा है जिसे सैयदी हसनजी बाक के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है।

सैयदी हसनजी अपने पिता शमसखान के खानदान के आफताब थे। आपने दो आते इकराम मौलाना कुतुबुद्दीन, मौलाना शुजाउद्दीन साहब की बहुत खिदमत की थी। मौलाना बदरुद्दीन की सैयद हसनजी पर बहुत नवाज़िश थी इसलिए मौलाना बदरुद्दीन ने आपको इल्मों इरफान की दौलत से खूब मालामाल किया है। बादशाह बाबा ने अद्दाई ज़की साहब की सेवा की उनसे दुआएँ ली थी। गुजरात और विशेष रूप से मालवा में रहकर आपने बोहरा समाज के सामाजिक उत्थान तथा समाज में व्याप्त छोटी से छोटी बुराई और कमी को दूर करने हेतु खूब मेहनत की। धार्मिक प्रचार-प्रसार एवं समाज में कई शहरों में रहकर खूब परिश्रम किया। खुदा के इस मेहबूब और वली सिफत बंदे ने अपना सम्पूर्ण जीवन इंसान, दोस्ती और मानव के दुःख-दर्द को बाँटते हुए गुजारा। बताया जाता है कि बाबा ने जब दुनिया से परदा किया था उस समय भी हिन्दू-मुस्लिम सभी धर्म के अक्रीदतमंद आपकी चौखट पर आकर अपनी मनोकामना पूरी कर घर लौटते। बाबा के परदा करने के पश्चात् अब भी उनके आसताने पर हिन्दू-मुस्लिम बोहरा समाज के सैकड़ों अक्रीदतमंद पेश होकर उनकी इबादत व बरकत से फ़ैज़याब होते हैं। बादशाह बाबा का विसाल 1102 हिजरी माह रजब अल मुरज्जब को हुआ। बहादरपुरा स्थित मस्जिद के सहन में बने बाबा के रोज़े पर प्रतिदिन हजारों की

संख्या में नियमित रूप से बोहरा समाज के मर्द, औरत, बूढ़े जवान ज़ियारत करने आते हैं। बादशाह बाबा का सिलसिला मौलाई फ़ख़रुद्दीन औरंगाबादी से मिलता है।

ख़्वाजा करीमुद्दीन चिश्ती

उज्जैन प्राचीन काल से ही धार्मिक एवं न्यायप्रिय नगरी के रूप में विश्व के मानचित्र पर अपनी शिनाख़्त कायम किए हुए है। इस सरज़मीन की यह विशेषता रही है कि भारत के अतिरिक्त अन्य मुल्कों से बड़े-बड़े सूफियों ने यहाँ आकर अपनी तालीमात एवं प्रवचनों द्वारा हिन्दू-मुसलमान के बीच प्रेम की ज्योति जगायी है।

छत्री चौक गोपाल मन्दिर के कमरी मार्ग दायीं ओर एक सुंदर द्वार बना हुआ है जिसे दौसी दरवाज़ा कहा जाता है। यह द्वार महान सूफी के आस्ताने एवं मस्जिद का प्रवेश द्वार है, जिसके कदम वर्तमान से लगभग 650 वर्ष पूर्व यहाँ आये थे। वह महान सूफी अनवारूल मुल्क हज़रत ख़्वाजा करीमुद्दीन चिश्ती समर कंदी उर्फ अर्जानी दूल्हे शाह के नाम से जाने जाते हैं। आप महबूब इलाही हज़रत निजामुद्दीन औलिया जिनका मज़ार देहली में है, उनके ख़लीफा हैं। जिस स्थान पर आप अबदी नींद सो रहे हैं, वह प्राचीन अवस्था के अनुसार ही है। मज़ार के अगले भाग में मस्जिद स्थित है। जिसका नाम आपके नाम के अनुसार मस्जिद अर्जानी दूल्हा प्रचलित हो गया। मज़ार के दायीं और बायीं ओर कुछ प्राचीन पक्के मज़ारात है। बायीं जानिब एक प्राचीन कलन्दी मस्जिद है। फिरदौसी दरवाजे से प्रवेश करने पर बायीं ओर लगभग साढ़े चार फिट की ऊँचाई वाले भाग पर सुंदर मस्जिद है। मस्जिद की शिल्पकला व निर्माण में उपयोग हुए मसाले को देखकर सहज ही यह कयास लगाया जा सकता है कि यह मस्जिद शहर की मुख्य जामा मस्जिद एवं मिर्जावाड़ी मस्जिद के निर्माण के समय में तामीर की गई, जबकि उक्त दोनों मस्जिदों का निर्माण आज से 200 वर्ष से भी अधिक समय पूर्व किया गया था। शिल्पकला तथा नक्काशी का कार्य एवं मेहराबों, मीनारों तथा गुम्बदों की तर्ज एवं काट भी समानता लिए हुए है। मस्जिद के अंदरूनी हिस्से में बड़ी-बड़ी कंगूरेदार मेहराबें हैं। पश्चिम दिशा की दायीं जानिब एक सुंदर पुख्ता रोज़ा बना हुआ है जिस पर किया गया बारीक नक्काशी का कार्य देखने से तआल्लुक रखता है।

अर्जानी दुल्हा शाह का जन्म समरकंद बुखारा में हुआ था।

आप सूफी दस्ते के साथ भारत में अजमेर आये, ऐसा कहा जाता है कि करीब 10 वर्षों तक ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (अजमेर) के पास रहे। इसके पश्चात् पीरोमुर्शिद के आदेश से आप उज्जैन आने वाले पहले सूफी हैं, आपके नाम के साथ समरकंद और अर्जानी शब्द जुड़ने का कारण यह बताया जाता है कि तुगलक काल में एक बार वर्षा नहीं होने के कारण सूखा पड़ा तो लोगों में हा-हा-कार मच गई और लोग दाने-दाने को तरस गए। उस समय आपने खुदा से दुआ की तो खूब वर्षा हुई। अनाज खूब हुआ। किसानों ने खुशी में अनाज को खूब सस्ता बेचा। अर्जानी शब्द का अर्थ सस्ता होता है। इस कारण आपके नाम के साथ अर्जानी तथा समरकंद में जन्म होने से समरकंदी पड़ गया। आपके आस्ताने एवं मस्जिद में इबादत गुजार बंदों के आने-जाने का सिलसिला जारी रहता है।

शेख अहमद मुतव्वकील

शेख अहमद मुतव्वकील शेख गौस के शिष्य थे, और पूर्वी भारत से आए थे। शेख अहमद मुतव्वकील ने शेख गौस से शिक्षा प्राप्त की। शेख अहमद अपने गुरु शेख गौस की आज्ञा से उज्जैन में बस गए। ये अपनी दिनचर्या भिक्षाटन द्वारा करते थे। ये शक्तारी सम्प्रदाय से संबंधित थे। इनकी मृत्यु 1589-90 के मध्य हुई।

शेख आलम

ये भी एक महान सूफी संत हुए। ये शक्तारी सम्प्रदाय से

संबंधित थे। इनका मजार उज्जैन में है। लोग इनके मजार पर श्रद्धालु ज्यारत करने आते हैं, इनकी मृत्यु के बारे में ठीक-ठीक पता नहीं है।

शेख कमाल मोहम्मद अब्बासी

शेख मोहम्मद अब्बासी 1075 हिजरी में 16 की पहली दशाब्दी में अहमदाबाद से उज्जैन आए और यहीं पर इन्होंने कालपी से आए सूफी परिवार की कन्या से विवाह किया। ये विशेषतः धर्मशास्त्र पर व्याख्यान देकर फतवे लिखते रहे और साथ ही साथ सूफी परम्परा का भी विकास किया।

शेख मूसा चिश्ती

आप उज्जैनवासी थे। 10 वीं सदी हिजरी में तसव्वुफ की ओर चलने हेतु शेख चंदन मंदसौरी से बेअतली वे उनके खलीफा हुए। शारीरिक कष्ट व नपस से संघर्ष में वे अव्वल थे। वे अत्यंत अल्पभोजन से कृषकाय हो गए। उन्होंने दूर-दूर की यात्रा की। यात्रा के दौरान उन्होंने (शेख मूसा ने) जिया उल्लाह गौसी काजी, सदरुद्दीन (लाहौर) काजी जलालुद्दीन तथा तत्कालिक सदर अब्दुल नबी से भेंट कर वैचारिक आदान प्रदान किया। उन्होंने ईश्वर प्रेम तथा भक्ति में जीवन डुबो दिया, उनकी मजार मौलाना मुगीसुद्दीन की मजार के पूर्व दिशा में है उस पर एक कुत्बा लगा है। इनकी मृत्यु 986 हिजरी में हुई है। इनका एक शेर है-

हस्त महबूत ज इंसान निसबत

मूसा एमन, रब अरनी गरब गोयद तनतरानी, शनुद,

वे सागी बाबा के नाम से भी जाने जाते थे।

संदर्भ -

1. निजमा खलील अहमद, पृष्ठ 866, 2. गौसी सक्तारी : पृष्ठ-111, 3. खान एम, हाशमी : दयारे मौज, पृष्ठ-5, 4. नूरानी अहमद नूरखान, पृष्ठ-42, 5. तवारीख बुजुर्गाने-दीन-पीराने धार मुल्क मालवा, रिसाली पृ. 15, 6. एक सदी की रोशनी, पृ. 15, 7. तवारीख बुजुर्गाने दीन पीराने धार मुल्क मालवा, रिसाल, पृष्ठ-15-16।

सूफी कलाम और संगीत

निसार अहमद

‘सूफी कलाम और संगीत’ विषय पर विचार करने के लिये सूफीमत के प्रारम्भिक इतिहास का अति संक्षेप में जिक्र करना अत्यन्त आवश्यक है।

एडवर्ड सी. सचाऊ ने अपनी पुस्तक ‘अल्वेरूनीज इंडिया’ के पृष्ठ 33 पर लिखा है कि-‘सूफी मत के इतिहास का प्रारम्भ हुजूर सखरे कायनात के मक्का से मदीना तशरीफ ले जाने से होता है। यह घटना सन् 623 ई. की है।’

उस समय तसव्वुफ में दर्शन का प्रवेश नहीं हुआ था। उस दौर में याने प्रथम युग में अल हसन या अबू हसन बसरावी (सन् 643 से 728 ई.), इब्राहीम बिन अधम (मृत्यु सन् 783 ई.), राबिया बसरी (801 ई.) और अयाज आदि अनेक सूफी बुजुर्ग हुए। इस युग में सूफियों में एकांतप्रियता, फ़िक्र (ईश्वर चिंतन) और ध्यान जनित आनंद में सदा मस्त रहना, यहीं तक सीमित था। इसी कारण डॉ. निकोल्सन ने उन्हें शांतिवादी कहा है। इन सूफियों के लिये सिर्फ तौबा (पश्चाताप) और तवक्कुल (आत्म समर्पण) प्रमुख था। इन पर इस्लाम की मौलिक भावनाओं का पूरा असर था और किन्हीं बाहरी विचाराधाओं का प्रभाव दिखाई नहीं देता। इस युग को ‘आचरण प्रधान युग’ माना गया है। यह युग सन् 813 ई. के आस-पास तक रहा।

इसके बाद का दूसरा युग- ‘चिन्तन प्रधान युग’ कहलाया। अब्बासी खलीफ़ाओं का शासनकाल शुरू हो गया था।

खलीफ़ा हारून रशीद और मामूर रशीद के शासनकाल में यूनानी दार्शनिकों के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रंथों का अनुवाद हुआ। साथ ही भारतीय दर्शन, वेदान्त और बौद्ध दर्शन का अध्ययन और अनुशीलन किया जाने लगा। ईरानी संस्कृति, ईसाइयों का भाव योग और

प्लेटिनस का नव अफलातूनी मतवाद भी अपना असर डालने लगा।

इस दौर के प्रसिद्ध सूफी मारूफुल कर्खी का नाम आता है जिन्होंने तसव्वुफ की प्रमुख विशेषता 'परमतत्त्व की अनुभूति और सांसारिक विषयों के त्याग' में निहित मानी है। इनके अलावा अबु सुलेमान दारानी (मृत्यु सन् 830 ई.), जलनून मिस्त्री (मृत्यु सन् 859 ई.) का नाम आता है, जिन्हें मौलाना जामी ने आगे चलकर अपना आदि गुरु तस्लीम किया है। बायज़ीद-अल-बस्तामी ने कदाचित् सर्वप्रथम 'फना' अर्थात् सूफियों के 'निर्वाण' का प्रतिपादन किया था।

इनके अलावा मंसूर हल्लज जिन्होंने 'अन-अल-हक्र' कहा और जुनेद बगदादी हुए जो अपने समय के सूफियों में अग्रगण्य माने गये हैं। जिन्होंने इस्लाम और तसव्वुफ की दो विपरीत समझी जाने वाली विचारधाओं में सामन्जस्य लाने की कोशिश की। मंसूर हल्लज की चर्चित पुस्तक 'किताबुत्तवासीन' है।

दूसरे विचारक साधक हुज्वेरी हैं जिन्होंने 'कशफुल महजूब' की रचना की। इसके बाद अल ग़ज़ाली (मृत्यु सन् 1111 ई.) हुए जो संत के अलावा दार्शनिक भी थे। इनकी कोशिशों से इस्लाम और तसव्वुफ के बीच समझा जाने वाला विरोध प्रायः समाप्त हो गया। आपकी मशहूर कृति 'इहिया-उल-उलूम' है। सूफीमत को इस्लाम में पूरी मान्यता प्राप्त हो गई।

अलग़ज़ाली ने संगीत को भी महत्त्व दिया और उसे अनन्त तक जाने का दाव (द्वार) बताया। (संदर्भ-अल ग़ज़ाली-द मिस्टिक)

तेरहवीं शताब्दी में सूफीमत के प्रचार में निम्न बुजुर्गों का प्रमुख योगदान रहा और जिन्होंने साहित्य में सूफी मत को विशेष अभिव्यक्ति दी, उनमें सनाई, फरीदुद्दीन अत्तार, मौलाना जलालुद्दीन रूमी और शेख सादी तथा अमीर ख़ुसरो के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। हाफिज़, रूमी और शेख सादी ने सांसारिक प्रेम की भाषा का उपयोग करके ईश्वरीय अनुभूति को अभिव्यक्त किया है। निजामी, ख़ुसरो और जामी ने भी अनेक मसनवियाँ लिखीं।

तसव्वुफ की सम्पूर्ण साधना प्रेम पर आधारित है। सूफी

साधना का मूल तत्त्व प्रेम और यही एकमात्र केन्द्रीय तत्त्व हैं।

सूफियों के प्रेम तत्त्व को ईरान के सूफी कवियों ने एक प्रतीकात्मक आधार प्रदान किया। उनकी मसनवियों से यह ज़ाहिर है कि इश्क मजाज़ी (संसारिक प्रेम), इश्क हक़ीक़ी (परमात्मा का प्रेम) एक सोपान हैं।

जलालुद्दीन रूमी ने इश्क मजाज़ी और इश्क हक़ीक़ी को समझाते हुये अपने एक शेर में कहा है कि सांसारिक प्रेम भी अपनी पराकाष्ठा पर अमूर्त हो जाता है। उन्होंने कहा है कि 'तू इस ऊपरी बनावटी इश्क को त्याग दे। रंग-रूप और चेहरों पर इश्क नहीं होता। माशूक़ा सूरत नहीं है।'

रूमी ने अपनी एक मसनवी में लिखा है कि प्रेमी ने प्रियतम का द्वार खटखटाया भीतर से आवाज़ आई कौन? जवाब दिया- मैं! प्रियतम ने कहा- 'इस घर में तेरे और मेरे दोनों के लिये जगह नहीं।' वह बरसों भटकता रहा। एकांतवास और इबादत में लगा रहा। उसका 'मैं' (अहं) जब खत्म हुआ फिर दरवाज़ा खटखटाया आवाज़ आई- 'कौन?' जवाब दिया- 'तू है।' फौरन दरवाज़ा खुल गया। जब मैं समाप्त हुआ तब दोनों का मिलन संभव हुआ। (पं. रामपूजन तिवारी- 'सूफीमत-साधना' और साहित्य' पृष्ठ 311)

सनाई कहता है कि- 'अगर तुझे अपने आप को किसी रंग में रंगना हो तो प्रेम के रंग में रंग, क्योंकि इस रंग में रंगा हुआ इन्सान मृत्यु के बंधनों से छूट जाता है।' (ईरान के सूफी कवि पेज, 44)

उमर ख़ैय्याम के अनुसार- 'जिसका भी नाम प्रेमियों की सूची में आ गया, उसको न तो दोज़ख की फ़िक्र होती है न जन्नत की ख़्वाहिश।'

फारसी के सूफी शायरों की मसनवियों में सांसारिक प्रेम को माध्यम बनाकर परम प्रेम की ही बात कही गई है।

फरीदुद्दीन अत्तार ने प्रेम की महत्ता को बड़े ही सशक्त रूप से व्यक्त किया है- 'प्रेम का एक कण भी सारे संसार से ज्यादा क़ीमती है। यह रस ही सारे जगत का सार है।'

निजामी ने कहा है कि 'प्रेम से रहित एक सांस निकालना भी व्यर्थ है'

विसाल

सूफियों का चरम लक्ष्य प्रिय से मिलन या विसाल है। इसकी उत्कंठा को सूफी शायरी में 'शौक्र' कहा है। मार्गरेट स्मिथ ने-'राबिया द मिस्टिक' में राबिया बसरी का कथन उद्धृत किया है-'तुमसे मिलन होगा, यही मेरी एकमात्र आशा है, क्योंकि यही मेरे जीवन का चरम लक्ष्य है।' फिर वह हसन बसरी से कहती है-'मेरा अस्तित्व समाप्त हो गया है। मेरा अहं नहीं गया है। मैं प्रिय के साथ एकाकार हो गई हूँ और पूर्ण रूप से उसकी हो गई हूँ।'

इजात अब्दुल क़ादिर जीलानी ने कहा है-'हमारे झोपड़े के दरवाजे में बेपर्दा दाखिल हो जा, क्योंकि मेरे घर में दर्द के सिवा और कोई नहीं है।'

*बेहिजाबा ना दर आ अज़ देर काशानाए मा
के कसे नेस्त बजुज दर्दे तो दरखानए मा*

(दीवाने गौसुल आजम, संपादक-निजामी मोहम्मद मुस्लिम अहमद कुतुबखाना नजीरिया, देहली पृष्ठ 17)

निजामी ने अपनी मसनवी 'लैला मजनू' में मृत्यु का फ़लसफ़ा बयान करते हुए कहा है कि-'यह मौत नहीं, बाग़ और बेरस्तां है। यह दोस्त के महल का रास्ता है। इसके बिना महबूबा तक पहुँचना नहीं होगा।'

रूमी ने एक शेर में कहा है कि-'खुदा के आशिकों का खुदा के अलावा कोई मज़हब नहीं है। इश्क़ का मज़हब सभी मज़हबों से अलग है। (आइ.ए.निकल्सन-रूमी-पोएट एंड मिस्टिक-हक़ीम निजामी गंजवी कृत)'

ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती (ग़रीब नवाज़) के एक शेर का भावार्थ यह है कि-'ऐ मुईन, अक्ल की आँख से दोस्त का हुस्न न देख, मजनू की आँख से लैला के हुस्न को देख।' (दीवान ख़्वाजा ग़रीब नवाज़-संग्रहकर्ता मुस्लिम अहमद निजामी, उर्दू बाज़ार मस्जिद, देहली)

फ़ना और बक्रा

'मैं' को समाप्त करने की बात सूफी अपने कलाम में तरह-तरह से करते हैं। साधक के मन में प्रेम की ज्योति जलती रहती है। वह विरह अग्नि में तपता हुआ संसार की पूरी सत्ता को भूल जाता है। तब सांसारिक विषय-विकार, इच्छाएँ, आकांक्षाएँ और सभी द्वन्द्व समाप्त हो जाते हैं। उसके 'अहं' का पूर्ण विनाश हो जाता है। यह 'फना' है और इसके 'बाद' 'बक्रा' की अवस्था आती है जिसमें परमसत्ता के साथ उसका तादात्म्य या विलय हो जाता है और उसी महामिलन की अवस्था में वह रहने लगता है।

सूफी शायरी के हवाले से निकल्सन ने अपनी पुस्तक 'आइडिया ऑफ़ पर्सनालिटी इन सूफीज़्म' में फना की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फना' आत्मा की वह विकास दशा है, जब उसकी सारी इच्छाएँ, सभी स्वार्थ और सभी सांसारिक मोह विनष्ट हो जाते हैं।

सूफी कलाम में प्रमुखता रूबाई, ग़ज़ल और मसनवी की है। मसनवी पद्धति के उच्च कोटि के शायर सनाई, फरीदुद्दीन अत्तार और रूमी माने जाते हैं। इसी से हिन्दी काव्य में प्रेमाख्यान की परम्परा चली।

'रूबाई' पर्शिया का सम्भवतः पुराना छंद है और वहाँ पर अत्यधिक लोकप्रिय था। अबू सईद बिन अबुल खैर (मृत्यु सन् 1049 ई.) रहस्यवादी रूबाई लिखने वालों में पहले शायर माने जाते हैं। उमर ख़ैयाम की रूबाइयाँ विश्वविख्यात हैं।

शेख़ सादी की अधिकतर शायरी नीति और आचार के संबंध में है। 'बोस्तां' उनका शायरी ग्रन्थ है।

'हाफ़िज़' की ग़ज़लों में इश्के मजाजी और इश्के हक़ीक़ी दोनों भरपूर मात्रा में हैं।

डॉ. इक़बाल अहमद के अनुसार अमीर खुसरो पूर्वी दुनिया में सर्वमान्य हैं। उन्हें सांस्कृतिक समन्वय का उन्नायक कहा जाता है। वे कवि, कलाकार, संगीतज्ञ, सेनाध्यक्ष, इतिहासकार, भाषाविद् और एक महान संत थे। उन्होंने फारसी में प्रचुर मात्रा में लिखने के अलावा हिन्दी भाषा में (जिसे वह हिन्दवी कहते थे) काफी

कलाम लिखा। उन्होंने सभी विधाओं में कलाम लिखा। उन्हें 99 पुस्तकों का रचयिता कहा जाता है।

कंठ माधुर्य के कारण पीरो मुर्शिद ने खुसरो को 'मिफ़ताहुस-समा' (संगीत की कुंजी) की उपाधि दी थी।

फारसी से उर्दू की सूफी शायरी की तरफ आये तो सर्वप्रथम शम्स वलीउल्ला या 'वली' का नाम आता है जो खुद भी एक सूफी थे। ख़्वाजा मीर दर्द ने उर्दू और फारसी दोनों भाषाओं में लिखा। उनकी रचनाओं में इश्क़े हक़ीक़ी की गंभीरता है। इनके समकालीन में मीर हसन और मीर तक़ी 'मीर' के नाम प्रमुखता से आते हैं।

हिना आफरीन ने अपने मज़मून 'मुश्तरेका तहजीब की तशकील में उर्दू की सूफ़ियाना शायरी' (प्रकाशित रिसाला जामेआ मार्च 05) में मज़हर जाने जाना के बारे में लिखा है कि आप एक सूफी बुज़ुर्ग़ थे जिनकी ज़िन्दगी सुलूक और रुशदो हिदायत में गुज़री। उनका एक शेर-

*इलाही दर्दोगम की सरज़मी का हाल क्या होता,
मोहब्बत गर हमारी चश्मेतर से मेह न बरसाती।*

ख़्वाजा मीर दर्द ने कहा-

*दैर था, काबा था या बुतखाना था
हम तो सब मेहमां थे तू ही साहबखाना था।*

मीर तक़ी 'मीर'-

*'मीर' के दीनो मज़हब का पूछते क्या हो उनने तो
कशक्रा खींचा, दैर में बैठा, कब का तर्क इस्लाम किया।*

असगर गौंडवी-

*ज़र्ज़र-ज़र्ज़र था जहाँ रहरबे राहे फ़ना
सामने की बात थी, जिसको ख़बर समझा था मैं*

इस तरह हम कह सकते हैं कि सूफी साधकों ने परमसत्ता को प्रियतम के रूप में देखा उसके लिये दिल में प्रेम की व्याकुलता थी और उसका प्रेम पाना ही उनका अभीष्ट था। उनकी विचारधारा

और कलाम का सार अपने अहं को भुलाकर परमसत्ता के साथ व्यवधान को दूर करना था।

सूफी संगीत

यह सर्वमान्य सत्य है कि इस्लाम में संगीत एवं गाने-बजाने की सख्त मुमानियत है। लेकिन नबी-ए-करीम (सल.) के दौर में एक वाक्या मशहूर है कि जब आप मक्का में हिजरत करके मदीना तशरीफ ले गये उस समय आपके इस्तक्रबाल में मदीना मुनव्वरा की बालिकाओं ने दफ बजाकर गीत गाये थे। मुझे जानकारी मिली है कि उस गीत को इस दौर में रेकार्ड करके कैसट निकाले गये हैं।

ख़्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती अजमेरी जिनका काल 1142 से 1236 ई. है, खुद भी शायरी करते थे। आपने सर्वप्रथम गाने को प्रचलित किया। आपकी ख़ानकाह में आयोजित समां की महफ़िलो में आरेफ़ाना कलाम गाया जाता था, मगर साज़ या संगीत की इजाज़त नहीं थी। ख़्वाजा बख़्तियार काकी ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ के साथ ही बग़दाद से भारत आये थे और ग़रीब नवाज़ के खलीफ़ा थे। उनका इन्तकाल शेख़ अली सिजिस्तानी की ख़ानकाह में 'हाल' की स्थिति में हुआ, जहाँ कुछ कव्वाल गा रहे थे-

*कुश्तेगाने खंजरे तसलीम रा
हरज़मा अज़ग़ैब जाने दीगर अस्त*

अर्थात् 'रज़ा' और तस्लीम के खंजर से हुए शहीदों को हर समय ग़ैब से ज़िन्दगी मिलती रहती है।

यह महफ़िल हज़रत रिसालक मआब स. के उर्स मुबारक तक़रीब में मुनअक्रिद थी। (फवायदुल फवाद पृ. 139)

इन बुज़ुर्ग़ों की ख़ानकाह में 'समां' की महफ़िलें आयोजित हुआ करती थीं। समां का अर्थ आध्यात्मिक संगीत है और इसका शाब्दिक अर्थ 'सुनना' है। सूफियों की निगाह में समा का अर्थ हृदय के कान में उस संगीत का श्रवण करना है जो उसे ईश्वरीय प्रेम में, निमग्न करता है। (नूरबख़्श जावेद Sama in Suism जो तेहरान (ईरान) में प्रकाशित हुई थी।)

देहली में मशाइक़ की ख़ानकाह में समा का रिवाज था।

इसको क्राजी हमीदुद्दीन नागौरी ने राइज किया था। एक बार देहली में सूखा पड़ा। सुल्तान अल्तमश ने क्राजी हमीदुद्दीन नागौरी से बारिश के लिये दुआ करने की दरखास्त की। उन्होंने महफिले समां आरास्ता की जिसमें शेख सग़ाजी, एहमद नेहरवाली, बदरुद्दीन समरबंदी, शेख मेहमूद जैसे बुजुर्ग मौजूद थे। जैसे ही समां शुरू हुआ बारिश भी शुरू हो गई। इसका जिक्र 'फवाहदुल फवाद' में है।

हज़रत निजामुद्दीन औलिया समां की महफिलें अपनी खानकाह में आरस्ता किया करते थे। आपने वसीयत फरमाई थी कि मेरा जनाज़ा समां करते हुए ले जायें। मगर हज़रत रूकनुद्दीन मुल्तानी ने वसीयत की तामील न करने की जिम्मेदारी खुद कुबूल कर ली और आम लोगों को यह कहकर मुतमईन कर दिया कि अगर समां हुआ तो शेख उठ बैठेंगे और आलम में फितना बरपा हो जाएगा। समां के बारे में हज़रत महबूबे इलाही के तआल्लुक का अंदाज़ा कि आप कभी क़व्वालों को देखकर रोने लगते थे, पूछा तो फरमाया- 'ये क़व्वाल महबूब के पैगम्बर हैं।'

एक बार क़व्वाल नहीं थे तो आपने हज़रत अमीर खुसरो से फ़रमाया- 'तुर्क, आज तुम क़व्वाल बन जाओ और हम सुनते हैं। पहले कुरआन की तिलावत की गई, फिर ह. अमीर खुसरो ने अपनी एक ग़ज़ल तरनुम में सुनाई, जिसका मसला है-

*माहे हिलाल अबुए मन अक्ले मरा शैदा मकुन
गमज़ा ज़ना जो सोमिया आंहगे जाने पर मकुन*

हज़रत पर ऐसी कैफियत तारी हुई जिसका बयान करना मुमकिन नहीं।

सूफी संगीत का जिक्र अधूरा रह जाएगा अगर उसमें क़व्वाली और ह. अमीर खुसरो के योगदान की बात न की जाए। हसनुद्दीन ने अपनी रचना 'क़व्वाली और अमीर खुसरो' में लिखा है कि साधारण क़व्वाली का अविष्कारक ह. अमीर खुसरो माने जाते हैं। लेकिन रशीद मलिक ने अपनी किताब 'संगीत और अमीर खुसरो' में कहा है कि 'क़व्वाली और तराना दोनों ह. अमीर खुसरो से पहले की चीजें हैं।' क़व्वाली और तराना समां के आरम्भिक सोपान हैं।'

क़व्वाली अरब में 10 वीं सदी से भी पहले मौजूद थी। अबुल फ़रज़ अली इब्न अलहुसैन अस्फानी (897-967 ई.) ने अपनी अद्वितीय पुस्तक 'अल अगामी' में बर्न अब्बास के समय की 100 चुनी हुई धुनें विशिष्ट संकेतों और चिह्नों में स्पष्ट की है। उस दौर में गायकों की टोलियों को 'नोना' कहते थे।

अब्दुल क़ादिर इब्न नसीम (मृत्यु सन् 1435 ई.) के काल में समां चार प्रकारों में कौल, ग़ज़ल, तराना और फर्ददम्त के रूप में विकसित हो चुकी थी। रूबाई को संगीत की भाषा में तराना कहते थे।

कश्फुल महजूब का रचनाकाल 1015 ई. है। उस समय समां की वैधता पर वाद-विवाद शुरू हो गया था। इमाम ग़जाली ने अपनी 'विश्व प्रसिद्ध पुस्तक' 'अहयाउल उलूम' में समां को वैध बताया है।

सूफी साधकों ने समां को अपने संदेश को जनसाधारण तक पहुँचाने का सरल एवं सुंदर साधन समझा और वे इसमें सफल भी रहे।

समां और तराना की उन्नत शकल क़व्वाली को माना गया है और इसके विकास में तथा इसमें हिन्दी संगीत का मिश्रण करने में ह. अमीर खुसरो का बहुत बड़ा हाथ है। (हुसनुद्दीन अहमद)

डॉ. वहीद मिर्ज़ा के मत में- 'यह चीज़ लगभग विश्वसनीय है कि अमीर खुसरो ने भारतीय राग में बहुत कुछ सुधार किये थे और इसमें एक क्रांति को जन्म दिया था।'

ह. अमीर खुसरो ने भारतीय और ईरानी रागों को मिलाकर नये राग ईजाद किये। उन्होंने अपने ग्रंथ 'किरानुस्सादैव' में कहा है कि मुझे ईरानी संगीत के चार उसूलों, बारह पदों और सूक्ष्म रहस्यों का ज्ञान है।

खुसरो को सितार और तबले का अविष्कारक माना जाता है। मुहम्मद करम इमाम का कहना है कि अमीर खुसरो ने अनेक तालों का आविष्कार फारसी छन्दों के आधार पर किया।

खुसरो के प्रभाव से हिन्दी भाषा के गीत दरगाहों और खानकाहों में क़व्वालों के द्वारा गाये जाने लगे।

कुतुबुद्दीन खिलजी के काल में ह. अमीर खुसरो ने भारत को विश्वभर में सर्वश्रेष्ठ देश और भारतीय संगीत को सारे संसार में सर्वोत्कृष्ट घोषित करते हुए अरब के संगीत से उसे उच्च कोटि का बताया है।

यह सिलसिला हर दौर में रहा और आज तक भी बुजुर्गों की खानकाहों और मजारों पर जारी है। बेदम शा वारसी और सांद

बुतेलशा के नामों का उल्लेख भी विशेष रूप से किया जाना चाहिये।

अंत में सूफी कलाम और संगीत आज भी क़व्वाली और ग़ज़ल के रूप में संगीत की दुनिया में अपना विशिष्ट मुकाम बनाये हुए हैं और श्रोताओं के दिलों पर उसका राज्य कायम है।

वीर लोरिक शौर्यगाथा

डॉ. अर्जुनदास केसरी

*राम न राम गुन गावै के ठाकुर, भजली नाम हो तोहार।
देविया न सुमिरली भगवती, दुर्गा जानऽ सकी तोहार।*

-लोरिकायन : पृष्ठ-120

शील, शक्ति, शौर्य और पराक्रम कुछ वंशानुगत और कुछ अर्जित गुण हैं। भारत धर्मप्राण और आध्यात्म-प्रधान देश है। यहाँ जो भी व्यक्तित्व महान् हुए हैं, उन्हें किसी न किसी अध्यात्मिक शक्ति का वरदान प्राप्त था। लोरिक को शक्ति की देवी दुर्गा इष्ट थीं जिसके कारण उसका शौर्य और पराक्रम समूचे लोक में विश्रुत हुआ। लोरिक में यह अतुलित शौर्य कहाँ से कैसे आया ?

लोरिक की शौर्यगाथा अपने देश-प्रदेश ही नहीं, अन्य प्रदेशों और देशों में भी मध्यकाल से ही जन-सामान्य के लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई हैं। क्योंकि इसमें सामाजिक समरसता विद्यमान है। इसमें हर जाति, वर्ग, सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व है। अभीर वंशी लोरिक का गुरु अजई धोबी है। लोरिक जमुनी कलारिन से सम्बन्ध स्थापित करके वीर पुत्र देवसिया को जन्म देता है। मंजरी के गर्भ से जन्मा अभोरिका और चनवां के गर्भ से जन्मा चनरइता भी अतुलित पराक्रमी है। क्यों न हो, बाँस की जड़ से बाँस ही न पैदा होता है।

इसीलिए 'लोरिकायन' अभीर जाति सहित अन्य जातियों का 'रामायण' बन गया और कहा गया-

'आठ काण्ड रामायण तो बारह काण्ड लोरिकायन।'

xxx

‘केतनउं अहिरा होइ सयान, लोरिकी छोड़ न गावै आन ॥’

‘लोरिकायन’ का नायक लोरिक वीर, महान् विजेता, पराक्रमी और अति प्राकृतिक बलवीर्य से सम्पन्न अनेक नायिकाओं का प्रिय पात्र है। वास्तव में वीरगाथा में अपेक्षित वीरतापूर्ण कार्यों की संगति नायक की युवावस्था से, उसके पराक्रम तथा प्रेम-व्यवहार से होती है। लोरिक की कर्मभूमि अगोरी-गोठानी, सोन, रेंण, बिजुल की त्रिवेणी का तट रहा है। वहीं के निवासी नूरे केवट के अनुसार, डॉ. अर्जुनदास केसरी द्वारा 22 हजार पंक्तियों में लिपिबद्ध ‘लोरिकायन’ में लोरिक को एक अप्रतिम योद्धा और पराक्रमी के रूप में चित्रित किया गया है। भादों के भैंसा की तरह उसका बलिष्ठ शरीर है और वह उसी तरह चलता भी है-

वह दिन मरगस मरगस बाय चलत।

जैसे भादों भैंसा मकनात।

-लोरिकायन : पृष्ठ-30

अगोरी के तिलकहरू जब लोरिक का तिलक करने गउरा जाते हैं तो वह अखाड़े में कुशती लड़ रहा होता है। उसका मित्र गंगिया नाई जब कहता है कि तिलक आया है, नहा-धोकर द्वार पर चलो तो वह कहता है- ‘मैं तो ऐसे ही चलूँगा, जिसको गरज होगी, अपनी कन्या का विवाह मुझसे करेगा।’

उसके इन शब्दों में सहज हठ, दर्प, आत्मविश्वास का परिचय मिलता है। वह यथार्थवादी है और सहजता को प्रमुखता देता है। वह धूल-धूसरित, लंगोट पहन नंगे बदन जब घर पहुँचता है तो विशाल-मजबूत द्वार बंद मिलता है। उसके दाहिने पैर से प्रहार करते ही दरवाजा खलंगी-खलंगी होकर टूट जाता है-

‘तानकर मारत एंडा बनाय

केवाड़ी खलंगी-खलंगी बाय नोचायल।’

यह तो लोरिक के बल का प्रथम परिचय है। लोरिक की वीरता का विशेष परिचय तो तब मिलता है जब कोटा के राजा से उसका युद्ध होता है। वह गंजड़े की पेटी, कुर्ता, पांवों में गुलबदन तमान, अजगर की पेटी, लोहे की जिरही (जिसमें नौ मन लोहा अंटता है), साठ गज का दुपट्टा आदि पहने युद्धोचित वीरवेश में



माँ बंसरा देवी जिनसे लोरिक मंजरी ने तलवार के बल पर विजयी होने का वरदान प्राप्त किया था।

प्रस्तुत होता है। वह दुर्गा से खड्ग प्राप्त कर शत्रुओं को एक ओर से काटता, लाश से धरती को पाटता, दूसरी ओर निकल जाता है-

‘पूरबय काटत उत्तर घूमल

एक फेवरा देलेस खांड सब घुमाय।

घण्टा छमीछा के ममिला

टाल देलेस कोटासे में गंजवाय ॥’

-हस्तलिखित संग्रह : पृष्ठ-48

इसके पूर्व गउरा के बलशाली राजा के लाख विरोध के बावजूद सवा लाख बाराती अगोरी में लोरिक और मंजरी के साथ



अगोरी दुर्ग जिसमें राजा मोलागत रहता था और जिसमें लोरिक कैद था, परंतु छलांग लगाकर बाहर आ गया था।

विवाह के लिए प्रस्थान करते हैं। लोरिक स्वयं उनका प्रतिनिधित्व करता और अन्यान्य बाधाओं-वर्जनाओं के रहते वह अपने लक्ष्य में सफल होता है। कोटा के राजा को पराजित कर जब वह बारातियों के संग अगोरी से पूर्व सोन नदी के तट पर पहुँचता है तो देखता है, सोन का भयंकर तीक्ष्ण प्रवाह! उसके मार्ग में फिर बाधा उपस्थित करता है। नदी के उस पार झीमल मल्लाह को राजा मोलागत पहले ही से आगाह कर रखा है कि किसी भी हालत में वह बारातियों को पार न करें। इसकी जानकारी जब लोरिक को होती है तो वह मुस्कराता है। राजा की खबर लेने की धमकी तो देता ही है झीमल को उसका बाल बांका न होने के लिए पूर्ण आश्वस्त करता है; तब भी जब उसे विश्वास नहीं होता तो अपनी एक कांख में पिता कूबे को और दूसरी कांख में भाई संवरू को दाबकर एक ही छलांग में गंगा से भी अधिक पाट वाली, भयंकर वेग वाली नदी पार कर जाता है। उसकी इस वीरता का स्वागत करते हुए झीमल अन्य सभी बारातियों को नाव से पार उतारने का आदेश देता है।

‘बायें न संवरू के बाय दाबत,
दहिने दाबत कठइता बाय ददा,
हाथे छेंकना बाय लगवले,
भाई लेतय गुरुववा का नाम।
चंफा न अहीर बाय डांकत,
डांक कर गयल नदी ओय पार।’

-लोरिकायन : पृ.-52

राजा अगोरी किले से यह सब देखकर दौंतों तले उंगली दबा लेता है और युद्ध की कल्पना कर उसकी नींद हराम हो जाती है।

इधर मंजरी चिंतित है कि कल क्या होगा? राजा के सामने लोरिक की एक न चलेगी। वह सम्भावित विपत्ति को ध्यान में रखकर लोरिक के पास संदेश भेजती है कि वह उससे अर्द्धरात्रि में मिले। ऐसा ही होता है। संदेश पाकर लोरिक गंगिया के साथ मंजरी से यथासमय मिलता है। वह उसके साथ बहिन की तरह व्यवहार करता और कहता है-‘तुम तनिक भी चिंता न करो। मैं सब कुछ देख लूँगा। एक वीर से वीर का पाला पड़ा है।’ इतना ही नहीं, वह उठता और द्वार पर रखी पत्थर की विशाल नाल उठाकर अपनी शक्ति का आभास दिलाकर उसे आश्वस्त करता है। मंजरी कुछ आश्वस्त होती है-

‘राती न रात देख भवा, आजय लेहीं जोर आजमाय।
जो भाई गुमुस नाल खा जाई,
तब फेर रूकल अगोरी पाल नाहीं, रातय रात भाग जाबय।’

इतना ही नहीं, वह देखिये नाल उठाता कैसे है, कानी उंगली से फूल की तरह-

‘अहीर डांकत चंफा अंगनई से,
जाय कर गिरत दुवारे पर बाय।
दहिने न हाथे का कनगुरिया,
अहीर पेसत नाली में बाय।
लेकर पोरसन नाल बा उठवले,
जहाँ दसय फेवरवा घूम जाय।
कह दा फेंक देहीं नाल गंडरा में।’

-लोरिकायन : पृ.-102

‘अरे! यह नाल, कहो तो इसे अपने घर गउरा में फेंक दूँ। अरे बाप रे बाप! अगोरी की नाल सैकड़ों किलोमीटर दूर गउरा चली जायेगी। वाह रे वाह! ‘धन्य है गउरा का पानी, गउरा की माटी। प्रणाम है उसे जिसने ऐसे वीर पैदा किये।’

कोटा के राजा के बाद लोरिक का दूसरा युद्ध राजा मोलागत के पालतू नामी पहलवान मरदमल के साथ होता है। राजा, मरदमल

को आधा राज्य देने का वचन देकर मंजरी का अपहरण कर लाने का न्यौता देता है। अब लोरिक और मरदमल में घोर संग्राम छिड़ जाता है। लोरिक खेल-खेल में ही, अल्प यत्न से उसे धराशायी कर देता है। सुनिये वृत्तान्त-

‘खींचत न गोंजा बा अइला का,
मरदमल के अकय बकय बाय बन्हाय।
बाजत न साठी बाय अहिरे का,
छड़-छड़ जांघी खून फेंकाय ॥’

-लोरिकायन : पृष्ठ-120

मरदमल की दुर्दशा देखकर राजा और चिढ़ता है और प्रतिशोध के लिए अपमान की आग में जलता हुआ पश्चिम के राजा अखिलेश, दक्षिण के राजा कोरइया और पूरब के राजा बघेल को एक साथ बुलवाता है। यह कठिन घड़ी देखिये कि एक ओर मंजरी अनिष्ट की आशंका से घबराती और कुचिला नामक विष खा लेने का प्रयास करती है तो दूसरी ओर लोरिक उन राजाओं से लोहा लेने को तत्पर होता है। वह अपनी प्रत्युत्पन्न मति का सहारा लेकर मंजरी के आंचल में बंधे विष को खोलकर फेंकता है और ताल ठोक कर बिजुलिया खांड (तलवार) लेकर शत्रुओं को युद्ध के लिए ललकारता है। इतना ही नहीं, राजा अपने शक्तिशाली हाथी को उसके सूंड में मूसल थमाकर, भरपूर शराब पिलाकर युद्ध के लिए तैयार कराता है। सभी एक साथ लोरिक और उसकी सेना पर आक्रमण करते हैं, परन्तु लोरिक अपने शौर्य से उन सबके दांत खट्टे कर देता है। हाथी तो एक ही वार में शोण की धारा में जा गिरता है-

जेनकर तड़प न जाय अकासे,
नीचे न मरले बाय दवनहरा।
पोरसन न लवर बाई गुंगुआत,
फिरल न पलक इनरावत का।
खांड गिरल गरदने पर बाय,
दुई न ढोका बाय ढोंकियवले।

लोरिकायन पृष्ठ-100

इनरावत के गिरकर मर जाने के उपरान्त लोरिक की चिंता

कुछ कम होती है। वह अन्य उक्त राजाओं का भी बारी-बारी से काम तमाम करता है। अब क्या था। राजा चिंतातुर बैठ जाता है, तब राजा का विश्वासी चुगुला सोनार उसे पुनः उकसाता और कोटा के छली-बली राजा निरमल, जो उसका सगा भानजा है, को बुलवाता है। उसे देखिये पत्र कैसा लिखता है मोलागत-

अहीर चढ़ल बा उतरहा, गांव न नगर गउरा ओकर बा।
एकय तिरिया के पीछे नौ मन सेन्हुर हो गयल नकसान।
पूरा राज न बाय अगोरी, राजा तेजत अगोरी में बाय।
मंजरी से रानी तंजल न जाय,
जेनकर दावन न मंजरी बा नाम।
जौन छत्री न बंश होइहैं जनमल,
इहा अहीर गहत बा तलवार।
अन्न न पानी बा हमार हराम, किरिया लिखत अठान बा।
अन्न न लिखत बा गाई के हो मांस,
पानी लिखत रुधुर फुन बाय
जौन खात होइहैं भैने निरमल, हाथ धोवै अगोरी में आवैं।

यहाँ के वीरों की पत्नियों के नौ मन सिन्दूर बह गया, राजपाट जाना चाहता है, खाना भी खा रहे हो तो तुरंत आओ, यहीं आकर हाथ धोवो। मेरी इज्जत का सवाल है।

राजा का संदेश पाकर निरमल अपनी पत्नी जयकुंजर को आश्वस्त करता हुआ अगोरी आ धमकता है। दोनों ओर से युद्ध के बाजे बजने लगते हैं। देवी मंजरी फिर शंकाकुल होती है। आत्मज्ञान से कहती- इसकी तो मृत्यु लिखी ही नहीं है, अब क्या होगा? निरमल तड़पता है, इधर लोरिक जवाब देता है-

आगे घाव न छोड़ब, न फेर पीछे रखब छिपाय।
तब फेर सुनऽ हाल छली का, धइले शान बा हजरिया।
एक दम पैतरा पर जाय, मारत न सिर बाय अहिरे का।
परगट न देवी बायींऽ दुर्गा, जेन फेर छोट न बड़ करदे।
झूलल न बान बा हजरिया, जेन कर रती-रती बार धरत।

-लोरिकायन : पृष्ठ-114

दुर्गा सहायक होती हैं। अरे! यह वीर तो बार-बार कटता, बार-बार पुनर्जीवित हो उठता है। वह चार दिन-रात चलकर सात

चौमासा 43

समुन्द्र पार करके इन्द्रासन पहुँच, ब्रह्मा जी से मिलकर अनुनय-विनय करके निरमल के हाथ लोरिक की मृत्यु के बदले लोरिक के हाथ निरमल की मृत्यु लिखवाता है।

इधर लोरिक की अपराजेयता समझकर राजा मोलागत लोरिक को अपने राजमहल में आने के लिए चंग पर चढ़ाता है। लोरिक उससे तनिक भी नहीं घबराता। वह चौफाल कूद कर जाता, राजा के किले में दाखिल होता। राजा उसे छल-बल से मार डालना चाहता है, समझाता भी है। कहता है- 'एक मंजरी के लिए तुम गउरा के लाखों जवानों की पत्नियों की क्यों मांग सूनी करना चाहते हो?' लोरिक उसे अपमानित करता और कहता है- 'तू पापी है, तूने महारा की छह लड़कियों को अपनी रखैल बना लिया है, अब इसे नहीं पा सकता।' राजा उसे बंधवाना चाहता है, किन्तु शक्तिशाली लोरिक चंफा कूदकर दुर्गा का स्मरण करके किले से बाहर आ जाता है। युद्ध फिर शुरू होता है और निरमल मृत्यु के घाट उतरता है। उसके सैंकड़ों सिर लोरिक द्वारा एक बार में काटे जाते हैं-

*'धूमल न पलक छली का, खांड गिरल गरदने पर बाय।
भगल न सिर बाय निरमल का,
मइया न छमकल दुर्गा जब बाय।
जय कर पकड़त न सिर बाय छली का,
वह दिन आंसू न डोरबा टूटत।
लास न बानी पृथबी पर डगमगात,
गिरत न लास बाय छली का।
बिगहन गइल जमीन तोपाय, देस न मचगयल हाहाकार।'*

-लोरिकायन : पृ.-115

अंततः राजा को अपनी पराजय स्वीकार करनी पड़ती है। प्रातः मंजरी की विदाई होती है। संवरू कठइत के संग सारे बाराती तो जा ही चुके होते हैं, लोरिक मंजरी को पालकी में बिठाकर जब अगोरी से मारकुण्डी पहाड़ी पर आता है तो मंजरी एक बार फिर उसके शौर्य की परीक्षा लेती है और घाट पर पड़ी विशाल चट्टान को देखकर कहती है-

'अब तो हम दूर देश जा ही रहे हैं, फिर तो आना नहीं है। तो फिर क्यों न यहाँ कोई निशान छोड़कर चलें ताकि आगे आने



अगोरी किले में स्थापित मनियां भवानी (चंदेलों की आराध्या)
जिनका लोरिक गाथा में बहुधा उल्लेख है।

वाले युगों के लोग उससे प्रेरणा लेते रहें।'

'तो फिर क्या करें।' लोरिक पूछता है।

'यह देखो विशाल चट्टान है, इसे मेरे नैहर से मिली तलवार से दो भाग कर दो।'

'यह तो मेरे बायें हाथ का खेल है। इसे दो भाग करने के लिए तुम्हारे नैहर से दैजा में मिली तलवार का उपयोग मेरे लिए अपमानजनक है। मैं अपनी तलवार से ही इसे खण्ड-खण्ड कर सकता हूँ।' लोरिक कहता है।

'तो फिर चलाओ तलवार।'

लोरिक तलवार चलाता है और एक ही वार में दो भाग कर देता है। एक भाग नीचे गिर जाने पर मंजरी कहती है-

'ऐसे नहीं, एक हाथ से वार करो और दूसरे हाथ से कटे हुए भाग को रोक लो, गिरने न पाये।'

‘तो ठीक है,’ ऐसा कहकर लोरिक पुनः वार करता है और वैसा ही करके दिखा देता है।

आज भी दो कटे भाग यथावत् मारकुण्डी घाट पर पड़े हुए हैं जिनके बारे में किंवदन्ती है कि लगन के समय उस पर सिन्दूर के छींटे उभर आते थे, क्योंकि मंजरी ने भी अपनी सोहगैली और माथे का सिन्दूर उस पर छिड़क दिया था। ‘लोरिकायन’ की पंक्तियाँ सुनिये-

‘सइयां न सुनवा सुखनन्न, सेन्दुर मानऽ कहल हमार ।
बायें न हाथे खांड मरवा, दहिने न दोनों दल लेबा थाऽम ।
जैसे दूनों ढोका रहे ठाढ़,
जेके लखिहैं कलउवा के सब लोग ।
तब फेर जौन लड़की बाय महेरे का,
जेनकर दावन मंजरी बा नाम ।
वह दिन डोलल न सत बाय सतजुगी,
माथे में बहत सेन्दुर ओनकर बाय ।
हाथे में मंजरी काछ कर, पथेर में देती बाय छिड़ीक ।
सतजुगी न कीर्तन बाय बोलत,
जौ असली सेन्दुर मांगे के होबे ।
लगन में होय जाय पहचाना’

-लोरिकायन : पृष्ठ-121

कहार मंजरी की पालकी लेकर आगे बढ़ते हैं। कुछ ही दिन में वे गउरा पहुँच जाते हैं। वहाँ उत्साहपूर्वक खान-खियान होता है। रात में लोरिक को संवरू के ब्याह की चिंता होती है। होली का दिन है। लोरिक संगी-साथियों के साथ राजा सहदेव की लड़की चनवा के संग होली खेलने जाता है। वह अब चनवा के ताना का शिकार होता है। चनवा कहती है और उसकी माँ सेन्हिया भी कहती-

‘होली खेलने आये हो लज्जा नहीं आती कि बड़ा भाई कुँवारा है और तुमने विवाह कर लिया।’

लोरिक की चिंता और बढ़ जाती है। वह होली तो खेलता है, परन्तु संवरू के विवाह का वहीं संकल्प ले लेता है। राजा भिमली की बेटी सतिया के साथ उसका विवाह तो तय था ही,

अब उसे सम्पन्न कराना है। दिन-तारीख के अनुसार बारात प्रस्थान करती है। उसमें वही सवा लाख बाराती हैं। पूरी बारात दानव के पेट में समा जाती है। बारात का उद्धार करने के लिए लोरिक पुनः दुर्गा का स्मरण करता है। वह कहती हैं- ‘इसका पता तो नाग लोक से चलेगा।’ लोरिक क्रमशः चन्द्रमा का उल्टा मुसुक फेरकर बारात का पता पूछता है। क्रमशः शुक्र, तरई, गोबर, सैंती से भी पूछता जांचता है। अंत में उसे नागलोक जाना ही पड़ता है।

लोरिक के वहाँ पहुँचते ही खलबली मच जाती है। जैसे भी, दानव के पेट से लोरिक बारात का उद्धार कराने में सफल हो जाता है। वह दानव को मार गिराता है। बरईपुर के राजा से लोहा लेता, उसे पराजित करता है। राजा भिमली से लड़ाई ठन जाती है। निरमल की तरह भिमली का भी सिर बार-बार कटता और जुड़ जाता है। अंत में उसकी लाश गिर ही जाती है। सुनिये-

‘गिरल लास बाय छली का, बिगहन गयनी जमीन तोपाय ।
फेंकत न सिर छली का, बयरी के गिरल किला पर बाय ।
लखय न सिर बेटवा का, राजा कूंचत तख्ता पर माथ ।
हो-हो दर्ई हो नरायन, का ब्रह्मा लिखला लिलार ।’

एक ओर बारात का उद्धार होता है, दूसरी ओर सतिया छल करके अपनी नागों की झांपी खोलकर सभी बारातियों को साँप से कटवा देती है-

‘सोरह सैं डहरल नाग सतिया का,
जूटल न जजमे पर बाय ।
घूम-घूम काटत बराती के बाय,
अकसर बचल वीर बाय लोरिका ।
चौनिस छेंकले नाग ओके बाय ।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-156

लेकिन देखिये, लोरिक कैसे स्वयं बचता और सभी बारातियों को बचा लेता है। पर इसके लिए उसे आकाश-पाताल एक करना पड़ता है। उसे हंस-दम्पति की सहायता लेनी पड़ती है, उनके पंख पर बैठकर सात समुंद्र पार की यात्रा करनी पड़ती है। वह पातालपुरी जाकर अगिया-कोयलिया से भी मदद लेता है। लोरिक पर सवार दुर्गा स्त्री का रूप धारण करके अगिया-



विशाल वीर लोरिक पत्थर जिसे मंजरी के कहने पर लोरिक ने अपनी तलवार से तीन भाग कर दिया था।

कोयलिया से सतिया का सोहगौली प्राप्त करती हैं। उसे लेकर मृत्युलोक आती हैं। इस उपकार के बदले लोरिक को अपनी जांघ का मांस काटकर उन्हें देना पड़ता है। जैसे भी, बारातियों का उद्धार कराकर लोरिक संवरू का विवाह सम्पन्न कराने में सफल हो जाता है। राजा बमरी रक्त के आँसू रोता है।

रोवत न राजा बाय बमरी,
आपन ठोंकत ताला बाय तकदीर।
केतनों न राजा दर्ई के बार जोर,
एक त लड़िका कटल जुझार।
एक त और विपत भइले,
दूसर लड़की के शादी बा देखात।
दूसरे अहिर बाय ललकारत,
राजा कर दा शादी तूं हमार।
तब खरीयत किला पर बाय।

-लोरिकायन : पृष्ठ-164

विदाई कराकर लोरिक बारातियों के साथ गउरा वापस आ जाता है। यहीं संवरू के विवाह की कथा समाप्त हो जाती है, किन्तु लोरिक के शौर्य और पराक्रम की कथा आगे भी चलती है।

लोरिक गुणग्राही है। वह जिस किसी से गुण प्राप्त कर लेता है। वह अजई की पत्नी बिजवा से भी दांव सीखने से परहेज नहीं करता। उसी दांव से वह बंठवा को पराजित करता है। वह गदा-भंजन की कला में भी दक्ष है और गदा से ही बंठवा को पराजित करता है। देखिये वह लड़ता कैसे है-

'लेकर मारत गदा गुरु अजई का,
दहिना गयल भुजा फेंकाय।
बंठवा गयल सगरे पर भहराय,
गिर कर कंहरत बंठवा बाय धमार।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-186

लोरिक की वीरता से चनवा इतना प्रभावित होती है कि वह उससे प्रणय-निवेदन कर बैठती है। लोरिक-चनवा का गुप्त मिलन होने लगता है। मंजरी के अनेक विरोध के बाद वह चनवा को लेकर हरदी भाग जाता है। क्यों? इसलिए कि कहाँ परम सुन्दरी चनवा और नपुंसक सेवहर। सेवहर हरदी जाकर लोरिक के विरुद्ध वहाँ के राजा और कोलों को उकसाता है। वे उसका विरोध भी करते हैं, किन्तु राजा का हाथी गिर जाता है जिसे उसके अनेक नौकर-चाकर मिलकर भी उठा नहीं पाते, किन्तु लोरिक सहज में ही उसे उठाकर खड़ा कर देता है। इस घटना से राजा इतना प्रभावित होता है कि अपने शत्रुओं को पराजित करने के लिए लोरिक को अपना मित्र बनाता, जीत होने पर उसे आधा राज्य सौंपने को तैयार हो जाता है। ऐसा ही होता है। पहले तो वह सेवहर को ही नीचा दिखाता है। सेवहर भी साधारण बलवान नहीं है। वह एक ही तीर से विशाल वृक्ष धराशायी कर देता है। देखिये दोनों लड़ते कैसे हैं-

पटकत न मरद बाय सेवहर,
लोरिका खात नीचा जब बाय।
वह दिन बोलल लड़की सहदेव का,
एदां नहीं देखल कुशती तू लोग का।
फेर से बाजा कुशती तनी बनाय,
ममिला जात रेता में फरियाय।
उठकर दूनों न वीर बाय बाजत,
करवट न दूनों बाय गिरल।
लोरिका ओर चनवां कइले बाय सहारा,
सेवहर नीचे ऊपर लोरिक।

-लोरिकायन : पृष्ठ-206

हरदी के राजा महुअर और म्योरपुर के कोलों की जानी-दुश्मनी है। बदला लेने का अच्छा अवसर जानकर राजा आधा राज्य का प्रलोभन देकर हरेवा-परेवा से लोहा लेने को कहता है। वह अपने बलशाली घोड़े मंगरा को भी दे देता है। इस तथ्य की जानकारी होने पर हरेवा-परेवा छेवली के विशाल वन में जाल बिछवा देते हैं, ताकि लोरिक और सैनिक उसमें जा फसें और मारे जायें। जैसे भी, लड़ाई होती है जिसमें अंततः विजयश्री लोरिक को ही मिलती है। लड़ाई का प्रसंग सुनिये-

वह दिन खींचत खांड हाथे से,
जेनकर चारी अंगुल भयल बाहर।
तड़प गयल अकासे में बाय,
नीचे न मरले बाय दवनहरा।
पोरसन बानी लवर गुंगुआत,
वह दिन दक्खिन खांड बाय लटकवले।
एक न फेवरा बाय घुमवले,
सगरो पलटन कर दे बेकार।
लासी पर लास गंजैनी,
ओठे हेरले मरद नहीं देखाय।

-लोरिकायन : पृष्ठ-220

जीवदया, युद्ध, लड़ाई, घुड़सवारी, कुशती लोरिक के चरित्र की मुख्य विशेषताएँ हैं। अन्याय का तो वह ऐसा दुश्मन है कि एक बार अपने गुरु अजई पर भी वार करने से नहीं चूकता। होता ऐसा है कि एक बार अजई पेड़ के कोटर में बैठकर पानी पर आने वाले जानवरों के कान काटने लगता है। जब यह लोरिक को मालूम होता है तो वह वहाँ पहुँचकर अजई से लड़ बैठता है, किन्तु जब उसे ज्ञात होता है कि वह तो अजई गुरु ही हैं, तो उन्हें झुककर प्रणाम करते हुए उनसे क्षमा-याचना भी करता है। उसका वीर वेश तो देखिये-

कसय न जिरही लोहेन का,
जेमें नौ मन लोहा अमाय।
धरय न पाग लरमें का,
जेमे मेघ उमरु घहराय।
बायें न खांड बाय धइले,
दहिने बिजुल घूम गयल कुसियार।

-लोरिकायन : पृष्ठ-238

अरे बाप रे बाप! नौ मन लोहे की तो जिरही है जिसे वह बायें हाथ से उठाता है। इस तरह शौर्य की अनेक घटनायें उसके चरित्र से जुड़ी हुई हैं।

इस प्रकार वीर नायक लोरिक अनेक मानवीय गुणों और मानवोचित चारित्रिक न्यूनताओं के बीच मध्यकालीन सामन्ती संस्कृति के प्रतिनिधि के रूप में उभरता है। एक प्रेमी युवक की

स्थिति से वह उच्छृंखल प्रेम-सम्बंध स्थापित करने के स्थान पर आजन्म कठिन युद्धों का नेतृत्व करता हुआ उसकी सुचिता को बनाये रखता है। यद्यपि अप्राकृतिक क्रिया-कलाप और दैवी सहायता के अवलंबन पर वह कार्य होता है तो भी, गाथागायक सांस्कृतिक, धार्मिक और चारित्रिक स्तर पर उसके दृष्टिकोण तथा चरित्र को संवारने में पर्याप्त चेष्टा करता हुआ दिखता है। वास्तव में कृषि तथा गोचारण संस्कृति की विशेषताओं के साथ लोरिक गाथा 'परमाल रासो' तथा 'पृथ्वीराज रासो' में व्यक्त सामन्ती दृष्टि तथा जीवन-विधि की सम्मिलित विशेषताओं से युक्त है और इसी के अनुसार नायक के व्यक्तित्व की रचना भी की है। आदर्श वीर आदर्श प्रेमी भी होता है, इस कथन के अनुरूप वह खरा उतरता है। वह 'योरोपीय नाइट' की भाँति दुष्ट-दलन तो करता ही है, साथ ही कृष्ण की भाँति दुष्टों के चंगुल में पड़ी स्त्रियों का उद्धार भी करता तथा अपनी सेविका बना लेता है।

राम न नाम गुन गावे के ठाकुर,
भजली नाम हो तोहार।
देविया न सुमिरली भगवती।
दुर्गा जानऽ सकी तोहार।

प्रेमगाथा

'लोरिकायन' लोक का प्रबंध काव्य है जिसका नायक वीर लोरिक है। लोरिक के समग्र व्यक्तित्व को निखारने के लिए 'लोरिकायन' के रचनाकार ने तीन समानान्तर कथाओं की सृष्टि की है- वीरगाथा, प्रेमगाथा और सतीगाथा। वीरत्व और शौर्य की प्रेरणा भी प्रेम से मिलती है। इसीलिए लोरिक प्रेमीचित्त भी है। मंजरी से सम्बन्धित गाथा-प्रकरण सतीत्व प्रधान है। सतीत्व भारतीय नारी का अलंकरण है। मंजरी एक आदर्श भारतीय नारी तथा वीर लोरिक की धर्म-पत्नी है।

आपने पिछली दो कड़ियों में लोरिक के आदर्श जीवन और अप्रतिम शौर्य से प्रेरणा ली, तो आइये इस तीसरी कड़ी में लोरिक के प्रेमी-हृदय का परिचय प्राप्त करें।

लोरिक के प्रेमी-हृदय का परिचय चनवा के साथ होली

खेलने के प्रसंग से प्राप्त होता है। मंजरी की विदाई करारकर गउरा पहुँचने के बाद गाँव के युवक 'डंफा' बाजा बनवाकर सहदेव राजा की परम सुन्दरी बेटी चनवा से होली खेलने जाते हैं। वास्तव में होली खेलने तो अन्यो के साथ जाते हैं, किन्तु वह उसी समय किले के ऊपर दिख जाती है। यौवन-जन्य सहज चंचलता के कारण लोरिक उस पर गोबर-माटी के घोल का छींटा फेंकता है। चनवा भी परात के परात गोबर-माटी के घोल का छींटा फेंकती है। किन्तु हर बार चंफा कूदकर वह सराबोर होने से अपने को बचा लेता है। एक बार लोरिक रंग और पानी का ऐसा घोल फेंकता है कि चनवा भीगकर गिर भी जाती है। समीप से चनवा की माँ रानी सेन्हिया उसे देखती, तो दांत पीसकर रह जाती है। वह कहती है-

'अगोरी के लोगों को जीतकर तुम अपने को बहुत बड़ा वीर समझते हो, अपने भाई संवरू का यहाँ विवाह करो तो थाह लग जायेगा'-

'लोरिका न सुनबे मरद, कहना मनबे एठिन हमार।
अब्बर न मरला दुब्बर, दुब्बर मरला अगोरी किसान।
हाथी न मरला तूं अजरही, वाहं देला गौरा में जोराय।
तोहें मरद बीर मानित गउरा में, संवरू बोहा पर बा कुंवार।
ओनकर करता शादी सुरावल,
तब फेर मरद बीर मानित गउरा में।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-131

इस घटना के कारण लोरिक चिंताग्रस्त हो जाता है, किन्तु चनवा के अनिंद्य सौंदर्य के प्रति उसका आकर्षण बढ़ता है और भाई संवरू के विवाह की चिंता भी उसे सताने लगती है। चंदा-लोरिक के प्रेम का प्रसंग दाउद मौला कृत 'चंदायन' में विस्तार से वर्णित है।

लोरिक सवा लाख बारातियों के संग संवरू का विवाह करने सुरावल जाता है तो बरईपुर में बरईपुर के राजा की लड़की से, आम का बगीचा तहस-नहस करने के कारण, लड़ाई का रोचक प्रसंग भी आता है। वह लड़की लोरिक की वीरता पर प्रसन्न होकर उसके साथ अपने विवाह का प्रस्ताव तक रख देती है। उसकी लोरिक के साथ उसकी वीरता देखकर उत्पन्न हुई

एक तरफ प्रेमाशक्ति है, जिसे लोरिक संवरू के विवाह का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए नकार देता है। संवरू का विवाह सम्पन्न कराकर जब वह गउरा आता है तो कानोकान उसे खबर लगती है कि चनवा का विवाह तो सेवहर के साथ सम्पन्न हो गया है, किन्तु चनवा सेवहर की नपुंसकत्व से अत्यन्त दुःखी है, किन्तु वह कहे तो किससे कहे, लज्जा की बात।

उधर अवसर का लाभ लेकर बंठवा चनवा से एक तरफा प्रेम करता है, किन्तु चनवा उसे नकार देती है। इस बात की जानकारी अब लोरिक को होती है तो दोनों में संघर्ष की स्थिति पैदा हो जाती है। अजई की पत्नी बिजवा के द्वारा बताये गये दांव का उपयोग करके लोरिक बंठवा को पराजित करने में सफल होता है। संवरू के विवाह और बंठवा के पराजय की मनौती पूरा करने के लिए कथावार्ता का लोरिक के घर विस्तृत आयोजन किया जाता है जिसमें चनवा भी सम्मिलित होती हैं। बंठवा को पराजित करने के कारण चनवा लोरिक की वीरता से प्रभावित थी

ही। एक अच्छा अवसर जानकर वह लोरिक के साथ छेड़खानी करती है- कैसे, देखिये-लोरिक भोजन करने बैठा है, चनवा ऊपर से उसके पत्तल पर सिटकनी गिराती है। प्रेम का यह लोकोचित नायाब तरीका है-

‘दू-चार कवर बाय उठवले,
चनवां छोड़त सिटकी चननी से
लोरिका के गिरत पतरी पर बाय,
नजर जाती चननी पर बाय।
ऊपर मूड़ी बाय उठवले, चनवां धर-धर आंचर उधिरावत।
धर-धर लोरिक कांडत बाय करिहांव,
फेर से लोटा धरती में धइले
दू-चार अवरो अहीर बा खात,
टप्प से गिरत पतरी पर बाय।
टप्प से खींचत लोटा फुन बाय, ऊपर न मूड़ी बा उठवले।
सीना लौकत चनवां का बाय,



लोरिकायन गायन शैली

जर मर अहीर होत बाय खंगार।
तब फेर बोलल काका बा कठइता,
हमरे पूत क बान कुबान।
कम खाय कोदई अधिक पीयै पानी,
जैसे-तैसे कैसे पाती बा खयले।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-192

इस घटना को रानी सेन्हिया देखती रहती है। वह पान के बीड़ा में विष डालकर लोरिक को खिलाकर उसे मार डालना चाहती है, खानदान की इज्जत का जो सवाल है, परन्तु चनवा विषयुक्त पान के बीड़े को दूर फेंककर लोरिक को बचा लेती है। इससे दोनों का एक दूसरे के साथ आकर्षण दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही जाता है। चनवा खान-पान के बाद अपने घर चलती है, किन्तु इधर लोरिक उसे पाने के लिए कटिबद्ध होता है। वह गुड़-बहुरी बांधकर दस-बीस घण्टा जवानों को लेकर गाँव से बाहर जाता है और कास की रस्सी तैयार करवा कर चंदा से गुप्त-मिलन का सफल प्रयास करता है-

‘गुड़ न बहुरी बाय बान्हत,
दस बीस लेलेस लड़िका लियाय।
एक दम कसीहरा में बाद,
लड़िकन से कास बाय नोचवावत।
लड़िकन के गुड़ न बाय बांटत,
अपने बरत बरहा जब जाब।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-193

जैसे भी बरहा तैयार होता है। उसे महीचन तेली के घर ले जाकर तेल में डुबो देता है ताकि टूटने न पाये। रात का समय आता है। लोरिक बरहा फेंककर चनवा को थमाता है और फिर उसे पकड़ कर छत पर पहुँच जाता है। पहले तो चनवा शरीर व्यापार के लिए तैयार नहीं होती, परन्तु जीवन भर साथ निभाने का वचन देने पर तैयार होती और लोरिक उसके साथ विहार, कामेच्छा की पूर्ति करके बरहा के सहारे नीचे उतर आता है। लोरिकी सुनिये-

‘चनवां के छत ऊपर दरबार,

लेकर बीगत बरहा चननी पर।
चनवां थामत बरहा फुन बाय,
थाम्ह कर धरती बरहा बाय बीगत।’

चनवा बरहा बीच ही में छोड़ देती है और लोरिक जमीन पर धड़ाम से गिर जाता है। तब उठकर बोलता है-

‘एदां उहरी में बरहा ठहरी,
नाहीं टूक के टुक्का काटत बीगत चल देबय।
जाय कर बीगत बरहा चननी पर।’

इस बार चनवा बरहे को खम्भे में बांध लोरिक को ऊपर आने का कैसे संकेत करती है-

‘जाय कर बीगत बरहा चननी पर,
चनवां बान्हत खम्भा घुमाय।
लोरिका दू-चार जोर अजमावल,
बरहा टूटे-काटे होबा,
अबहिहैं टूट फाट जाबा।’

xxx

‘धय कर चढ़ल बरहा बाय जाय,
जाय कर चढ़ल छत चनवां का।
जेनकर लागल पलंग फुन बाय,
लखत न लड़की सहदेव का।
अठान देलेस क्रिया धराय,
छोड़ न भाई पलिवार।
छोड़ न देहीं जांघ के,
तब फेर धरे पेरुआ पर लात।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-198

पलंग के पेरुवा-गोड़ा पर पांव रखते पेरुवा टूट जाता है। वह डरती और कहती है-

‘बाविल न सुनिहैं सहदेव
भइया न सुनिहैं महदेव।
बड़ा भारी करिहैं उदियान,

तब लोरिक जवाब देता है-

देखल न जोर सहदेव का,
तागत देखब महदेव का।
रुखानी बंसुला तूं लहैवा,
खाप देहीं चूरा बैठाय।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-198

पलंग बनाकर लोरिक काम-क्रीड़ा में लीन हो जाता है।
चनवा अचेत हो जाती है और पूछती है 'अब कितना वार बाकी
है? लोरिक बोलता है-

'तीन सौ साठ अवार होला,
साठ अवार बाकी अभी रह गयल।'

खैर कामक्रीड़ा के उपरान्त लोरिक पगड़ी सिर पर लपेट
कर डंडा लेकर नीचे उतर आता है। उसे अस्तव्यस्त देख बाहर
टहलने निकला अजई सन्देह में पड़ जाता है कि हो न हो यह
चनवा के पास गया हो। पूछता है-'कहाँ से आ रहे हो? साफ-
साफ बताओ।' लोरिक कैसे छिपाये, बोलता है-

'गुरु हमहीं न जनली के तोहुं,
दूसर कोई नाहीं जानल पाये।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-199

इधर ब्याहिता मंजरी को भी शक हो जाता है। वह सास से
शिकायत करती है और चनवा से तू-तू मैं-मैं कर बैठती है।

बात तो खुल ही गयी है। आखिर अब उसका उपाय भी
क्या है? लोरिक चनवा को उढ़ार कर हरदी ले भागने का कार्यक्रम
बनाता है। वह चनवा को शपथ खाकर आश्वस्त भी तो कर आया
था। ताक-झांक चलने लगता है। लोरिक को देख चनवा मुस्कुराती
और आँखों ही आँखों से बातकर लेती है-

'मारत न मुसकी बाय चनवां,
सइयां राती मोकाम डाल देबा।
गउवां गाँव के बाहर जौन पीपर,

जो भाई आगे निकल के ऊहां जाई।
जाय के जोही पिपरे के पेड़।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-202

अब क्या था। लोरिक मंजरी दोनों एक साथ सोये हैं।
लोरिक, गौतम बुद्ध की तरह, जैसे वे गौतमी को छोड़कर भाग
गये थे, बिना कहे, बाहर निकलता और उक्त पीपल के वृक्ष-तले
चंदा से मिलकर उसे उढ़ार कर हरदी चल देता है। वह लोरिक
को वीरवेश में देखती है किन्तु उसके पास में जब तलवार नहीं
देखती है तो उसे पुनः जाकर लाने के लिए कहती है। लोरिक घर
जाता तो देखता क्या है कि मंजरी की आँखों से आँसू टप-टप चू
रहा होता है। करता भी क्या! धीरे से तलवार लेकर घर से बाहर
निकलता और चनवा के पास जा जुटता है। पहले तो वे बोहा जाते
हैं जहाँ संवरू रहता है, उससे आज्ञा पाकर, मना करते हुए भी न
मानकर हरदी चले जाते हैं। आगे जाने के बाद ब्यौरा नदी पड़ती
है, उसे पार कैसे करें। चनवा चैली बीन कर लाती, उसे जोड़ती
और दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़कर ज्योंही नदी पार करते कि
दूर से चनवा का पति सेवहर देख लेता है। वह दूर से ही सेमल
के पेड़ पर तीर से प्रहार करता है और वह गिर जाता है। चनवा
एक बार फिर लोरिक की परीक्षा लेने के लिए कहती है-

'दूनों न दल बाज जाबा,
जेन बीर नीचा भुई खा जइहें।
ऊहैं मुख लीहें करिखा लगाय,
जेकर जीत कुस्ती में हो जाई।
ओकर देब संघ बिछियाय।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-206

उधर सेवहर भी तड़प कर कहता है, आओ हो जाय दो-
दो बाजी। तब लोरिक कहता है-

'बेस्सा न बाय घर छोड़ल,
सगरो छूट गयल पलिवार।
ई फेर डहरे अंझुरा बा लगवले
ऐ गड़बड़ ममिला बा देखात।'

-लोरिकायन : पृष्ठ-206

सेवहर- लोरिक में कुशती होती है, लोरिक हारता है, किन्तु चनवा मजा लेती हुई फिर लड़ने के लिए कहती और लोरिक को सहारा भी देती है-

‘एदां नाहीं देखल कुशती तू लोग का,
फेर से बाजा कुस्ती तनी बनाय।
ममिला जात रेता में फरियाय,
ऊठ कर दूनो न वीर बाय बाजत।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-206

इस बार सेवहर कुशती हार जाता है और चनवा उसे धिक्कारती हुई कहती है-

‘मूहें करिखा तूं लगइबा,
लवट जाबा बिजरी तू गांव।
कइली पयाम पूरब के,
चल जाबय नोनी हरदीपुर पाल।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-206

सेवहर पराजय स्वीकार कर लौट जाता है। चनवा हरदी सगरे के भीटा पर खाना बनाकर खिलाती-खाती और वहीं रहने लगती है। दोनों में प्रेम बढ़ता जाता है जिससे चनरइता नामक वीरपुत्र पैदा होता है, जिसकी शौर्यगाथा इस लोक महाकाव्य में वर्णित है।

हरदी में जमुनी कलवारिन की होली मशहूर है। लोरिक दिन भर की थकान मिटाने के लिए उसकी दुकान पर जाता है। पता चलता है कि भरे यौवन में ही विधवा हो गयी थी जिसके कारण रोजी-रोटी के लिए उसे पैतृक पेशा करना पड़ा। लोरिक उसकी दुर्दशा पर तरस खाता है। सचमुच वह परम सुन्दरी है। उसके सौंदर्य का वर्णन गाथाकार इन शब्दों में करता है-

‘बैठल न सुबा कुसीं पर,
लखत न सूरत बा जमुनी का।
सोरहों सिंगार बा कयले,
बतीसों कइ देले बाय अभरन।
गद्दी पर बैठ बेचत बा सराब,

लखत न अहिर बाय लोरिका।
अहिर न लखत मूर्छा बाय मरले,
बद्द से गिरल जमीने पर बाय।’

-लोरिकायन : पृष्ठ-210

लोरिक जमुनी की सुन्दरता पर मुग्ध, मोहित होकर मूर्च्छित हो वहीं गिर पड़ता है। जमुनी उसे उठाकर पानी पिलाकर माचा-मचहरी पर सुलाती है। होश में आने पर वह उसे पीने के लिए शराब का गिलास देती है, पर लोरिक को तो कुछ और चाहिये। उसका मादक सौंदर्य उसका प्रेम। वह कहता है-

दुकाने समान नाहीं चाही,
हम के सच्चा माल तूं देबा।
अच्छा सराब बा पियवले।
अहिर के चेत खियाल नाहीं बा,
सूतल माचा पर निसभोर।

-लोरिकायन : पृष्ठ-210

प्रेम हो जाने का यह प्रकरण मध्यकालीन प्रसंगों पर आधारित है। तेल में मुखाकृति देखकर, पानी में देखकर अथवा तोता के मुख से सुनकर मूर्च्छित हो जाने के कथा-प्रसंग तत्कालीन काव्यों में प्राप्त होते हैं।

इधर चनवा भोजन बनाकर लोरिक की प्रतीक्षा करती रहती है। लोरिक के होश में आ जाने पर वह स्वयं भी मोहित हो प्रणय-निवेदन करती हुई कहती है-

सइयां सुनबा सुखनन्न,
कहां न लिरिया तोहार बायीं जनानी।
डेरा न डंडा से मंगाइब,
ठहक टीकऽ हरदी तूं पाल।

जमुनी स्वयं मंजरी के पास जाकर सारा सामान ले आती। पका हुआ सुस्वादु भोजन कराकर दोनों को सुला देती है। रात हो जाने पर लोरिक को जगाती। लोरिक उसके साथ मौज करता है और बीती रात फिर हरदी भीटे पर चला जाता है। हरदी के भीटे पर राजा महुअर का हाथी धँसा हुआ है जिसे कई नौकर-चाकर लाख कोशिश करके भी उठा नहीं पाते हैं। लोरिक देख जाता है

और एक ही हाथ से उसकी पूंछ पकड़कर खड़ा कर देता है। इस घटना से लोरिक के दोनों काम एक साथ एक तीर से दो शिकार की तरह सधते हैं, इधर राजा प्रसन्न होकर उसे अपना दहिनवार नियुक्त कर लेता है, उधर जमुनी उसकी वीरता से भी आकृष्ट होती है। लोरिक-जमुनी दोनों मिलते-जुलते रहते हैं। लोरिक राजा की गायें चराने लगता है।

इधर सेवहर लोरिक से बदला लेने के ख्याल से कोलों को उकसाता है। नेउरापुर का राजा लोरिक को फंसाने के लिए छेवली के वन में जाल फिंकवाता है। इस घटना की जानकारी जब मंजरी को होती है तो मंजरी कोलों से स्वयं लोहा लेने के लिए तैयार हो जाती है, किन्तु धरमी के डांटने पर कोल मार्ग छोड़ देते हैं। फिर भी लोरिक और कोलों में युद्ध होता ही है जिसमें कोल मारे जाते हैं, परन्तु कोलों की देवी बिरम्हीं अपनी कनिष्ठिका के अमृत से उन्हें पुनर्जीवित कर देती है। इन तमाम विघ्न बाधाओं के रहते लोरिक न तो कहीं विचलित होता है और न चनवा, मंजरी, जमुनी की उपेक्षा होने देता है। वह वीरता, प्रेम, भक्ति, पारिवारिक सम्बन्ध सबका एक साथ निर्वाह करता जाता है। इतना ही नहीं, वह जब शोभा व्यापारी से मंजरी की दुर्दशा का पत्र पाता है तो सब कुछ त्याग कर गउरा निकल जाता है। गउरा से आये हुए उस पत्र को यद्यपि चनवा छिपाने का प्रयास भी करती है। आखिर उसका भी तो लोरिक के साथ अटूट प्रेम है। देखिये चनवा की मन-स्थिति, वह क्या सोचती-करती है-

*चिट्ठी मांगी चनवां बाय चीरत,
इहो न खाता सइयां सुनिहैं।
भागल जइहैं गउरा गांव,
गांगी अब तयं सइयां से कहबा।
कह देहा नगर कुशल गउरा का।*

-लोरिकायन : पृष्ठ-225

प्रेम में दिवानी चनवा पत्रवाहक शोभा गंगिया को हर प्रकार संतुष्ट करना चाहती है कि लोरिक से मंजरी की दयनीय दशा की जानकारी न हो, वर्ना लोरिक गउरा चला जायेगा।

प्रेम की यही विशेषता है कि वह एकनिष्ठ होता है। यही कारण है कि लोरिक से, चनवा हो चाहे जमुनी, अपना एकाधिपत्य

चाहती हैं। सफल प्रेमी लोरिक अपने प्रेम का यथावत् निर्वाह करता है।

इस तरह हम देखते हैं कि लोरिक के हरदी जाने, नेउरापुर के राजा से संघर्ष करने, आधा राज्य का मालिक बन चनवा के साथ राजभोग करने और स्वविवाहिता पत्नी को भूल जाने, शोभा व्यापारी द्वारा उसकी दयनीय दशा का बयान सुनने और सुनकर व्यथित होकर पुनः गउरा प्रस्थान कर जाने की कथा अत्यन्त मार्मिक है, जो अन्य कथारूपों में प्रायः नहीं पायी जाती। यह कथा 'रामायण' और प्रेमाख्यानक काव्यों के कथानक से मेल खाती है। श्रीराम-लक्ष्मण और जानकी के वनवास के फलस्वरूप उनके घर-परिवार के सदस्यों, स्वजनों-सम्बन्धियों तथा प्रजावर्ग को महान् कष्ट उठाना पड़ा था। 'लोरिकायन' में लोरिक के बिछोह का सर्वाधिक कष्ट मंजरी को हुआ, क्योंकि उसे जानकी की तरह लोरिक के साथ रहने से भी वंचित रह जाना पड़ा। लेकिन यह तथ्य यहाँ उजागर हो जाता है कि भारतीय संस्कार से जुड़ा स्वपत्नी का प्रेम, सहवास, साहचर्य ही स्थायी होता है। जवानी की भावुकता में लम्पटता के फलस्वरूप अन्य स्त्री के साथ का प्रेम न तो स्थायी होता है और न ही मर्यादित। चनवा और जमुनी के साथ लोरिक का प्रेम क्षणिक मात्र कामतुष्टि के लिए था। अन्ततः उसे मंजरी के साथ रहने में ही सुख मिलता है। मंजरी को भी सच्चा सुख अपने पति के साथ रहने में ही मिलता है। चनवा-जमुनी दोनों प्रेमिकाओं को हाथ मलते ही रह जाना पड़ता है।

इतना ही नहीं, सीता की तरह मंजरी की भी सती-परीक्षा होती है- अग्नि-परीक्षा की तरह उसमें वह सफल होती है। लोगों द्वारा उसके चरित्र पर शक किये जाने पर मंजरी कच्चे धागे से कुआँ से घड़ा भरकर पानी खींचकर अपने निश्चल पतिव्रतधर्म और लोरिक के साथ असली प्रेम का परिचय देती है और अपनी सास खुइलन से कहती है-

*ससुआ सुनबा मोर गोसाईं,
कहना माना एठिन हमार।
इज्जत नाही बाई गंववले,
सास ओतन सक्ती बा हमार।*

ऐसे न सत्त के जब न पैबा,
 आन दा हींच देहीं कुआं से जऽल।
 खुइलन कच्चय सूत कच्चय घड़िला
 लड़िका देत महरे के बाय।
 जायकर दू चार घड़ा बाय जल,
 मंजरी देलेस कुआं से तान।
 राम न नाम गुन गावै के ठाकुर,
 भजली नाम हो तोहार।
 देबिया न सुमिरली भगवती।
 के हो जानऽ सकी तोहार।

-लोरिकायन : पृष्ठ-235-236

अब एक प्रश्न उठता है कि लोरिक-मंजरी के सस्ते भारतीय प्रेम की अपेक्षा लोरिक-चनवा (चंदा) की प्रेम कहानी ही अधिक लोकप्रिय क्यों हुई? मौला दाउद, डॉ. परमेश्वरीलाल गुप्त, माताप्रसाद गुप्त जैसे अनेक विद्वानों, संग्रहकर्ताओं ने लोरिक-चंदा की कथा पर ही अपने ध्यान केन्द्रित क्यों किये? जबकि लोरिक-मंजरी की कथा अधिक प्रभावशाली, लोकोपयोगी, अनुकरणीय भारतीय धर्म-संस्कृति के अनुकूल और पूर्ण मर्यादित है।

इसी भावना को उजागर करने के ख्याल से 'लोरिकायन' पर आधारित लेखक द्वारा लिखित वीर लोरिक गाथा की तीन कड़ियाँ प्रसारित की गयीं, विश्वास है श्रोताओं का मनोरंजन के साथ-साथ ज्ञानवर्द्धन भी हुआ होगा।

लोरिक-सम्बन्धी प्रवाद और किंवदन्तियाँ भी बहुश्रुत और बहुत प्रचलित हैं। बच्चों पर माँ के दूध, गाय के दूध और घी का बड़ा असर होता है। लोरिक गायों का चरवाहा, गोरक्षक था।

इसलिए उसमें अपार बल, पौरुष और पराक्रम था। कहते हैं लोरिक सारनाथ के धमेख से कूदकर एक ही छलांग में चुनार दुर्ग फिर वहाँ से कूद कर अदलहाट बाजार से सात किलोमीटर दूर पूरब की ओर भाईपुर कला के पास स्थित ललमनियां नामक पहाड़ी पर आया था, जहाँ उसके पावों के निशान आज भी दिखाये जाते हैं। उस समय उसके कंधों पर दूध का पटेवा था, पटेवा के पात्र में भरे दूध के गिरने से पहाड़ी फट गयी थी।

अगोरी के समीप, एक पहाड़ी पर लोरिक की बिजुरिया खांड, तलवार और जिरही मिली थी जिसका स्पर्श करते लोग मूर्च्छित हो जाते थे। घोरावल से पाँच किलोमीटर दूर 'गुरवल' में लोरिक का अखाड़ा है। बलिया में लोरिक की जहाँ गायें चरती थीं, बरम्हाइन देवी का मंदिर है। यही देवी लोरिक को इष्ट थीं और ब्रह्मा की पत्नी के रूप में पूज्या भी। लोरिक डीह पर चमत्कारिक लोहे के टुकड़े मिलते थे। मंजरी के गृहप्रवेश के समय इतना माड़ बहा था कि 'मड़हा नदी' बह चली। आज का 'सुरहा ताल' कभी लोरिक के द्वारा ही खोदा गया था।

लोरिक कथा इतनी लोकप्रिय और व्यापक हुई कि आज भी इसके गायक भारत के अलावा मारीशस, नेपाल, चेकोस्लोवाकिया, चीन, बंगलादेश तथा जहाँ भी प्रवासी भारतीय हैं, फैलें हुए हैं और इसे गाकर मनोरंजन के साथ-साथ वीरता, प्रेम, भक्ति, सतीत्व, सत्य, जीवदया, नारी-उद्धार, भाईचारा, सामाजिक समरसता, गोचारण, कला, शिल्प, युद्धकला, घुड़सवारी, हस्ति सवारी, तीरंदाजी, कुश्ती, एक नारी ब्रह्मचारी, मातृ-पितृ भक्ति, सदाचरण, गुरुभक्ति, त्याग, बलिदान, प्रेम, सहानुभूति, अवध्य के प्रति दया, करुणा, परोपकार, स्वाभिमान रक्षा, दुष्ट-संहार, अन्यायी-अत्याचारी का वध की शिक्षाएँ ग्रहण करते हैं।

गाथाओं में कथात्मकता

डॉ. ओंकार सिंह चन्देल

लोकगाथा लोकजीवन का मौलिक चित्र है। लोकगाथाओं और कथागीतों से परिनिष्ठित साहित्य भी अनुप्राणित रहा है। ये लोकजीवन की चलती-फिरती संस्कार शालाएँ हैं। लोकगाथाएँ गायन के स्पंदन पर चढ़कर ही अपनी जय यात्रा करती हैं। इन गाथाओं से हमारी सांस्कृतिक धरोहर किसी न किसी रूप में निःसृत होती है। इनमें पद्यात्मकता, गेयत्व, लालित्य, कथात्मकता और सौष्ठव है। लोकगाथा इतिहास को कल्पना के धुंधले आवरण में छिपाकर परम्परागत गेय रूप में कलकंठों से प्रवाहित होती चली आ रही है। यह सच है कि इनके पुंखानुपुंख अध्ययन से हम किसी देश या क्षेत्र के मानस का विमर्श कर सकते हैं।

डिण्डौरी और मण्डला में निवास करने वाली परधान जाति में प्रचलित बानागीतों (लोकगाथा) में कथात्मकता का अनुशीलन करने से मुख्यतः गोंडी, पण्डुवानी, रामायनी कथा और भूत-प्रेत कथा दृष्टिगत होती है। लोक चेतना, लोकभाषा और लोककला को जानने के लिये व्यक्ति उस लोक के भीतर गहरे तक उतरे विभिन्न व्यक्तियों, वर्गों, सम्प्रदायों, धर्मों और संस्कृतियों के सम्पूर्ण स्वरूप को जानने के लिए उसके अन्दर तक झाँके, तभी कुछ जानना सम्भव होगा।

इस अंचल में प्रचलित बानागीतों को जानने के लिये इनमें प्रयुक्त कथाओं के सम्बन्ध में संक्षिप्त विश्लेषण, कथ्य और तथ्य की दृष्टि से आवश्यक है। सर्वप्रथम यहाँ पर गोंडी कथा के कुछ अंश उद्धाटित हैं।

गोंड जाति का महाभारत काल में भी वैभव था। गढ़ा मण्डला का गोंड राजवंश इसके बाद में सर्वाधिक प्रसिद्ध हुआ एवं मुगल इतिहासकारों ने महाराज संग्रामशाह के विशाल साम्राज्य का वर्णन किया है। परधानी बानागीतों में गोंड राजाओं के छोटे-बड़े न जाने कितने वीरों की गाथाएँ प्रचलित हैं।

इसी प्रकार गोंड राजा पेमलशाह का लोकगाथा गीत में वैभव और ऐश्वर्य वर्णन है। इस कथा गीत में राजा का पुत्र हिरदेशाह कहा गया है। राजा के शासनकाल में अकाल पड़ जाता है। विपत्तिकाल के समय रानी पोहपाल राजा को समुचित सलाह देती है। अन्यत्र इसी रानी को कगदो रानी आदि नामों से भी जाना जाता है। विपत्ति का चित्रण निम्नांकित पंक्तियों में दृष्टव्य है-

सीता के लाने बन-बन रोइन
या विपदा रे भाई पण्डवन पर परगै
नगर बैराट मा दादा नौकर बन के रहिन
सोइ विपदा राजा पेमलशाह परे हे होऽऽ।

विपत्ति के समय में कोई साथ नहीं देते। विपत्ति काल में संबंधियों की परख और परीक्षा भी हो जाती है। कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

सम्पत के संगी सबै हवे भैया
विपदा के संगी कोई नहि आय हो
दाई भाई कुटुम्ब कबीला रे दादा
सबै सम्पत के साथी रे भैया ॥
विपदा परे मा रे हीरा
कोत्रों नहीं पूछे हो।

राजा की विपत्ति देखकर हंसों का जोड़ा कहता है-

सुन रे राजा या दुनियां मा आदमी,
आदमी के काम नहि परै
जब विपदा आथै तब कोत्रों सहाय नहीं करे।
अखर हम पंछी आन,
काल कभू तोर खेत के दाना चुगे रहन
तेन आज बदला चुकाथन ॥

इन पंक्तियों में मानवेत्तर प्राणियों द्वारा विपत्तिग्रस्त मानव की सहायता करवाकर मानव प्रवृत्ति पर किया गया कटु व्यंग्य अत्यंत मर्मस्पर्शी है।

राजा पेमलशाह का इतिहास में वर्णन कम मिलता है। ऐसा लगता है कि पेमलशाह राजा को प्रेमसाहि कहा जाता है। लेकिन

लोक गायक कल्पना लोक में विचरण करते हुए अज्ञात लोककवि के इस बहुमूल्य बाना गीत को रससिक्त होकर गाते हैं।

गढ़ा मण्डला के गोंड राजाओं में हिरदेशाह का महत्त्वपूर्ण स्थान है। लोकगायक राजा हिरदेशाह के संबंध में भी बानागीत गाते हैं। इन गीतों में राजा पेमलशाह के पुत्र का नाम हिरदेशाह है। हिरदेशाह की रानी का नाम चिन्नामोती था। इनके आलीशान महल का नाम गुन्ना महल था। इनके महल का प्रसंग गीत में चौरादादर में आता है। इतिहास में चौरागढ़ नाम के गाडरवारा से 22 मील आग्नेय में महाराजा संग्रामशाह ने किला बनवाया था। यहीं पर राजधानी थी। आसफ खाँ से अंतिम युद्ध हुआ। भयंकर जौहर हुआ। सर्वनाश हो जाने पर ही आसफ खाँ, धन, सोना, हाथी ले जा सका। लोक विश्वास है कि पारस पत्थर यहाँ पर था। बानागीत में हिरदे नगर से सम्बन्धित पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

हिरदेशाह के बात पसंद आई गै है रे भाई
अब बसन लागिस भैया हिरदेनगर
चौरा दादर गढ़ा मण्डला मा, हिरदेशाह रे भाई
बसाया है हो ऽऽ।

ऐतिहासिक गोंड वंशीय राजा हिरदेशाह और बानागीत में वर्णित हिरदेशाह की कथा में पर्याप्त अंतर है। लोकगायक बानागीत में इतिहास और कल्पना के आधार पर गीत कथा को गाते हैं। इसी प्रकार गोंड कथा से संबंधित 'हीराखान क्षत्री' बानागीत बहुप्रचलित है। हीराखान क्षत्री की वीरता का वर्णन बानागीत में अवलोकनीय है-

कैसे हीराखान क्षत्री
जग जाहिर जोधा रे भाई
अपना खाड़ा के जोर मा
बावन गढ़ के राजन ला
जीत लै है दादा
हजारन राजा के मूढ़ ला काटे है।
हजारन जमींदार ला
कुचल दै है भैया
चुरैलन वो भुतवन ला
बस मा कर लये है

राजन की रानिन ला
अपन महल मा रे भाई
कैद कर डारे है।

इसी प्रकार 'बैहामारी' बानागीत गाने का भी प्रचलन है।
इस गोंडवानी लोकगाथा के कुछ अंश-

सिंगारद्वीप के राजा का नाम धरतीपत था। सिंगारद्वीप को कुछ लोकगायक सिंहलद्वीप भी बतलाते हैं। रानी का नाम पुंगारपूसे था। घैलकदामा नाम की बहिन थी। घैलकदामा झींझरागढ़ में राजा जलमनशाह के साथ ब्याही थी। एक बार घैलकदामा और रानी पुंगारपूसे हरदी बाजार जाते हैं। दोनों गर्भवती थी। वे दोनों गर्भ में पल रहे नवजात शिशुओं की सगाई कर डालती हैं। आगे चलकर राजा धरतीपत के यहाँ लड़का जन्म लेता है और राजा जलमनशाह के यहाँ लड़की जन्म लेती है। राजा धरतीपत अपने होने वाली बहू को देखने झींझरागढ़ जाता है। वहाँ राजा जलमनशाह उसे मरवा डालता है। फलतः बैहामारी जो राजा धरतीपत का लड़का था। जलमनशाह को मारकर पिता का बदला लेता है। इसके बाद बैहामारी और रामा की शादी हो जाती है। इस गोंडवानी बानागीत का गायन लयात्मक ढंग से इस प्रकार है-

कैसे सिंगारदीप के राजा
श्री धरतीपत रहे रे भैया
कैसे पुंगारपूसे रानी
श्री धरतीपत के रे भाई

कैसे राजा राज कर रहे है सिंगारदीप में हो। सिंगारदीप में श्री धरतीपत राजा राज कर रहे है।

सोना और चाँदी, महल और अटारी, हाथी और घोड़ा,
लाव और लसगर परमान नैहा राजा के।

'होऽऽ पुंगारपूसे राजा के रानी हवे। बोली मा मैना, देखे मा मोहनी चाल मा कबुतरी, बुद्धि मा चतुर। ऐसी हवै रानी पुंगारपूसे।'

ऐसे राजा रानी सिंगार दीप में राज कर रहे है होऽऽ।
राजा श्री धरतीपत की भैया

एक ठन बहनी रहे
नाम ओखर घैलकदामा
ब्याही रहे झींझरागढ़ मा
राजा जलमनशाह के संगमा
बिहाव भै गै रहे रे भाई।

इस प्रकार लोक गायक बैहामारी गोंडराजा की कथा को गीतात्मक लय के साथ मुग्ध होकर गाते हैं।

रामकथा से सम्बन्ध

गोंडवानी बाना गीत में रामायनी की भावभूमि भी पाई जाती है। रामायनी में 'लछमन सत की परीक्षा' (लछमन जटी) प्रचलित है। रामचरितमानस से अलग इसकी कथा है। रामायनी बानागीत में स्वतंत्र गीत के रूप में कल्पना जनित लछमन की सतपरीक्षा गायी जाती है। इसके अन्तर्गत क्रमशः लछमन और इन्दरकामिनी, लछमन और तिरियाफूल, लछमन और मचलादर्ई, लछमन और रानी फुफैया, सीतावनवास आदि बानागीत प्रचलन में है।

रामकथा में पण्डुवानी कथा का मिश्रण भी दिखाई देता है। यही इन कथाओं की विशेषता है। चूँकि बानागीत गायक कल्पना लोक में विचरण कर गीत गाता है। इसलिये प्रत्येक गायक के गाने में कुछ न कुछ अन्तर कहानी के रूप में अवश्य मिलता है अर्थात् कौन लोक गायक प्रमाणिक गाता है यह कहना असम्भव है। फिर क्षेत्र विशेष में अन्तर का होना स्वाभाविक है। रामायनी में लछमन और इन्दरकामिनी का कथासार -

'लछमन जी सतलोकी और प्रणधारी थे। दुन्डामहल में निवास करते थे। पराई स्त्री से कभी मुँह नहीं बोलते थे। अन्ध कुँओं झांकते नहीं थे। बाँझ झाड़ की छाया में नहीं बैठते थे। तिल के खेत में शौच क्रिया नहीं करते थे। लछमन जी छिवलहा बढ़ई से मनमोहन किंदरा बनवाकर बजाया करते थे। किंदरा की आवाज सुनकर राजा इन्दर की कन्या इन्दरकामिनी मोहित हो जाती है और अन्तरा माछी बनकर दुन्डामहल में प्रवेश करती है। लछमन जी को जगाती है। लेकिन लछमन जी की नींद नहीं खुलती। इन्दरकामिनी जादू से लछमन को बोकरा बना देती है। बोकरा

बनाकर अपने साथ रखती है। तब महादेव, कौरव, पाण्डव, हनुमान, नारद आदि एक साथ इकट्ठे होकर इन्दरकामिनी के पास से बोकरा (लछमन) को लेकर आते हैं। इन्दरकामिनी को अठारह खण्ड महल में बंद कर देते हैं।' इस बानागीत के अंश निम्नांकित है-

अजुध्या नगरी माँ राम के वासा
झिंझरी महल में सीता माता
डुन्डा महल माँ लछमन सतेली की
कैसे वास कर रहे है भैया
होऽऽ जे खे सत के नैहा परवा ना रे
गली चलत तिन ना टोरै
पर तिरिया में मुख नहीं बोलें
बांझी रुख के छैयाँ नहीं खदै,
अन्ध कुँआ झांक के नहिं देखे
हो झै बतावे मोर मालिक
हायऽऽ ऐसे है सतलोकी लछमन रे।

अठारा बाजन के तान मिलाके बजा रहे हैं मनमोहन किंदरा।
बाना गाय रहे हैं मनमोहन किंदरा।

राजा इन्दर की बेटी रे भैया
नाव रहे इन्दर कामिनी रे दाऊ
साठ जोड़ी संग सहेली रे हीरा
महलों मा बासा करै भाई।
शंकर झूला माँ झूले रे बाबू
बाजा के धुन पोंइचे हवे ऊहा
तलख बलख भये हवै दादा।

कैसे मनमोहन किंदरा के आवाज मोहनी कर दैसे होऽऽ।

लछमन और तिरियाफूल की कहानी में भी भिन्नता हैं।
इसकी कहानी इस प्रकार है-

'सीता जी एक बार मन में विचार करती है कि देवर लछमन सतधारी हैं। उन्हें शादी के लिये तैयार करना चाहिये। सीता जी इन्दरराजा की लड़की दुर्बल कन्या की सुन्दरता लछमन जी से बतलाती हैं। तब लछमन जी दुर्बल कन्या को लेने के लिये

जाते हैं। बैरागी बाबा के बताये मार्ग के अनुसार उनसे आशीर्वाद प्राप्त कर दुर्बल कन्या को पाने में सफल हो जाते हैं। लछमन जी दुर्बल कन्या को फूल बनने के लिये बाध्य करते हैं। दुर्बल कन्या के फूल बनते ही भौरामल जोधा फूल लेकर उड़ जाता है। इसके बाद रामचन्द्र जी के सैनिकों द्वारा भौरामल जोधा के पास से दुर्बल कन्या को लाया जाता है।' तिरियाफूल को बानागीत में इस प्रकार लोक गायक रस रिक्त होकर गाते हैं-

तै सुनि के देवरा
इन्दर राजा के लड़की
दुर्बल कन्या बोली मा मैना
चाल मा कबुतरी
सोह की मोहनिया
चंदा सूरज उनहारी
ओला देख के रे देवरा
अपन सत मा अटल रहते
तबै तो सतधारी लेख तो तोला होऽऽ।
मैं लान है भौजी, तै देखे ला कहथस,
मैं उड़ैच लान के छोड़ हूँ
और हाथ न लगा हूँ कन्या ला।
मैं तोला बताइच देहूँ,
अपन सत के परीक्षा ला।
कैसे तेख लग गैसे लछमन का।
कैसे सीता जी मन मा खुशी मैं रहे होऽऽ।
चले जाय रहे है लछमन रे भाई
एक बन नाकिन दुई बन नाकिन रे दादा
तीन बन नाकिन चार बन नाकिन रे भाई।
कुइली कछारा, धमकी ददरा, भुतहा कोनहा रे भाई।
करिया पहारा कांचे दह नारा नक गैन भैया।

लछमन सत की परीक्षा में लछमन और मचलादई बानागीत की कहानी इस प्रकार है-

कलशापुर के राजा कछन्दर की कन्या को प्राप्त करने के लिये लछमन कलशापुर जाते हैं। मचलादई के पेट में घेतवा को प्रवेश करवा दिया जाता है। सरनिन डुकरिया के पेट सारने से मचलादई का पेट दर्द ठीक हो जाता है। गीत कथासार-

एक बखत लछमन अपने मन माँ सोचे हैं रे भैया
 बहुत दिना मैं गैन भौजी खो नहि देखे आँव मैं रे
 आज मिल आतौ ते नंगदै रहै भाई
 या सोच के चले हवै लछमन झिझरी महल खो होऽऽ ।
 होऽऽ लछमन झिझरी महल मा पहुँच गैन्हे है ।
 अब सीता अपन सपना ला सुनाय रहे है होऽऽ ।
 कलशापुर के राजा
 नाम है मछन्दर
 ओखर एक कन्या
 नाम हवै मचलादई
 मैं सपना में जो देखों
 सुन ले ओ देवरा हो
 है बने इस दुलहा
 बा बनी से दुलही
 मैं हवों सुवासिन
 गुढ़ै हवै मढ़वा
 मेले हवै बराती
 बजत हवै बाजा
 नाचतथै नच गरी ।

इसी तरह परधानी, रामायनी कथा के अन्तर्गत लछमन और रानी फुफैया, लछमन और बीजुलदाई, सीता वनवास आदि बानागीत बहुप्रचलित हैं। देखने में आता है कि बानागीतों में पाण्डव, हनुमान की कथा एवं नारद, महादेव आदि कथायें मिश्रित रूप से दृष्टिगोचर होती हैं। यही जातीय लोककथा (बानागीत) की विशिष्टता है।

लछमन सत की परीक्षा की एक और गाथा लछमन और बीजुलदाई के रूप में प्रवहमान है। कहानी अंश-

एक दिन रामचन्द्र जी मन में विचार करते हैं कि मेरी शादी हो गई लेकिन छोटे भाई लछमन की शादी नहीं हुई है। मेरे जीते हुये लछमन की शादी हो जाती तो अच्छा होता। रामचन्द्र जी को चिन्तित देखकर सीता जी कहती हैं कि बासुक मामा की एक कन्या है, जिसका नाम 'बीजुलदाई' है। सीता जी की बात सुनकर रामचन्द्र जी बासुक मामा से बीजुलदाई के संबंध में चर्चा करते हैं। बीजुलदाई को प्राप्त करने के लिये लछमन को लमसनाई

जीतना पड़ता है। बीजुलदाई को बाँस के पोर में डालकर लछमन जी को बासुक मामा देते हैं। बाँस के पोर को लछमन जी बीच में खोलकर देखने लगते हैं। बीजुलदाई बीच में बाँस के पोर खुलने के कारण बादल में जाकर छिपती है। इस बानागीत के कुछ अंश निम्नांकित हैं-

ऐसे बोलत हवै सीता जी भाई ।
 तब रामचन्द्र करथै विचारा
 मन मा घोके दिल मा विचारै
 राजा बासुक एक ठन दूरी हवै दादा
 नाम ओखर बीजुलदाई है हो ।

होऽऽ काहे का बुलाये इस भाचा, कहथै बासुक मामा ।
 तब बताय रहे है रामचन्द्रन होऽऽ ।

तै सुनि ले हो मामा
 कछु बात परगै
 तेखर मारे राजा
 तुमला बुलायौ हों
 घर मा है दुरी
 बीजुकदाई होऽऽ
 सियानी अब भै गैस
 ना होतिस ता हमार लछमन ला दे-दे तव ता नंगदे रहें ।

इसी गाथा को जिला डिण्डौरी के लोक गायक इस प्रकार कहते हैं- 'एक राजा थे बिजरामल। रानी का नाम भूरी भैंस था। नौ लाख भैंसों के बीच में भादों करेलिन (बासिन कन्या) रहती थी। लछमन जी सीता के कहने पर भादों करेलिन (बासिन कन्या) को लेने जाते हैं।'

इस प्रकार अज्ञात कवियों की गाथाओं को लोकगायक क्षेत्र विशेष में प्रकारान्तर रूप में कहते और गाते हैं। गोंडवानी रामायनी में सीता वनवास की गाथा भी मण्डला क्षेत्र में है। गाथा इस प्रकार है-

कैसे बोल रहे है रामचन्द्र
 देख लछमन दया झै करबै

अब चले हवै लछमन
 चल भौजाई चल वो
 तोला डोंगरा घुमाय लानों
 कहत हवै सीता जी
 चल देवरा नंगदें कहथस हो
 अब देवर भौजाई
 धरे हवै रास्ता
 डोंगर के भैया
 आंगू हवै लछमन
 धरे हवै तलवार
 पाछे हवे सीता
 धरे हवै लोटा माँ पानी

इस प्रकार परधानी 'रामायनी' से तुलसीकृत राम कथा भिन्न है। फिर भी इन कथानकों की सुदीर्घ परम्परा है। ये कथानक स्वयं के कलेवर में विचित्रता लिये हुये हैं। लेकिन लोकगायक जब इन्हें तन्मय होकर गाते हैं, तब श्रोतागण मुग्ध होकर सुनते हैं।

महाभारत कथा से सम्बन्ध

परधानी पण्डुवानी गीतकथा में नायक भीम है। पण्डुवानी में कँवरा-पंडवा का डण्डा डहोरी खेल जिसे डंडा प्रचण्डा खेल भी कहते हैं। संक्षिप्त कहानीसार इस प्रकार है-

जैतानगरी में पाँच भाई पाण्डवा और इक्कीस भाई कँवरा निवास करते थे। उनकी सार में आठ लाख गायें, नौ लाख बकरियाँ और अनगिनत हाथी थे। वे रोज सबेरे उन्हें कजली वन में चराने ले जाते हैं।

इक्कीस भाई कँवरा और अकेला अर्जुन पंडवा कांधे पर लाठी रखे हुये अपनी-अपनी गायें हाँकते ले जा रहे हैं। सारा पशुधन समुद्र के किनारे पहुँच जाता है। एक वट वृक्ष के नीचे इक्कीस भाई कँवरा खेल रहे हैं। अर्जुन अकेला है। कँवरा अर्जुन को-अरे भैया! आओ हम सब मिलकर डंडा-प्रचंडा का खेल खेलें। अर्जुन कँवरों के पास आ गया। कँवरा आपस में सलाह कर चुके थे कि आज अर्जुन से खूब दांव लिया जाय और उसे रुलाया जाये। डंडा प्रचण्डा खेल प्रारंभ होता है। कँवरा डंडा

चौबीस कोस की दूरी पर फेंक दिया जाता है।

अर्जुन सबसे प्रथम का दावेदार चुना जाता है। दूसरे दिन कँवरा अर्जुन से कहते हैं कि यहाँ आओ अर्जुन। दांव दे, नहीं तो तेरी टुकाई करेंगे। छद्मवेषधारी भीम दूर से सुन रहा था। वह बोला- भाई आ रहा हूँ। तुम लोग अपना दांव ले लो। कँवरों ने डंडा फेंका वह चौबीस कोस की दूरी पर जा गिरा। कँवरा वृक्ष पर चढ़ गये। भीमसेन घड़ी भर में डंडा लाकर वृक्ष के नीचे रख दिया। परधानी कँवरा-पण्डवों की गीत कथा इस प्रकार है-

जैतानगरी में पाँच पुत्र पंडवा
 और हसना नगरी में इक्कीस भाई कँवरा है रे भैया
 जिनके आठ लाख गोरू नौ लाख छेरी,
 ऐरावत हाथी चले जाथै कजली बन मो रे हीरा
 पाछे के जाथै कजरी बन मोरे हीरा
 पाछे के जाथै रे इक्कीस भाई कँवरा मो रे मालिक
 हो अर्जुन चले हवै कठिया धरके होऽऽऽ

इस प्रकार डंडा डहोरी (डंडा-प्रचंडा) खेल बानागीत, लोकगायकों द्वारा मनभावन रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

इस क्रम में 'पानी डुबकी खेल' बानागीत भी बहुप्रचलित है। 'लाखमहल' की कथा का महाभारत में हृदयस्पर्शी वर्णन है। लोकगायक इसे गाकर श्रोताओं को भावविभोर कर देते हैं। इसकी कहानी है-

एक बार कौरवों ने सोचा कि लाख महल बनाकर उसमें पाण्डवों को ठहराया जाय और लाख महल में आग लगाकर पाण्डवों को जला दिया जाय। इस तरह योजना बनाकर पाण्डवों को महालक्ष्मी पूजा के लिये निमंत्रण कौरवों द्वारा दिया जाता है, वह बानागीत में चित्रात्मक रूप से इस प्रकार है-

अत झै बतावै कैसे करे हवे कँवरा चतुराई मोरे भैया
 बिना पानी के रुचि लाखमहल बनाया है रे दादा
 लाख के थूनी लाख के थामा,
 लाखै के मलगा लगाया हवै भाई
 होऽऽऽ कैसे रुचि रुचि है लाखमहल बनाये रहे है हो
 हायऽऽऽ जब आय गै है महालक्ष्मी तेवहार होऽऽऽ

अब लिख लिख चिट्ठी भेजे थे पंडवन कोरे भाई
 होऽऽऽ जब पहुँचे है चिट्ठी पंडवन ढिगा
 इतना सुनथै जब कोतमा माई रे भैया
 कहे भीमा सुन ले ओ माताऽऽऽ
 तो कौन गुना से रोथस ते ऐखर भे बतावरी दाई।

इस प्रकार यह लोकगाथा हृदय विदारक और मर्मस्पर्शी है। इसे पण्डुवानी गीत कथा के अन्तर्गत गाया जाता है।

पण्डुवानी के अन्तर्गत जलसेन मंगरा, महाधान की लड़ाई, अर्जुन का व्याह आदि के रूप में भी बानागीत प्रचलित हैं। 'अर्जुन का व्याह' बानागीत की कहानी इस प्रकार है-

राजा दुरपाल की बेटी द्रोपदी बहुत सुन्दर थी। द्रोपदी की सुन्दरता सुनकर अर्जुन बहुत प्रभावित होते हैं। द्रोपदी स्वयंवर में पाँचों पंडवा जाते हैं। स्वयंवर में शर्त रखी गई थी कि जो तेल की परछाई में देखकर ऊपर उड़ते हुये किककिला पक्षी को बाण मारकर गिरा देगा, उसी के साथ द्रोपदी का विवाह किया जायेगा। स्वयंवर में उपस्थित कोई भी राजा किलकिला पक्षी को नहीं गिरा सके। तदुपरान्त अर्जुन निशाना साधते हैं। उधर सीला टौरिया पर खड़े होकर भीम ने जोर-जोर से हल्ला मचाया 'ओ मारा ओ मारा' हल्ला सुनकर उड़ता हुआ किलकिला पक्षी थोड़ा रुक जाता है। उसी समय अर्जुन का बाण छूट जाता है। बाण जाकर किलकिला को लगा और किलकिला पक्षी नीचे गिर जाता है। इसके बाद नगर गिरदावली के राजा दुरपाल द्रोपदी को बुलाकर अर्जुन के हाथ में पकड़ा देता है।

व्यासकृत महाभारत में वर्णित कथा से जनजातीय गाथा में वर्णित कहानी भिन्न है। 'अर्जुन का व्याह' बानागीत अद्भुत विचित्रताओं से युक्त गीत कथा है। व्यास कृत कथा से पर्याप्त अन्तर होते हुये भी इसे लोकगायकों द्वारा गाकर रस युक्त किया जाता है। परधानी गीत कथा पण्डुवानी में 'महाधान की लड़ाई'-मूल महाभारत की कथा से भिन्न है। संक्षिप्त सार इस प्रकार है-

सूजी की नोक पर जैतानगरी के नौ सौ टोला बसे हुये थे। जैतानगरी में पाण्डवों के लौटते ही कौरव लड़ाई करने को तैयार हो जाते हैं। पाण्डवों से कौरव कहते हैं कि लड़ाई के लिये तैयार

हो जाओ। यदि लड़ाई नहीं करना है तो द्रोपदी को कौरवों के पास भेज दो। अन्ततः द्रोपदी कौरवों की स्त्री बनती है।

एक झना कहथै न बनतिस ता सगुनी मामा जातिस।
 सबझनै कहिन ठाँके आय ठाँके आय।
 अब चले हवै सगुनी रे मामा
 लीला बछेरी मा भये है सवारा रे
 भैया धर लये हैं जैतापुर के रस्ता रे भाई।
 जाइके पहुँच गै हे जैता नगर के दादा।

इस तरह बानागीत में 'महाधान की लड़ाई' का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार परधानी गीत कथा में 'सहदेव का व्याह', 'नकुल बिहद्रा', 'लाल अहिरवना' के व्याह का गायन लोकगायक करते हैं। 'सहदेव के व्याह का बानागीत में वर्णित अंश-

'होऽऽ एक दिना सोचै थे माता कोतमा अपन मन में। का बतावों एक ठन बहू पाँच लरकन के बीच मा। काम धाम नहीं सधै। नै होतिस ते एकाध लरका के बिहाव और कर देतेंव।

तब बोले है कोतमा माता रे भाई
 तुम सुन लेव पांचो पुत्र पंडवा
 मोर मन मा बड़ी अभिलासा हवै रे बेटा।
 एक ठन बहू और ले लान तो रे हीरा
 अकेले बहू काम करत करत मरे जाथै रे।

इस प्रकार परधानी 'पण्डुवानी' बानागीत में 'सहदेव का व्याह' के अतिरिक्त 'नगर बैराट' कलयुग देव आदि कथा गीत भी प्रचलन में हैं।

भूत-प्रेत कथा से सम्बन्ध

जनजातीय बानागीतों में यत्र-तत्र भूत-प्रेतों का वर्णन भी मिलता है। गोंडवानी बानागीत बैहामारी में इसका चित्रण किया गया है।

होऽऽ चले हे बैहामारी।
 नौ सौ मटिया सात सौ सिंगी,
 तेरा सै भुतवा, चुरैलन खां, संग लेके।

कैसे बाप के बदला
लये ला रे भाई
अब का कहवै भैया
नौ सौ के मटिया
सात से सिंगी
तेरा सौ भुतवा
छुटै हवै चुरैलिने
का कहवे भैया
रैना रैन उड़ान दैन लसगर के।

जनजातीय लोकगाथाओं (बानागीत) में स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि ये गाथायें भूत-प्रेत प्रधान हैं। 'राजा हिरदेशाह बानागीत में भी इनका वर्णन मिलता है। बानागीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं—'

अब नैहा ठिकाना राजा हिरदेशाह के फौज के हो
हो कैसे सजे है मटिया
तुम नाम सुन लेव रे भाई हो
अरन मटिया, वरन मटिया
वर्नडोर मटिया, सर्नडोर मटिया

अघासुर मटिया, बघासुर मटिया
उतरा मटिया, छुतरा मटिया
उड़ान मटिया, धसना मटिया
लुटान मटिया मसान मटिया
अपन अपन गोल मा तैयार हो के चले है रे दादा
धुंध हवा ब्यार के दिवार साही बनाय दैने है हो।

उपर्युक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि परधानी बानागीत में भूत-प्रेत, चुरैलिन, मटिया, सिंधी आदि अदृश्य आत्माओं की व्याख्या की गई है। अधिकांश जनजातीय लोगों में इनके प्रति विश्वास भी रहता है। साथ ही यह तथ्य बानागीत के रूप में उजागर भी होता है।

अतः परधानी गीतकथाओं में गोंडी, रामकथा, महाभारत कथा एवं भूत-प्रेत से संबंधित कथाओं का प्राचूर्य है। अनुशीलित क्षेत्र में प्रचलित परधानी बानागीत के अध्ययन से विविध भाव चित्र उभरकर सामने आते हैं। इस अंचल के जनजातीय लोकजीवन में रच बस गये, इन गाथाओं के अवगाहन, आलोड़न-बिलोड़न करने से बहुमूल्य तथ्य सामने आने की सम्भावनाओं से इंकार नहीं किया जा सकता।

निमाड़ी लोकगीतों में वृक्ष

रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी'

वृक्ष हमारे जीवन के सहचर हैं। हमारा जीवन वृक्षों के अस्तित्व पर निर्भर है। वृक्षों की छोड़ी गई प्रश्र्वास हमारी श्वास है। वृक्षों के मूल, तना पत्र, पुष्प और फल हमारे जीवन की अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ग्रीष्म की भयंकर गर्मी से वृक्षों की छाया हमें शीतलता प्रदान करती है। वृक्ष मेघों को आकर्षित करके हमारे लिये प्राकृत जल की व्यवस्था करते हैं। हमारे पर्यावरण की रक्षा करते हैं। वृक्षों की जितनी प्रशंसा की जाये, जितनी भी कृतज्ञता ज्ञापन की जाय, उनके उपकारों की तुलना में कम है। शायद इसी कारण हमारे पूर्वजों ने सुदूर आदिकाल से वृक्षों के महत्त्व को स्वीकार किया और वृक्षों के महत्त्व पर हमारे लिये ढेर सारी जानकारी संजो दी और उन्हें लिपिबद्ध किया है। (साभार-वृक्ष पुराण से)

लोक गीत पगडण्डी की तरह होते हैं। जिसे बनाने वाला एक व्यक्ति नहीं वरन् पूरा समूह होता है, वहीं समूह भाव जगत में नवगति, नवलय, नवताल छन्द की तरह गीतों के भाव सौन्दर्य से सृजन के नवसोपान रचता है। वे लोकगीत आज भी पावन सलिला नर्मदा की तरह न जाने कब से जन-जन के हृदय में सतत् प्रवहमान हैं। ये गीत वाचिक परम्परा के द्योतक हैं और पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते हुए हमारी संस्कृति की विरासत को एक दूसरे को सौंपते हुए जीवित रखे हुए हैं। इसलिये सम्पूर्ण लोक साहित्य में जन-जन की अभिव्यक्ति हुई है। लोकगीत मानवीय मूल्यों के परिपोषक और परिबोधक रहे हैं। गीत कोई भी हो, उसका ध्येय मानवीय मूल्यों की स्थापना करना ही रहा है।

निमाड़ी लोक गीतों में परिवारिक प्रेम के अनेक प्रसंगों का बड़ा सजीव और सहज चित्रण किया गया है। पति-पत्नि के आपसी कलह और प्रेम, सुख-दुख आशा-निराशा, दुश्चिन्ताएँ और सुखी भविष्य के सपने, अपनी परम्पराओं और रूढ़ियों के प्रति अत्यधिक

लगाव या अपनी धरती और अपनी माटी के प्रति गहरा प्यार इन विविध रंगों से युक्त करते हैं। मन का भोलापन, आत्मा की हिलोर को बड़े सुन्दर और मार्मिक ढंग से व्यक्त करते हैं। मन का भोलापन जैसे निर्मल जल की तरह झलकता है। निमाड़ी लोकगीतों में वृक्षों को 'प्रतीक' रूप में सुन्दर प्रयोग करके पारिवारिक पृष्ठभूमि को व्यक्त किया गया है। इन वृक्षों के नाम हैं- नीम, पीपल, वटवृक्ष, आम, इमली, जामुन, चन्दन, ताड़ का वृक्ष, नीम्बू, मेहन्दी, पानबेल, (नागर वेली) मोगरा, चम्पा आदि।

नीम

ग्रीष्म की भीषण गर्मी में नीम की छाया सुखद लगती है। उसी प्रकार माता-पिता की ममता और वात्सल्य सदा ही शीतलदायी होता है। एक लड़की कितनी ही लाड़ प्यार में पली हो, उसे ससुराल जाना ही पड़ता है।

ठंडा लीमड़ा री छाया, वसी मात-पिता की माया
माया तोड़णू पड़से, कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसो कुवा मऽ को डोलऽ वसा ससुरा जी का बोल
बोल सुणऽ पड़से कि सासरऽ जाणू पड़से।
ठंडा लीमड़ा.....
जसो कुवा मऽ को रस्सो वसो सासू जी को ठस्सो,
ठस्सो सड़णू पड़से कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसा तवा पर का रोटा, वसा जेठ जी मोटा
शरम करनू पड़खे कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसी मही मऽ की खई, वसी जेठाणी छे मोरी
काम करणू पड़से, कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसो गोदी मऽ को बालो, वसो देवर हो प्यारो,
लाड़ऽ करनू पड़से, कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसी साथ मऽ की सई, वसी देराणी छे बड़ण,
निमावणू पड़से, कि सासरऽ जाणू पड़से।
जसी कणियर की सोटी, वसी नणद बाई छे मोटी,
पाँय लागणू पड़से कि सासरऽ जाणू पड़से
जसो कम्मर मऽ को छल्लो, वसो सायब जी को पल्लो,
पल्लो बाँधणू पड़से, कि सासर जाणू पड़से।
ठंडा लीमड़ा री छाया, वसी मात-पिता की माया
माया, तोड़णू पड़से, कि सासरऽ जाणू पड़से।

नीम की छाया सुखद होती है। वैसे ही माता-पिता के स्नेह और ममत्व की छाया भी सुखद होती है। इस सुखद स्नेह भरी छाया को छोड़ना पड़ेगा, इस माया मोह के बन्धनों को छोड़ना होगा, ससुराल पक्ष से नाता जोड़ना पड़ेगा, जिस प्रकार कुँए में बाल्टी डालने से उसकी गूँजदार आवाज होती है। ऐसे ही तुम्हारे ससुर जी की आवाज है, उसे सुनना पड़ेगा। जिस प्रकार बाल्टी के साथ रस्सा बड़े मौज मस्ती के साथ 'ठसक' के साथ चकरी (घिरनी) पर आता जाता है। उसी प्रकार तुम्हारी सासुजी का ठसका सहन करना पड़ेगा। तवे पर जुवार की रोटी, मोटी होती है। उसी प्रकार तुम्हारे जेठ जी भी मोटे हैं। हँसी मत करना, शर्म करना, जिस प्रकार रूवी (मथनी) मटकी के अन्दर घुसकर, घूमकर दही को बिलोकर छाछ बना देती है। ऐसे तुम्हारी जेठानी हैं, जो घर के सारे कामों को व्यवस्थित करती हैं, घूम-घूमकर उनको काम छुड़ाना पड़ेगा, काम करना ही पड़ेगा। जिस प्रकार एक बच्चा जिद करता है। बच्चे की जिद को माता ही पूरा करती है। ऐसा ही तुम्हारा देवर है, उससे स्नेह देना। तुम्हारी देवरानी को बहन के समान समझना या बहन सा प्यार देना। तुम्हारी ननद रानी का मान-सम्मान करना। अपने पति का आदर सत्कार करना। एक बार जो इस अटूट बन्धन में बँध गया, उसे जीवन पर्यन्त निभाना पड़ेगा अथवा निभाना ही है। कितनी बड़ी शिक्षा दी गई है। लड़की को खूब लाड़-प्यार किया हो, सब ध्यान में रखा हो तो भी उसे एक दिन ससुराल जाना ही पड़ता है।

शीतल माता का आंगण लिमड़ा
दिन-दिन लयरा ओ लेय।
कि रे मालई का लड़का नऽ पाणी सिच्यो,
कि वरस्यो भादव मेघ।
नई रे मालई का लड़का नऽ पाणी सिच्यो,
नई वरस्यो भादव मेघ।
पाणी सिच्यो कामिनी बईण की भाऊली,
ते गुण लयरा हो लेय।

शीतला माता के मंदिर के आँगन में नीम का पेड़ है। वह दिन-प्रतिदिन फल-फूल रहा है। क्या उसे माली के लड़के ने पानी से सिंचित किया है। या वह भादव माह के घने मेघों की घनघोर वर्षा के कारण लहरा रहा है।

न तो ये माली के लड़के की मेहनत का परिणाम है और न ही भादव मेघ की बरसात का असर है। यह तो कामिनी बहन की माँ की श्रद्धा और गुणों का प्रतिफल है। उसे मनवांछित फल प्राप्त हुआ है और उसे सिंचित किया है। इस कारण यह लहरा रहा है।

श्रावण मास लगते ही बहन अपने भाई की प्रतीक्षा करती है। रक्षाबन्धन पर मेरा भाई मुझे मैके (पियर) ले जायेगा, बहन प्रतीक्षा कर रही है। नीम पर निम्बौली लगी और पक भी गई और गिरने भी लगी। जिस प्रकार नीम से निम्बौली टप-टप गिरती है। उसी प्रकार भाई की याद में बहन की आँखों से आँसू टपकने लगते हैं।

*ली लिम्बोलई लागी श्रावण महिनो आयो जी।
हमारा तो मोटा भाई तुमकऽ नींद कसी आवऽ जी।
तुम्ही तो छोरी बइण सासरिया मऽ झुरइऽ जी।
झुरऽ तेखऽ झुखऽ देवा हम झुरनऽ नहीं देवां जी।*

नीम के वृक्ष पर निम्बौली पक गई है। सावन का महीना आ गया है। ओ मेरे बड़े भाई! इन दिनों तुम्हें नींद कैसे आ रही है? देखो, तुम्हारी बहन ससुराल में झुर रही है। भाई कहता है— जो बहन झुर रही है उन्हें झुरने दो, लेकिन हम अपनी बहन को अब नहीं झुरने देंगे। हम उसे लेने जरूर जायेंगे। भाई बहन को लेने पहुँच जाता है। बहन की व्याकुल प्रतीक्षा समाप्त हो गई है।

*रनु बाई का आंगण लिमड़ो
वहां बठी कपला गाय ओ सहेलड़ी।
चलो सखी देखणऽ जावां।
चारो नी चरऽ माता पाणी नी पे,
वा सदा घड़ो दूध देय
चलो सखी देखणऽ जावां।
ऊना दूध वारी म्हारी रनुबाई न्हायऽ
मली-मली घेवऽ लम्बा केश ओ,
सहेलड़ी चलो सखी देखणऽ जावां।*

रनुदेवी के आँगन में नीम का वृक्ष है। आँगन में नीम का वृक्ष होना परिवार के स्वास्थ्य के लिये शुभ माना जाता है। उस वृक्ष के नीचे कपिला गाय यानी देवताओं की गाय कामधेनु बैठी

है। चलो सखी उसे देखने चलें, एक अजूबा है। वहाँ वह गाय न घास खाती है और न पानी पीती है। फिर भी घड़े भर-भर दूध देती है। उस दूध से रनु स्नान करती है और अपने लम्बे-लम्बे बालों की केश राशि को उसी से धोती है। चलो हम उस अचम्भे को देखने चलें। बड़ी बुजुर्ग महिलाओं के पैर जब बहुएँ छूती हैं तब आशीष स्वरूप बुजुर्ग महिलाएँ कहती हैं— 'दूध न्हावजे, पूत पावजे।' याने दूध से स्नान करना और तुम्हें पुत्र प्राप्ति हो। यानी सभी सुख-समृद्धि हो।

पीपल

पीपल के पेड़ का वर्णन वेद पुराणों में वर्णित है। पीपल के पेड़ में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों महादेवताओं का निवास है। पीपल का वृक्ष पूजनीय और वन्दनीय है। जो मनुष्य शनि की साढ़े साती से प्रभावित है, यदि वह नियमपूर्वक पीपल को जल चढ़ाता है तो शनि का प्रभाव कम होकर शान्ति मिलती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि पीपल के वृक्ष में सबसे ज्यादा आक्सीजन होती है। पीपल का वृक्ष इसलिये प्रत्येक गाँव मंदिर के आँगन में होता है। पीपल का वर्णन लोक कथाओं, लोक गीतों में अधिक हुआ है। एक गीत में चढ़ते हुए सूर्य और पीपल के पेड़ का सुन्दर वर्णन है।

*माता उच्चो पिपल्यो लम्बा पानऽ
चढ़िया पर सूरीमल उगी रह्यो ओ।
माता उग्यो उग्यो धणियर जी की पाग
तिल्लव पर सूरीमल उगी रह्यो ओ।
माता उग्यो उग्यो राणी रनुबाई की गोद
पल्लव पर सुरीमल उगी रह्यो ओ।*

ऊँचे पीपल के लम्बे-लम्बे पत्ते हैं। हरेक पत्ता उगता हुआ सूरज जैसा लग रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य पहाड़ी से उदय होकर पीपल तक चढ़ आया है। सूर्य के प्रकाश से पीपल के लम्बे पत्ते चमकने लगे हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सूर्य धणियर जी के साफे से उदय हो रहा है। उसके प्रकाश से धणियर जी की कलंगी चमकने लगी है। ऐसा प्रतीत होता है, मानो सूर्य रनुदेवी की गोद से उदित हो रहा है, जिससे उनकी साड़ी का पल्लू चमक रहा है।

उच्चो सो पीपल कोपल्यो ओ देवी,
 वहाँ बठी गाय गोठाण ।
 हाथ लकड़ी पाँय पावड़ी धणीयर राजा,
 गाय चरावण जाय ।
 बारा पिछोड़ी को गालणो रनुबाई
 भाँत लई जाय ।
 आवती गवरल धणियर नऽ देखी लिया,
 मोड़ी लिवी कणियर काम ।
 एक झुकी दूसरी भी झुरकी
 तीसरी मऽ जोड़्या बेऊ हाथ ।
 नई कलुमऽ माय नऽ मावसी
 हेडु तमारा घोड़िला की लाद ।
 टूरमात हो जो ओ देवी रमेश भाई ।
 ऊ तमरो अणो लई जाय ।

एक ऊँचा पीपल का वृक्ष है। उसमें नई-नई कोपलें फूट आई हैं, उसकी छाया में गायों का समूह बैठा है। हाथों में लकड़ी लेकर पाँव में पावड़ियाँ पहनकर धणियर राजा गाय चराने जाते हैं। बारह रंग के कपड़े के टुकड़े में भात का भोजन बाँधकर रनुबाई धणियर (पति) के लिये ले जा रही हैं। भात ले जाने में उसे देर हो गई। इस कारण धणियर जी को गुस्सा आ गया। रनुबाई को उन्होंने दूर से आते देखा तो आग बबूला हो गये, उन्होंने गीले कनियर की एक बेल तोड़ ली और तड़ा-तड़ा रनु को मारने लगे। एक बेंत मारी, दूसरी मारी और तीसरी में रनु बाई ने अपने हाथ जोड़कर कहा- मैं तो अजन्मी हूँ, न तो हमारी माता है, न माता के समान मौसी। हम कहाँ जायें, यदि आप मुझे निकालेंगे भी तो मैं कहाँ जा सकती हूँ। हाँ, तुम्हारे घुड़साल में जैसे घोड़ा बँधा रहता है, वही पड़ी रहूँगी। तुम्हारे घोड़े की लीद निकालती रहूँगी। मैं अपने मैके जाने की याचना नहीं करती। रनुबाई की विनम्रता देखकर धणियर प्रसन्न हो जाते हैं और रनु से कहते हैं- तुम अजन्मी हो तो क्या हुआ? आज से कलयुग में तुम्हारी प्रतिष्ठा घर-घर में होगी और प्रत्येक पुरुष तुम्हारा भाई होगा।

गोकुल को छोड़कर भगवान श्रीकृष्ण जी जब मथुरा चले जाते हैं और वापस गोकुल नहीं आते, तब गोपिकाएँ श्याम की प्रतीक्षा करती हैं। कहती हैं कि शायद वे अब आयें तब आयें,

लेकिन श्याम नहीं आते। गोपियाँ विरह में प्रतीक्षा करती हैं। इस भजन में गोपियाँ कृष्ण को तरह-तरह के प्रलोभन देती हैं। जिसमें पीपल को भी महत्त्व दिया गया है।

पीपल पूजतऽ हरि मिल्या, सामऽ मिल्या गोपाल जी
 बंसीवाला साँवरा आवजो म्हारा देश जी ।
 मुरलीवाला साँवरा आवजो म्हारा देश जी ।
 आँगण वाऊ वेलची, कवलऽ नागर वेल जी ।
 बिड़ला मिस आओ साँवरिया, खूब करूँ मिनवार जी
 बंसीवाला साँवरा.....
 आँगण वाऊ आमली, पिछवाड़ऽ पेम खजूर जी ।
 केला मिस आओ साँवरिया, खूब करूँ मिनवार जी
 बंसीवाला साँवरा.....
 झुरतऽ झुरतऽ पिंगल गई, सगली गई
 सगली गई वेश साँवरिया, धवला हुआ केश ।
 बंसीवाला साँवरा आवजो म्हारा देश जी ।
 पीपल पूजणऽ हाँऊ गई थी, अपना कुल काज जी ।
 पीपल पूजतऽ हरि मिल्या, सामऽ मिल्या गोपाल जी
 बंसीवाला साँवरा.....
 कुबजा सारू विणती सुणजो दीनानाथ जी ।
 चरणों में शीश नवाऊँ, लज्जा राखो दीनानाथ जी ।
 मुरलीवाला साँवरा, आवजो म्हारा देश जी ।

हे बंसी वाले घनश्याम! एक बार मेरे देश में आ जाओ। हे मुरली बजैया! एक बार मेरे गोकुल गाँव आ जाओ। आपके लिये मैंने अपने आँगन में इलायची का पेड़ लगाया है। दरवाजे के पास में नागरवेली पान की बेल लगाई है। पान खाने के लिये आ जाइये। एक गोपिका ने अपने प्रियतम कृष्ण के लिये आँगन में इमली का पेड़ लगाया और घर में खजूर का पेड़ लगाया है। हे श्याम! केले खाने के बहाने आ जाओ। आपकी प्रतीक्षा करते-करते मेरी उम्र बीत गई। उम्र के साथ मेरे बाल भी पककर सफेद हो गये लेकिन तुम नहीं आये। पीपल की पूजा करने मैं अपने कुलवंश के साथ गई थी, जब पीपल की पूजा करके मैंने वरदान के रूप में तुम्हें माँगा तो ऐसा प्रतीत हुआ जैसे तुम आ गये हो। हे दीनानाथ! कुब्जा दासी को इस विनती की स्वीकार करो।

पारस पिपलई रतन तलई हो

राणी रनुबाई हुआ पणिहार।
 आगऽ जावां तो डर लागऽ
 पाछऽ खां तो घड़ो नही डूबऽ
 गोदी लेवां तो मयमुल भीजेऽ
 पाछऽ खां तो कन्हैया खीजेऽ
 बेटी राया की गरब ना कीजो
 पग दई नऽ घड़ो भर लीजो।

विशाल तालाब के किनारे पारस पीपल का एक वृक्ष है। तालाब का जल निर्मल और पवित्र है। इसके तट पर रानी रनुबाई जल भरने जाती है। तालाब का पानी गहरा है इसलिए आगे जाने में डर लगता है। गंदा पानी वह ले जाना नहीं चाहती। अधिक गहरे में कपड़े भींगने का डर है। यदि कम पानी से घड़ा भरेंगे तो घड़ा जल में नहीं डूबेगा, यदि घड़े को गोदी में लेकर पानी में जायें, तो साड़ी भींगने का डर है। इतने में रनुबाई के पिताजी उधर से निकलते हैं और बेटी का संकोच देखकर कहते हैं- हे बेटी! तुम बहुत बड़े घर की हो, अपने पर घमण्ड मत करो। अपने पाँव आगे बढ़ाकर कपड़े भींगने की चिन्ता किये बिना तुम तालाब से स्वच्छ जल भरकर घर जाओ।

वट वृक्ष (बड़)

वट वृक्ष को निमाड़ी में 'वड' कहते हैं। वट वृक्ष की जड़ें जमीन में काफी दूर-दूर फैलकर उसे सुदृढ़, मोटा और दीर्घायु बनाती हैं। वट वृक्ष की छाया भी गहरी होती है। वट वृक्ष सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी का प्रतीक रूप है। वट-सावित्री की पूर्णिमा पर महिलाएँ श्रद्धायुक्त होकर वट पूजन करती हैं। वट वृक्ष की गहरी छाया मंगलमूर्ति गणेश जी को भी प्रिय लगी तभी तो वे यहाँ विश्राम करने लगे। वटवृक्ष और केले का पौधा दोनों को इस लोकगीत में शामिल किया है। केले का पौधा घर की मुख्य पहचान है।

गढ़ रे गुंडी सी बाबो गणपति आयो
 आई नऽ उतरिया सेला वटऽ तलऽ।
 पूछतो-पूछतो बाबो शयर मऽ आयो
 हो नगरी मऽ आयो,
 राय हो रमेश भाई को घर काँ छे,
 आमी की सामी बाबा लम्बी पटसाल,

केलऽ झबुक राय का आँगणा मऽ

राजभवन के चौबारे से उतरकर गणेश जी महाराज शहर में आये, नगर में आये, आकर वे एक वट वृक्ष की शीतल छाया के नीचे विश्राम करने लगे। विश्राम के पश्चात् वे गाँव वालों से पूछते हैं- रमेश भाई का घर कहाँ है? गाँव वालों ने बताया कि वह आपके-सामने बड़ा घर दिखाई दे रहा है, जिसके आँगन में केले का वृक्ष (पौधा) लहरा रहा है, वही रमेश भाई का घर है।

म्हारी रनुबाई को आणो ओ सई
 होण आई गयो
 आया आया परदेशी लोग आई उतर्या
 वो सेला वड तलऽ।
 एक सौ हाथिड़ा वो दुई सौ घोड़िया
 पाय भाला वाला गिण्या नी जाय

-गणगौर गीत

रनुबाई को लेने उसके ससुराल से धणियर जी सहित बहुत से मेहमान आये हैं। वे एक वट वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे हैं। एक सौ हाथी, दो सौ घोड़े तथा पैदल और भाले वालों की संख्या अनगिनत है।

आम

आम के पत्तों के बिना कोई शुभ और मांगलिक कार्य नहीं होता, विवाह और गणगौर पर्व में तो ये अनिवार्य हैं। आम का रस सभी को प्रिय होता है। आम का रस स्वादिष्ट और अमृत के तुल्य होता है। इसका वर्णन भी गणगौर गीत में है। जल ही जीवन है इसका महत्त्व भी दर्शाया गया है। जहाँ पानी है, वहाँ पर वृक्ष भी होंगे। यह पानी की मुख्य पहचान है। पानी होगा तो वृक्ष हरे-भरे होंगे। वृक्ष नहीं है, तो पानी नहीं बरसेगा, इसलिए हमारे पूर्वजों ने जलाशय के समीप वृक्ष लगाओ की प्रथा बनाई ताकि पथिक और पशुधन दोनों आराम कर सकें।

ताम्बा खगिया रे तलाब
 अमरीत अम्बो मवशीयो जी
 अम्बा नीचऽ छे वाट,

वहाँ उबी सासर वासेण जी,
कानुडो हँसी पूछऽ वाट,
कौ जाओ देवी हरकता जी
सासरो मेल्यो कान्हा दूर
पियर झेंडो रोपियो जी

ताम्रवर्णी मिट्टी में तालाब खुदवाया गया है। उसके ठीक पास में एक आम का वृक्ष है। जिसके ऊपर फल लदे हैं। उस आम का रस अमृत के समान मीठा है। उस आम के नीचे से रनुबाई के मैके जाने का रास्ता है। रनुदेवी पीहर जा रही हैं। मन में उमंग है। रास्ते में उन्हें श्रीकृष्ण जी ने रोककर पूछा- देवी! आप आज इतनी प्रसन्नचित होकर कहाँ जा रही हैं? मानिनी रनु कहती है- हे कान्हा! मैं सुसराल छोड़कर अपने मैके जा रही हूँ। मैके आकर रनुदेवी आम्रकुंजों में खेलने जाती हैं।

खेलऽ खेलऽ ओ रनुदेवी माय
अम्बा का बनऽ मऽ।
थारी खेल्या की चतरई ओ माय
अम्बा का बतऽ मऽ।
थारी ध्वजा पूजा पर वारी ओ माय,
अम्बा का बतऽ मऽ।
तू तो काचा नायल लाई ओ माय
अम्बा का बनऽ मऽ।

हे रनुदेवी! आम्र की अमराइयों में तुम खेलो। तुम्हारे खेलने से मेरा मन हर्षित होता है। तुम आम वृक्ष के कुंजों में खेलो। तुम्हारी ध्वजा और पूजा पर मैं निछावर हूँ। तुम्हारी पूजा के लिये मैं कच्चा नारियल लाया हूँ। तुम आम वृक्ष में, कुंजों में खेलो।

जब पति दूसरी पत्नी लाने की बात करता है, तब स्त्री की व्यथा स्पष्ट प्रकट हो जाती है। किसी भी स्त्री के लिये सौत का सामना करना बड़ा ही असहनीय होता है। इस गीत में इसी वेदना का वर्णन है। रनुबाई के माध्यम से स्त्री के प्रति प्यार का अत्यन्त सजीव वर्णन है।

सासरो छाड्यो देवी दूर पीयर मेडो रोपियो जी

ताम्बा खणिया रे तालाब, अमरित अम्बो मवरियो जी
रनुबाई हुया पणहार वहाँ रडऽ सासर वासेण जी
कि थारो पियर दूर कि थारी सासु सौतेली जी,
नहीं म्हारो पियर दूर, नई म्हारी सासु सौतेली जी
हम पर सऊक को साल, ते गुणऽ सासर वासेण जी

एक दिन रनु अपने ससुराल से दूर मैके में आई है। सुन्दर तालाब का किनारा और पाल के पास अमृत की तरह मीठे आम्र वृक्ष पर बौर छाए हुए है। रनु देवी जब पानी भरने के लिये निकली तो उसने देखा कि एक ससुराल वासिन रो रही है। देवी ने उससे पूछा- क्या तुम्हारी मायका दूर है या तुम्हारी सास सौतेली है। तब उस स्त्री ने कहा- ना तो मेरा पीयर दूर है, ना मेरी सासु सौतेली है। मेरी गोद में बच्चा नहीं है इसलिये मेरे पति दूसरी पत्नी लाने की बात कर रहे हैं। यह वर्ष हम पर सौत का साल बनकर आया है, इतना सुनते ही रनु ने कहा- हे बहन! रो मत! मैं बाँझ के यहाँ भी पालना झुलवा दूँगी और तुम्हारे सौत के साल का संकट टाल दूँगी।

आम और इमली

आम और इमली दोनों ही खट्टे होते हैं। प्रत्येक आम कच्चा हो, तब खट्टा ही होता है। पके आम की तरह हर परिवार में मिठास नहीं होती, कभी-कभी खटाई आ ही जाती है। पत्नी जब अपने मैके (पियर) की बड़ाई करती है तो पुरुष इसे बरदाशत नहीं कर पाता है। इसी बात पर पति-पत्नी को चाबुक से पीट देता है और अपने परिवार की बड़ाई पर उसे चन्दनहार तक घड़वा देता है। इसी का वर्णन है इस गीत में। पर्यावरण शुद्धी के लिये अपने घर के आँगन में आम और इमली का पेड़ सुख-समृद्धि का प्रतीक होता है। सुख-समृद्धि होगी तो परिवार में खुशी के दीपक जलते हैं।

हऊँ तो अगवाडऽ लगाऊँ अम्बा अगली
पिछर वाडऽ हो नरगर बेल।
हाऊँ तो रंग भरी दिवलो संजोवती,
वो तो हँखी रलई पियु पूछाऽ वासुली
म्हारा गोरी वो थारो वालईया कुण्ड।
राजा प्रथम बलईया म्हारा पिताजी।
दूसरा हो म्हारी माय सुहाय।

कि रंग भरी.....

राजा तीसरा बलाईया म्हारा वीरा जी
थौथावण हो म्हारी भावज सुहाय।

कि रंग भरी.....

गोरी यही वचन का कारणे
मारू चाबुक हुई चार
हाऊँ तो रंग भरी दिवलो संजोवती
राजा प्रथम वालईया म्हारा ससरा जी
दूसरा वण हो म्हारी सासु सुहाय।
हाऊँ तो रंग भरी दिवलो संजोवती।
राजा तीसरा वलाईया म्हारा जेठ जी
चौथावण हो म्हारी जेठानी सुहाय।
हाऊँ तो रंग भरी दिवलो संजोवती।
गोरी यही रे वचन का कारणे
छड़ाऊँ ते चंदनहार, वरिस मुहरा हुई चार।
हाऊँ तो रंग भरी दिवलो संजोवती।

मैं अपने घर के आगे वाले हिस्से में आम और इमली का पेड़ लगाऊँगी और घर के पीछे नागरवेली पान की बेल लगाऊँगी। दीपक जलाकर अपने घर को रोशन करूँगी। पति ने पत्नी से पूछ लिया कि-हे प्रिय! तुम्हारा पालन-पोषण किसने किया? तब पत्नी अपने पीयर की बड़ाई करते हुए कहती है- हे राजा! प्रथम पालने वाले मेरे पिता हैं। दूसरी पालनकर्ता मेरी माता है, तीसरे पालनकर्ता मेरे भाई है और चौथी पालनकर्ता मेरी भाभी है। इस बात पर पति-पत्नी को चाबुक से मार देता है तब पत्नी खुशामद करते हुए कहती है- हे राजा! प्रथम पालनकर्ता मेरे ससुर जी हैं। दूसरी पालने वाली मेरी सासुजी हैं। तीसरे पालनकर्ता मेरे जेठजी है, चौथी पालनकर्ता मेरी जेठानी हैं। इस बात पर खुश होकर पति-पत्नी को चाँदी का चंदनहार घड़वा देता है और अपनी पत्नी के ऊपर दो चार मोहरें निछावर कर देता है। पत्नी समझदार थी, उसने अपने तर्क बुद्धि से ससुराल की बड़ाई करके घर की सुख-शान्ति को बनाये रखा।

यही नहीं उसने अपने ससुराल के सभी लोगों को कितना सम्मान दिया है। देखिये, आम-इमली और खजूर पेड़ के माध्यम से-

म्हारा अँगणा मऽ अम्बा हो आमली,

म्हारा पिछवाड़ऽ पेड़ खजूर।

जी गई थी कृष्ण बधावणऽ।

म्हारा ससरा जी गाँव गरासिया

म्हारा पिताजी दिल्ली केरा राज।

जी गई थी हऊँ कृष्ण बधावणऽ।

म्हारी सासु सरस्वती नदी वयऽ

म्हारी गाय गंगा केरो नीर

जी गई थी हऊँ कृष्ण बधावणऽ

म्हारा देवर देऊल देवता

म्हारा वीराजी गोकुल कान्ह

जी गई थी मैं हऊँ कृष्ण बधावणऽ

म्हारी नणद कड़कती बिजलई

म्हारी बड़ण सरावण तीज

जी गई थी हऊँ कृष्ण बधावणऽ।

मेरे आँगन में आम और इमली का पेड़ है, घर के पिछले हिस्से में खजूर का पेड़ है। कृष्ण जन्म उपलक्ष्य में मैं माता यशोदा को बधाई देने गई थी। मेरे ससुर जी गाँव में मुखिया हैं। मेरे पिताजी दिल्ली के राजा हैं। कृष्ण जन्म के उपलक्ष्य में मैं माता यशोदा को बधाई देने गई थी। मेरी सासुजी सरस्वती नदी की तरह हैं। मेरी माता जी गंगा जल की तरह निर्मल है। मेरा भाई गोकुल के भगवान श्रीकृष्ण की तरह हैं। मेरे देवर मंदिर के देवता समान हैं। मेरी ननद कड़कती बिजली है। मेरी बहन श्रावण की हरियाली तीज है।

जामुन

जामुन का पेड़ हमेशा नदी के किनारे होता है, इसलिए कि नदी का पानी उसे हमेशा मिलता रहे। निमाड़ी गीतों में हास्य गीत भी है। गणगौर का होली गीत-

वाळी वलेण नदी ववऽ म्हारी सई होण

नीलई जामुन गयरी छाया

व्हाँ भोला धणियर राजा छोट्या धोवऽ

रनुबाई हुया पनिहार

हमउ देखी न राजा छिटा मत उजावजो

हमरा पिताजी हम पर खीज
तुमरा पिताजी गोरी काई ओ करसे
चार दिन हँसी रलई खेला
अबीर गुलाल ना थाल हो भरिया
रंग की उऽ पिचकारी।

होली में तो हास्य होता ही है। होली बारह महीने में एक बार आती है जो मनुष्यों के सारे भेदभाव भुला देती है। यही वर्णन है। आड़ी-टेढ़ी नदी बह रही है। उसके पास गहरे हरे रंग की गहरी छायादार जामुन का पेड़ है, उस पेड़ के नीचे धणियर जी अपनी धोती धो रहे हैं। रनुबाई पानी लेने जाती है। धणियर जी उस पर पानी उछाल देते हैं। तब रनु कहती है- हम पर आपने पानी क्यों डाला? हमारे पिताजी नाराज होंगे। धणियर जी ने कहा- होली में हँसी ठिठौली तो होती है। चार दिन खेलने के हैं, उसे हम क्यों गँवा दे? होली के कारण अबीर-गुलाल के थाल भरे हैं। रंग से सराबोर पिचकारी से रंग उड़ रहा है और इसमें रनु-धणियर भीग गये हैं। पति और पत्नी के बीच अगर प्रेम न हो तो उनका दाम्पत्य जीवन नीरस और मृत होता है। इसके विपरीत यदि उनमें प्यार हो तो वे चाहते हैं कि एक दूसरे का साहचर्य मिले। पत्नी चाहती है कि अपने पति के साथ वह बाग-बगीचों में विहार करे। बाग-बगीचे तभी सुन्दर लगते हैं, जब वे हरे-भरे हों। उन्हें हरे-भरे रखने के लिये आवश्यकता है पानी की, पानी प्राप्त होता है कुएँ से, अतः पत्नी-पति से कहती है-

अन्दन चन्दन का म्हारा बाग रे बगीचा
हो जी बालमा जरा कुपा खोदावणा
कुंओ खोदऊगा गोरी मारी ऊण फेंकगा
हो जी बालमा जरा दाडक्या लगावणां
दाडक्या लगाऊं गोरी पइसा कण देगा
हो जी बालमा जरा बैक सी मंगावणां
बै सी मंगाऊगा गोरी टुंडा कुण खायगा
हो जी बालमा जरा हाथ अडावणां
हाथ अड़वाऊंगा गोरी लगी करी जायगा
हो जी बालमा जरा डाक्टर बुलावणां

पति अपने पति से कहती है। देखो! बाग-बगीचे में लगे

चन्दन के वृक्ष मुरझा रहे हैं। हे प्रियतम! कुँआ खुदवाकर इसे सिंचित करो। पति कहता है- कुँए की मिट्टी कौन फेंकेगा? पत्नी मजदूर लगाने की बात कहती है। पति कहता है कि मजदूरों को पैसे (मजदूरी) कौन देगा? पत्नी उसे बैंक से मंगाने की सलाह देती है। पति कहता है कि बैंक का ऋण अदा न कर पाने की स्थिति में मार पड़ेगी तो उसका क्या? पत्नी कहती है। हे प्रिय! आप हाथ अड़ा देना, पति कहता है कि गोरी हाथ अड़ाऊंगा तो मुझे चोट लगेगी, इस पर पत्नी उसे डाक्टर को बुलाने की राय देती है।

आज हमारे देश में संयुक्त परिवार समाप्त हो रहे हैं किन्तु जब यह प्रथा थी कि पति-पत्नी को आपस में बात करने का अवसर भी प्राप्त नहीं होता था। पति-पत्नी के बात करने के दो ही अवसर होते थे, या तो पति भोजन करने आये तब या रात्रि में सोते समय ऐसी ही बात इस लोकगीत में है।

अगर चन्दन का घड़्या रे बाजूट
तो बावन चन्दन की कोठड़ी जी।
कोठड़ी मऽ काँदऽ रनुबाई भात तो।
भोला धणियर जीमणऽ बट्या जी।
जिमतऽ जो जिमतऽ नऽ कऊ पिया मन की बात
तो नव दिन पीयर हम जावां।
भोला हो धणियर भोलो वगारो राज,
तो नवदिन पियर मोकलो जी।
तपऽ ओ गोरी चईट केरो घाम तो
बालऽ मकुन्द कुमलई जासे जी।
तमारा बालक राखो तमारा पास तो,
व दिन पीयर हम जावां जी।
ऐतरो जो सुणतऽ लागी धणियर जी रीस तो
तड़-तड़ मार्या ताजणा जी।
ऐतरो जो सुणतऽ लागी रनुबाई रीस तो
आसण छोड़ी भुई मऽ सोई गया।

चन्दन की सुगन्ध से घर का कोना-कोना महक रहा है, क्योंकि प्रत्येक कमरे में बावन प्रकार के चन्दन की लकड़ी लगी है और जगह-जगह चन्दन से बनाये बाजूट (पटा या पीढ़ा) रखे हैं। रसोई घर में रनुबाई छत्तीस प्रकार के भोजन के साथ भात बना

रही है। चन्दन के पासले पर बैठकर धणियर जी भोजन कर रहे हैं। भोजन करते-करते अच्छा अवसर जानकर रनुबाई धणियर जी को अपने मन की बात कहती है। हे स्वामी! हम नौ दिन के लिये पीयर जाना चाहते हैं। हे भोले स्वभाव वाले धणियर जी! तुम्हारे राज्य में सभी प्रकार की सुख-समृद्धि है। तुम केवल नौ दिन के लिये मुझे मैके भेज दो। धणियर जी बड़ा सुन्दर बहाना बनाते हुए कहते हैं- रनु! तुम तो जानती हो अभी चैत्र का महीना है, धूप बहुत तेज है, तुम्हारे साथ नन्हा बच्चा धूप में कुम्हला जायेगा। रनु ने कहा- मुझसे अधिक तुम्हें अपने बच्चे की पड़ी है। तुम बच्चों को अपने पास रख लो, मैं तो नौ दिन के लिये पीहर जाऊँगी। रनु की इतनी सी बात पर धणियर जी को गुस्सा आ गया। उन्होंने खूँटी पर टंगी चाबुक उतर ली और तड़ातड़ चार चाबुक रनु को जमा दी। रनु को भी गुस्सा आ गया, वह तो मानिनी थी, अपना आसन छोड़कर रूठकर जमीन पर सो गई। रूठी हुई पत्नी एक अन्य गीत में पति से कहती है-

वाड़ी मऽ को नऽ हो राजा चन्नन कटाड़ो
जेको बणाओ रंग भरी ढोलियो जी।
चारई पाया नऽ हो राजा भंवर उतारो,
इस ढोलको रे जानो हिंगुल रे।
रेशम बाणा नऽ राजा बाण गुणाओ,
अधावण लेवो नखदुल जी
सफेद फेही का राजा सेज बिछाओ,
साऊड़ लेवो के मखमूल की जी
जेपर सोया नऽ हो राजा, लोकेन्द्र भाई राज,
ढोलो साजन की बेटी रिजणो।

हे प्रिय! बाड़ी में जो चंदन का वृक्ष है, उसे कटवा लो और उसका पलंग बनवा लो। चारों पहियों को गोल बनवाकर उस पर हिंगुल के समान लाल रंग लगवाना, उस पलंग में रेशम की रस्सी लगवाना और उस पर सफेद रंग का गलीचा डलवाना और मखमल की चादर ओढ़ने के लिये रखना। इस प्रकार के पलंग पर लोकेन्द्र भाई सोये हैं और उनकी पत्नी उन्हें पंखों से हवा दे रही हैं। हवा देते-देते उसे भी नींद आ जाती है। पंखा हाथ से छूटकर जमीन पर गिर जाता है। इस गीत में कहती है- हे भाभी! यदि तुम्हारा लखपति पिता भी आ जाये तो मैं यह पंखा नहीं दूँगी।

यदि मेरा सहोदर भाई पंखा मांगने आयेगा, तो मैं उसे सहर्ष दे दूँगी। भाभी पंखे के कारण नाराज है। ननद यहाँ शिक्षा पूर्ण बात कहती है- हे भाभी! रास्ते चलते पथिक को यदि तुम भाई कहोगी तो वह तुम्हारा भाई नहीं बन जायेगा। जिसने माँ की कोख से जन्म लिया है, वही तुम्हारे रिश्तेदार भाई, जेठ, देवर कहलायेंगे। रास्ते चलते बच्चों को तुम स्नेह देती हो, प्यार करती हो, तो वे बच्चे तुम्हारे बच्चे नहीं बन जायेंगे। जब तक तुम अपनी कोख से पुत्र को जन्म नहीं दोगी, वह तुम्हारा पुत्र नहीं कहलायेगा।

घर पर कन्या और जंवाई के आने के पश्चात् इस गीत में उनके उतरने की व्यवस्था को लेकर जंवाई के मान-सम्मान और जंवाई के बिना कन्या के पाट पर नहीं बैठने की मधुर कल्पनाएँ संजोई हैं।

बाड़ी मऽ को चन्दन कटाड़ो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला।
जेको बाजूट घड़ाओ रे म्हारा मान गुमानी ढोला।
जेपर रनु बाई कऽ बठाड़ो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला।
रनुबाई एकला नी बठऽ रे, म्हारा भात गुमानी ढोला।
जेपर धणियर जी कऽ बठाड़ो रे, म्हारा मान गुमानी ढोला।

अपनी बाड़ी में का चन्दन काट लो और मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम, उसका बाजूट (चौकी) बनाकर उस पर रनुबाई को बिठाओ। ओ मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम! लेकिन रनुबाई तो उस पर अकेली नहीं बैठेगी। ओ मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम! उसके साथ धणियर जी को भी बिठाओ। और मेरे मान-सम्मान वाले प्रियतम! सच ये भी है कि पत्नी बिना पति के अपना मान-सम्मान नहीं करवा सकती है। पति के बिना पत्नी अधूरी होती है। पति का मान-सम्मान पत्नी के द्वारा सजाया होता है।

नीम्बू

कन्या और जंवाई के घर आने के पश्चात् माँ फूली नहीं समाती है, उसके बैठने की व्यवस्था के लिये चन्दन का बाजूट बनवाती है तो कभी ठंडल सहित नीम्बू तुड़वाकर अचार डालने का आग्रह करती है। यहाँ माँ की ममता और उल्लास देखने लायक है-

तोड़ो तोड़ो रे डेडम डेड निम्बुआ तोड़ी लावजो
म्हारा छोटा देवरिया री बाग, लिम्बुआ तोड़ी लावजो।
म्हारी रनुबाई न्हाखऽ लिम्बुआ तोड़ी लावजो।
म्हारा धणियर राजा चाखऽ अचार लिम्बुआ तोड़ी लावजो।

डंठल सहित नींबू तोड़कर लाना। मेरे छोटे देवर के बगीचे से ही नीम्बू तोड़कर लाना। मेरी रनु उसका अचार डालेगी। मेरा जंवाई (धणियर जी) अचार को चखेगा। अचार और खाना खाने के बाद रनुबाई और धणियर जी बाग-बगीचों में घूमने जाते हैं। जहाँ पर मोगरा, चम्पा, दवणा आदि के फूल खिले हैं।

अना बना मऽ चम्पो मवरियो
मव्र्यो फुलवारी।
धणियर राजा डालऽ नवाङऽ
राणी रनु बाई फुलड़ा टोचऽ
टोचतऽ टोचतऽ काट्यो मुड़यो,
नैना रो रस लीन्हो।
पान पटौलई पाटो बाँध्यो
लापसी सी सेक्यो।

धणियर राजा चम्पा के फूलों की डालियों को झुका रहे हैं। रनुबाई फूल तोड़ रही हैं। फूल तोड़ते-तोड़ते उन्हें काटा चुभ गया, धणियर जी ने अपने उत्तरीय (दुपट्टे) से पट्टी निकाली और रनु को बाँध दी। इसी बीच धणियर जी ने रनु के नैनों की सुन्दरता का आनंद ले लिया। फिर वे मोगरों के नीचे मन बहलाने के लिये

बैठ जाते हैं।

बाड़ी मऽ मोगरो मयंकऽ सुरंगलो
हाँ धणियर राजा पागा बाँधऽ सुरंगलो।
रनु बाई हिरी-फिरी देखऽ सुरंगलो।
तम भला बण्या पातलिया सुरंगलो।
तम भला बण्या केशरिया सुरंगलो।

मोगरो की छाया में धणियर जी अपना साफा बाँध रहे हैं और रनुबाई उन्हें घूम-घूम कर देख रही हैं। उनके सिर पर साफा बहुत सुन्दर लग रहा है। वे बहुत ही सुन्दर दिख रहे हैं।

वृक्षों की सदियों से चली आ रही अंधाधुंध कटाई का यह नतीजा है कि आज हम शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भोजन और शुद्ध औषधियों और न जाने किन-किन वस्तुओं की शुद्धता के लिये तसरने लगे हैं।

कुछ ही दशकों से 'वृक्ष लगाओ पर्यावरण बचाओ' आन्दोलन भी जोर पकड़ रहा है, जो जंगल पहले काट लिये गये हैं उन पर दोबारा वृक्ष उगाये जा रहे हैं। हमारे पूर्वजों ने वृक्षों को मात्र 'जड़' नहीं समझा, वे उनमें जीवन का अनुभव करते हैं। इनके सुख-दुख को समझते हैं और इसमें 'देवत्व' के दर्शन करते हैं। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ग्रन्थों, वेद-पुराणों, रामायण और महाभारत में वृक्षों की जानकारी विपुल मात्रा में प्राप्त होती है। वह स्वयं मनुष्य की जानकारी के बराबर हैं।

बुन्देली लोकगीत सैरा

गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त

बुन्देलखण्ड में भुंजरिया (कजरिया) श्रावण माह में बोई जाती हैं। इन्हें महिलाओं द्वारा अवसर विशेष पर शुभ मुहूर्त में मिट्टी लाकर उसे दोनों अथवा गुनुआँ में रखा जाता है। फिर उसमें गेहूँ बो दिये जाते हैं। और ढककर रखा जाता है। नित प्रति पानी दिया जाता है, पूजन किया जाता है। दीपक अगरबत्ती जलाई जाती है। होंम लगाया जाता है। भादों में कजरियों का विसर्जन पूजन के पश्चात् महिलाओं द्वारा किया जाता है। कजरियों के बारे में लोक मान्यता है कि ये जितनी अधिक लम्बी तथा पीली होती हैं। वर्ष की फसल उतनी अच्छी होती है। कजलियों को विसर्जन के समय खोंट लिया जाता है। उसे सबसे पहले देवी-देवताओं को चढ़ाया जाता है फिर बड़े-बुजुर्गों को दिया-लिया जाता है। कजरियों को एक दूसरे के देने के पीछे मान्यता है कि वर्ष भर की भूल-चूक की क्षमा याचना, बैर भाव आदि को भुलाकर हिल-मिलकर अन्न को बीच में (साक्षी) रखकर होता है। इस समय जिसके घर दुख का यह त्यौहार होता है, उसके यहाँ अवश्य जाया जाता है, बैठने के लिये। गाँव के बड़े घरों में पूरा गाँव कजरियाँ देने जाता है। बड़े-बुजुर्गों को जब छोटों द्वारा खजलैयां दी जाती हैं तो बड़े-बुजुर्ग खजलैयाँ को हाथ में लेकर फिर दो-चार खजलैयाँ देने वाले के दोनों कानों पर खोंस देते हैं, छोटा उनके चरण छूता है और बड़े आशीर्वाद देते हैं। यह परम्परा गाँव-खेरोँ में आज भी प्रचलित है।

भुजरियाँ बोलने से विसर्जन तक के दिनों में किसी बड़े मैदान में पुरुषों द्वारा सैरा गायन किया जाता है। इस सैरे की विशेषता यह होती है कि इसमें वाद्य यंत्रों के रूप में डंडे, ढोलक और मंजीरा होते हैं। पुरुष जो ढोलक मंजीरा बजाते हैं, वे बीच में होते हैं और उसके चारों ओर गोल घेरा बनाकर डंडे लिये लोग घूमते-गाते और एक दूसरे के डंडे पर डंडे को चोट करते चलते हैं। सैरा गाते समय ये एक दूसरे के डंडे से डंडे को मारते आड़े-तिरछे होते बैठते, आगे-पीछे हो, उछलते तथा कलाबाजियाँ दिखाते घूमते हैं। सैरा की शुरूआत-‘आरे-आरे हाँ रे’ से होती और ‘हुक्क हुइया हा हा’ सैरे गीत के अंत में लगाकर लोग डंडों के स्वर ढोलक मंजीरे के साथ मिलते घूमते रहते हैं।

ग्रामीण अंचलों में बसा हुआ समाज आज भी अधिकांश अनपढ़ ही है। परन्तु उसमें आज भी अपने देश और धरती से गहरा लगाव है, उसके प्रति आदर भाव है। कृषि के लिए उसके मन में श्रद्धा और स्नेह के साथ-साथ सम्मान का भाव है। उत्तम खेती ही ग्राम्य जीवन की जीविका है, अतएव उसके प्रति लगाव होना स्वाभाविक भी है। डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी लिखते हैं— बुन्देलखण्ड भारत का एक विशिष्ट भू-भाग है जहाँ की अपनी विशिष्ट संस्कृति है, उल्लेखनीय गरिमा है, स्मरणीय इतिहास है, दर्शनीय प्राकृतिक सुषमा है, सराहनीय शौर्य है, प्रशंसनीय मर्दानगी है, और है विलोभनीय नारी सौन्दर्य।

इस भू-भाग में एक साथ लोक और शिष्ट संस्कृति आज भी सुरभित है। डॉ. रामस्वरूप श्रीवास्तव 'स्नेही' के अनुसार मनुष्य सदा सुख की खोज में रहता है, वह कष्ट साध्य श्रम को गीत गाकर भुलाना चाहता है, इस संबंध में एक अंग्रेज कवि ने कहा है 'आनंद जीवन की औषधि है। वह कष्टों का उपचार करता है। संघर्ष को परे रखता है, चिंता की रेखाओं को मिटाता है और कई गुना सुख प्रदान करता है।' ऐसी ही भावधारा हमें सैरा लोकगीत में देखने-सुनने को मिलती है। सैरे के बारे में श्री गौरीशंकर द्विवेदी और शिवसहाय चतुर्वेदी कहते हैं कि ये आषाढ़ मास से लेकर श्रावण माह तक गाये जाते हैं। व्योहार राजेन्द्र सिंह ने सैरे सामयिक गीतों के अंतर्गत लिये हैं। श्रीचन्द जैन सैरे को नृत्य-गीत के अंतर्गत मानते हैं। डॉ. विनोद तिवारी ने सैरों को खेत की कविता कहते हुए उसे विषयगत या अवसरगत वर्गीकरण करते हुए ऋतु वर्णन के अंतर्गत लिया है। मेरी दृष्टि में सैरा लोकगीत श्रावण माह में जब से खजलियाँ रखी जाती हैं तब से लेकर भादों में जिस दिन उनका विजर्जन होता है उस दिन तक ही गाया जाने वाला लोकगीत है।

आल्हा में भुजरियों की लड़ाई के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड की आन-बान और शान का चित्रण हुआ है। इस अवसर पर गाये जाने वाले सैरा लोकगीत में जहाँ बुन्देली शौर्य गाथा की बानगी मिलती है वहीं प्राकृतिक सुषमा, बुन्देली जमीन की पहचान उसमें पैदा होने वाली फसलों की जानकारी मिलती है। नारी मन के कोमल भाव और उसकी टीस, कसक भी यत्र-तत्र बिखरी दिखाई पड़ती है। लोक का उत्स और प्राकृतिक छटा का चित्रण

बुन्देली सैरा की खासियत है। इतिहास बोध, भौगोलिक झलक, रहन-सहन, खान-पान, जीवन-दर्शन की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ सैरा लोकगीत में खोजी जा सकती हैं। ऐसे लोकगीतों का संग्रह कर उस पर नये सिरे से शोध करने में सहायता मिलती है।

बुन्देली धरती प्रकृति सुरम्य स्थली है। यहाँ पर पावस ऋतु मनोहारी छटा बिखेरती है। अतः इस ऋतु में गाये जाने वाले लोकगीतों में सैरा अपनी विशिष्टता रखता है। वैसे सैरा लोकगीत नृत्य प्रधान और पुरुष वर्ग का लोकगीत है। इसमें पुरुषों की भागीदारी रहती है। गीतों के अन्तर्गत अवश्य ही नारी भावनाएँ उजागर होती हैं, जो पुरुष अपने कंठ से उजागर करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से पावस ऋतु का प्रभाव हर मानव के जीवन पर अपनी अमिट छाप छोड़ता है। जो सैरा के माध्यम से लोक में परिस्थितियों के साथ संयोग-वियोग के स्वाभाविक चित्रण में रूपान्तरित मिलता है।

संयोग श्रृंगार तथा मादकता जहाँ बुन्देली सैरा में अपनी छटा बिखेरते हुए मिलती है, वहीं पावस ऋतु की टीस, संत्रास और वियोगी हृदय की कसक अधिक गहरे आघात करती झलकती है। सैरा लोकगीत में रसमयता, कलात्मकता, वातावरण की जीवन्त दृष्टि तथा सामाजिक संस्कृति सभी कुछ समाहित है। बुन्देलखण्ड का अतीत और ऐतिहासिक गौरव गाथा सैरा में सुरक्षित है। इसमें बुन्देली परम्परा एवं रीति-रिवाजों के साथ-साथ करुणा का भाव तथा मार्मिकता अधिक परिलक्षित होती है। कुल मिलाकर सैरा लोकगीत में सांस्कृतिक तथा सामाजिक जीवन के जीवन्त चित्र स्पष्ट दिखते हैं। जो लोक संस्कृति के मूल तत्वों के रक्षक कहे जाते हैं। पारिवारिक परिस्थितियों के जीते जागते ये सैरे जहाँ आनंद का संचार हमारे भीतर करते हैं, वहीं ये जीवन जीने की प्रेरणा भी देते हैं। संघर्ष के क्षणों में कर्मठता प्रदान करते हैं। जूझने की शक्ति का संचार करते हैं। और क्रियाशील बने रहने की जुगुप्सा जगाते हैं। सैरा में जीवनदायनी शक्ति है। नारी मन की कोमलांगी भावना है। पौरुषेय ओज है। बुन्देली लोक की रसिकता है। कुल मिलाकर प्रेम की उत्कंठा और वीरता की पराकाष्ठा का समन्वय सैरा लोकगीत में समाया हुआ है।

उदाहरण स्वरूप कुछ सैरे प्रस्तुत हैं। गोल घेरे में जब एक ओर से स्वर उठता है कि—

आरे आरे हां इतनी बेरा किये गाइये,
रे माता लइये कौन के नांव
अरे कौना फुलवा चढ़ाइए हो,
कीके दरसन की आस.....हुक्क हुइया हा हा

गीत के आरंभ होते ही धीरे-धीरे घेरे में घूमते लोग एक दूसरे के डंडे पर चोट लगाते हुए चलते हैं और गीत समूह स्वरों में होता है, उभरता है। गति तेज होती है। स्वर देने के लिए लोग दो भागों में बँट जाते हैं। फिर आधे लोगों के बीच से एक व्यक्ति गा उठता है।

आरे आरे हां सदा तौ भुमानी दाहनी रे,
सनमुख रहत गनेस
पांच देव रच्छा करें,
रे बिरमा बिस्तु महेस.....हुक्क हुइया हा हा

भुजरियों के समय में जो चित्र आल्हा गायकी से उभरते हैं वैसी ही स्थिति सैरा भी पैदा करता है। शौर्य और बुन्देली ओज से सराबोर सैरा अपनी विशिष्टता को उजागर करता है, यथा-

आरे आरे हां सदा तुरैया अरे फूलै नहिं हो,
सदा नें साउन होय
सदा नें राजा अरे रन जूझै,
सदा नें जीबे कोय....हुक्क हुइया हा हा

हमेशा तुरैया नहीं फूलती और न ही हमेशा श्रावण बना रहता है। हमेशा ही राजा रण में जूझता नहीं रहता और न ही हमेशा कोई जीता रहता है।

आरे आरे हां नायें सें आ गई रे अरे नदी बेतवा,
मायें सें केन धसान
इन दोइ के अरे भैया बीच में,
झंडा रोपे मरद मलखान.....हुक्क हुइया हा हा

इस तरफ से तो नदी बेतवा और उस तरफ से केन और धसान नदी में बाढ़ आ गई है। और इन दोनों के बीच में ही मरद मलखान ने अपना झंडा गाड़ दिया है।

आरे आरे हां मचीं गुहारीं, अरे कनवज कीं,
कऊं हिरना सब खब जांय
चीनों चीनों अरे सकियां हरौ हो,
असवार कहाँ के आंय....हुक्क हुइया हा हा

कनवज की गुहारी (खेत) मचे हुए हैं। जिसमें हिरण गब (धंस) गब (धंस) जाते हैं। अरी सहेलियों! इन्हें तो पहचानों भला ये असवार कहाँ के हैं ?

आरे आरे हां हतियां पै के महाउती रे,
रोकौ रूपैया लेव
धरियक हांती ठांडौ करौ हम,
आल्हा खों देखन जायें.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! हाथी के ऊपर बैठे महावती जरा हाथी को रोक रूपया ले लो। जरा थोड़ी देर के लिए हाथी को खड़ा करो, हम आल्हा को देखने जाते हैं।

आरे आरे हां हरे तौ बछेरा अरे परमाल के हां,
हारी सुआ बारी पूँछ
हरी करौंदन अरे झक झालरी
दोइ दल में करत किलोर....हुक्क हुइया हा हा

परमाल के तो बछेड़ा जो हैं वे हरे रंग के हैं। उसकी पूँछ सुआपंखी है। हरी करौंदी की डांग में दोनों दलों के बीच वह किलोल कर रहा है।

आरे आरे हां दौरत आवै अरे नदी बेतवा हो,
डूबत आवै कछार
अरे आदि तौ नदिया पानी बहै हो,
आदी रक्त की धार.....हुक्क हुइया हा हा

नदी बेतवा तो दौड़ती आ रही है, जिसके कारण उसके कछार डूबते जा रहे हैं। आधी नदी में तो पानी बह रहा है और आधी में खून की धार बह रही है।

आरे आरे हां खेतों लटकै अरे लट कांकुन हो,

बंदियन में लटक रई धान
लाखन लटकें अरे घुड़लन पै,
जाकी सोभा न बरनी जाय....हुक्क हुइया हा हा

खेतों में लट कांकुन झूम रही है और बंदवास में (भरे खेतों में) धान लटकने लगी है। घोड़े के ऊपर तो देखो लाखन झूमते दिख रहे हैं, जिसकी शोभा कही नहीं जाती।

आरे आरे हाँ रोमन रोमन अरे गांसी लगी हां,
बरमा असी सैल कौ घाव
मामा बिसवासी अरे आओ नें,
चौड़ा जैतखम्भ लयें जाय.....हुक्क हुइया हा हा

रोम-रोम में भिदे हुए हैं। ब्रह्मा को हजारों घाव हो गये हैं। परन्तु मामा जिसका विश्वास था वह अभी तक नहीं आ पाया है। उस चौड़ा को देखो वह जैतखम्भ ही लिये जा रहा है।

आरे आरे हो ऊदल मारे हो, ऊदल मारे भली करी हो,
बड़ाई तौ भारी होय
लाखन राजा अरे निज मारिऔं,
परदेसी पावनें आयें.....हुक्क हुइया हा हा

ऊदल को मारा अच्छा किया इससे बहुत तारीफ हो रही है। परन्तु लाखन राजा को नहीं मारना, वे तो परदेशी पाहुने हैं।

आरे आरे हां कहां,
धरी है करहा कटरियाएं हो,
कहां गेंडा की ढाल
कौनन टंगी है करहा कटरिया हो,
घुल्लन टंगी है ढाल.....हुक्क हुइया हा हा

कहाँ पर करहा कटार रखी हुई है और कहाँ पर गेंडा की ढाल रखी है? कोने में करहा कटरिया है और घुल्ले के ऊपर गेंडा की ढाल टंगी हुई है।

आरे आरे हां कहां धरो सुरसी कौ बागौ,
कहां निरमोला पाग

जमखाने में सुरसी कौ बागौ हो,
उतई धरी है पाग....हुक्क हुइया हा हा

कहाँ पर सुरसी वाला बागा रखा हुआ है और कहाँ पर निर्मल पगड़ी रखी हुई है? जमखाने में सुरसी का बागा रखा हुआ है और वहाँ पर पगड़ी रखी है।

आरे आरे हां अन्न में नौनी, अरे जुनरी लगै हां,
धन में धौरी गाय
सकियन नौनीं अरे सगुना लगे,
मरदन में मरद मलखान.....हुक्क हुइया हा हा

अनाज में ज्वार अच्छी लगती है और धन-धान्य में धवल गाय अच्छी होती है। सहेलियों के बीच में सगुना शोभा देती है और मर्दों के बीच में मलखान मर्द लगते हैं।

आरे आरे हां अन्न न में नौनी जुनरी लगै हो,
गौअन में तो धौरी गाय
रानिन में नौनी फुलवा लगे हां,
कुंअरन में उदैसिंग राय.....हुक्क हुइया हा हा

अनाजों में तो ज्वार अच्छी होती है। जैसे गायों के बीच में सफेद गाय। रानियों में तो फुलवा रानी अच्छी लगती हैं और कुँअरों में उदयसिंह राय अच्छे हैं।

आरे आरे हां आसों के साउन, जूझ के हां,
आगे के दैओं कराय
नउनियां बुलाओ री बखरी में हो,
बुलौआ देओ फिराय.....हुक्क हुइया हा हा

इस वर्ष के श्रावण में युद्ध करके फिर तुम्हें आगे के दर्शन कराऊंगा। अभी तो खवासन को बुलाकर बुलौआ देने के लिए बुलाओ कि वह घर-घर जाकर निमंत्रण दे आये।

इसी तरह से रामाऔतारी सैरा में जहाँ रावण लंका के भीतर गरजता है। वहीं भगवान श्रीराम अवधपुरी में, और इन दोनों के बीच में देखो तो श्री हनुमान जी गरज रहे हैं।

आरे आरे हां लंका गरजै अरे रावना हां,
अवधपुरी भगवान
इन दोउन के अरे भैया बीच में,
गरज रहे हनुमान.....हुक्क हुइया हा हा

इसी तरह से भुजरियों को लेकर एक चित्र सैरे को सजीवता प्रदान करता है-

आरे आरे हां लंका साउन महीना अरे नीको लगे हो,
गेंवड़े भई हरयार
साउन में भुजरिया बे दियो हां,
भादों में दिऔ सिराय....हुक्क हुइया हा हा

श्रावण का महीना अच्छा लगता है, गाँव के बाहर हरियाली हो जाती है। श्रावण में भुजरिया बो देना और भादों के महीने में विसर्जित कर देना।

आरे आरे हां ऐसौ है कोउ धरमी रे,
बैनन खों लिऔ है बुलाय
आसों के साउना घर के करौ हो,
आंगे के देहें कराय (मिलाय).... हुक्क हुइया हा हा

ऐसा कोई धरमी है जो बहनों को बुला लाये। इस वर्ष का श्रावण घर में ही करें और आगे के श्रावण में फिर मिल लेंगे।

आरे आरे हां धरीं भुजरियां मानक चौक में
बीरा रये कुमलाय
कैसी बहन हेटें परी हां,
बरबस लेत पिरान.....हुक्क हुइया हा हा

मानिक चौक के बीच भुजरिया रखी हुई हैं और पान के बीड़ा कुम्हला रहे हैं। बहिन किस प्रकार से अपनी अड़ी पकड़े हुए है, बरबस ही प्राण लेने पर तुली हुई है।

आरे आरे हां सोनें की मांदे अरे दूद भरीं हो,
सोने भुजरियां लेऔ सिराय
कै जैहें तला की पार पै हां,
कै जैहें भुजरिया सूक.....हुक्क हुइया हा हा

सोने की नाद तो दूध से भरी हुई है। सो तुम अपनी भुजरिया विसर्जित कर लो। अरे! भुजरिया तो तला की पार के ऊपर जायेंगी वर्ना ये रखी-रखी सूख जायेंगी।

ऋतु चित्रण के साथ सामाजिक सरोकारों का तालमेल हमें सैरे में ही दर्शित होता है-

आरे आरे हां साउन सुहानी अरे मुरली बजै हां,
भदवां सुहानी मोर
तिरिया सुहानी अरे जब ही लगै रे,
ललना झूलें पोर के दोर.....हुक्क हुइया हा हा

श्रावण के महीने में तो मुरली का स्वर भाता है। और भादों के महीने में मयूर सुखद लगता है। स्त्री तभी अच्छी लगती है, जब उसका ललना दरवाजे के पास पोर में झूलता हो।

आरे आरे हां चौरई नौरपा तोरे दिन कड़ गअे,
कनकौ लहरिया लेय
ठांडो घूमा अरे बिनती करै हो,
मोरी टोरै फुदरियां कोय....हुक्क हुइया हा हा

बुन्देलखण्ड की सब्जियों में चौलाई और नौरपा होते हैं, उसके लिये कहा गया है कि तुम्हारे दिन तो निकल गये अब तो कनकौआ लहरा रहा है। खड़ा हुआ घूमा कह रहा है कि कोई आकर मेरा फुदना तोड़ ले।

इसी तरह से स्थान विशेष का उल्लेख सैरे के माध्यम से उजागर हुआ है-

आरे आरे हां टोरन टोर रे सागर बसो हां,
खुरई अले मैदान
गाँव गढ़ीला रे ककरो बसो,
जेरवारौ तला के पास.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! ऊँची-ऊँची चोटियों पर तो सागर बसा हुआ है। और खुले मैदान में खुरई की बसाहट है। गढ़ीला गाँव तो कंकरीली जमीन में है और जेरवारौ तलाब के पास ही बसा हुआ है।

आरे आरे हां इकरन टिकरन अरे भेंसा बसो रे,
रांझी में पिपरिया गाँव
नदी कछारन अरे सिमरी बसै हो,
पटपर पै जोधपुर गाँव.....हुक्क हुइया हा हा

टिकरों के ऊपर तो भेंसा गाँव बसा हुआ है और झीला में अर्थात् उतार में तो पिपरिया गाँव बसा है। नदी के कछार में सिमरी गाँव है और पटपर पथरीली जमीन में जोधपुर गाँव बसा हुआ है।

लोक विश्वासों की धरती से संपृक्त सैरों में शकुन-अपशकुन का भी चित्रण मिलता है-

आरे आरे हां पैले लिबउआ अरी बहु जात हौ,
करिया तो काट गओ गैल
कै दुख हुइयें रे लुहरी सास के,
कै मिलें बलम नादान.....हुक्क हुइया हा हा

पहले पहल के लिवाने पर बहू जा रही हो, पर काले नाग ने तो रास्ता काट दिया है। सो, तुझे छोटी सास के दुख होंगे अथवा पति छोटे मिलेंगे।

आरे आरे हां पैली लुआई रे,
पैली लुआई अरे बेला जात हो,
करिया नें तो काटी गैल
कै दुख हुइयें सास ननद के,
नातर बलम मिलें नादान....हुक्क हुइया हा हा

पहले लिवाने पर बेला जा रही हो, पर काले नाग ने तो रास्ता ही काट दिया है। अब तो लगता है कि सास और ननद के दुख होंगे अथवा पति नादान मिलेंगे।

सामाजिक जीवन की झाँकी और नारी मन की मनो व्यथा अपनी ऊर्जा के साथ सैरे में यत्र-तत्र फूटती रहती है। सैरे सीधे-सीधे भावनात्मक मनोदशा को अभिव्यक्ति देते हैं, तो नारी की हृदय वेदना को उद्घाटित भी करते हैं, उदाहरण स्वरूप कुछ सैरे दृष्टव्य हैं-

आरे आरे हां असड़ा तौ लागे रे असड़ा तौ लागे,
मोरे प्यारे दूब गई हरयाय
बीरन लुबौआ आये नहीं रे,
घर चुनरी धरी रंगाय....हुक्क हुइया हा हा

आषाढ़ माह लग गया है दूब की हरियाली छा गई है। भाई लेने के लिए अभी तक नहीं आया, मैंने अपनी चुनरी रंगाकर घर में रख ली है।

आरे आरे हां साउन सुहावनों पपिहा रटै
भदवां सुहानी मोर
तिरिया सुहावनी जबड़ लागै रे,
बारौ खेलै पोर के दोर.....हुक्क हुइया हा हा

श्रावण माह में पपीहा की पिउ-पिउ बोली सुहावनी लगती है। भादों के महीने में मयूर। स्त्री तो तभी अच्छी लगती है जब उसका बालक दरवाजे पर खेलता हो।

आरे आरे हां बैल तो बेंचौ लीला धौरिया,
बेंचौ टगर के खेत
हंसिया लै लौ रे चांडी पीठ के,
जे पै चौपड़ खेलत जांय.....हुक्क हुइया हा हा

लीला और धौरा बैल बेच दो और टगर के खेत भी बेच डालो। चौड़ी फल वाला हंसिया ले आओ, जिस पर बैठकर चौपड़ खेलते हुए चलें।

आरे आरे हां कजरा के कांटे लगें रे,
बेंदी सौत की कोर
आरों के नेहा अरे जे लागे,
मोय सालें आदी रात.....हुक्क हुइया हा हा

काजल तो काँटे समान लगता है और बेंदी मुझे आँखों में खटकती रहती है। जब यार से नेह लगा हुआ हो तो वह मुझे आधी रात में दुःख देता है।

आरे आरे हां ऊंची अटरिया अरे मोरे छैल कीं,
हम पै चढ़ी नें जांय

जाय जो कहिओ अरे उन छैल सें हां,
मोय कैयां उठा लै जाय.....हुक्क हुइया हा हा

मेरे यार की तो ऊँची अटारी है, उस पर मुझे चढ़ने में तकलीफ होती है। कोई जाकर मेरे यार से कह दे कि वह मुझे उठा कर ले जायें।

आरे आरे हां असड़ा तो गरजै अब सहना लगे हां,
बन में कुहुक रई मोर
बीरन लिबौआ अबै आये नहीं रे,
मोरौ सांय सांय जी होय.....हुक्क हुइया हा हा

आषाढ़ माह तो गरज कर चला गया, अब तो श्रावण लग गया है। भाई लेने के लिए अभी तक नहीं आया है। मेरे प्राण तो घबड़ा रहे हैं।

आरे आरे हां साउन आये कछू लै दो हा,
लहंगा लाम झुलाम
लै दो चुनरिया अरे बड़े मौल की,
जीमें लिखे पपीरा मोर.....हुक्क हुइया हा हा

श्रावण आ गया है, कुछ ले दीजिये। अच्छा सा बड़े घेर वाला लहंगा और कीमती चूनर ले दो जिसमें पपीहा और मयूर बने हुए हों।

आरे आरे हां छिटक बुदैया निरमल जिन हुइऔं,
जिन मोरी बैरन होय
पिया पसर के बरदा ढीलें,
अरे सिजरिया सूनी होय.....हुक्क हुइया हा हा

अरे चंदा! तू स्वच्छ निर्मल न होना और न ही तुम मेरे दुश्मन बनना। मेरे प्राण प्यारे पसर के लिए बैलों को ढील ले जायेंगे और मेरी सेज सूनी हो जायेगी।

आरे आरे हां ऊँची अटरियों अरे गोरी चढ़ गई
लै बेला में तेल
छोटे देखे रे जब बालम,
कहूँ ठाड़े पटक दये तेल....हुक्क हुइया हा हा

गोरी तो ऊँची अटारी पर चढ़ गई, हाथ में बेला भर तेल लेकर। परन्तु जैसे ही उसने अपने प्रीतम को छोटा सा देखा तो तेल का बेला खड़े-खड़े ही पटक दिया।

आरे आरे हां कंथा मोरे धोई धाई
धोई धरी मूंग की दार,
आज बिलम जा कंथा बावरे,
तुम जेऔं लेव जौनार.....हुक्क हुइया हा हा

अरे कंत! मैंने तो साफ करके धोकर मूंग की दाल रखी हुई है। अतः आज तो तुम ठहर जाओ और यह ज्यौनार जो मैं तैयार कर रही हूँ उसे खा लो।

आरे आरे हां अंगना सूकें सूकनें रे,
बन सूकै कचनार
गोरी धन सूकै अरे मायके में,
कोऊ हीन पुरुख की नार.....हुक्क हुइया हा हा

आँगन में तो अनाज सूख रहा है और जंगल में कचनार सूख रही है। गोरी तो अपने मायके में ही सूख कर कांटा हो रही है, वह किसी कमजोर पुरुष की स्त्री जो है।

आरे आरे हां कारी बदरिया अरे तोय सुमरों,
पुरवई परों तुमारे पांव
आज तौ बरस जा अरे कनवज देस में,
मोरे कन्ता घरई रै जाय.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! काली बदली मैं तेरा सुमिरन कर रही हूँ। और पवन मैं तेरे पैर पड़ती हूँ। कम से कम आज तो इस कनवज देश में तू बरस जा, जिससे कि मेरे प्राण प्यारे घर में ही रह जायें।

आरे आरे हां चटक चुनरिया ना मैली भई,
ना धोबी घर गओ पटोर
लाज न छूटी अरे नैनन की रे,
कंथा सीजन चले परदेस.....हुक्क हुइया हा हा

भड़कीले रंग वाली चूनर अभी तो मैली भी नहीं हुई और न ही धोबी के घर मेरी चादर ही धुलने जा पायी है। आँखों की

लज्जा भी अभी नहीं खत्म हो पायी और प्रीतम परदेश के लिए जा रहे हैं।

आरे आरे हां कारी बदरिया तोरी पैयां परों,
कौंदा बीरन के बल जांय
आज बरस जा मेरे देसा में,
मोरे कंता घरै रै जांय.....हुक्क हुइया हा हा

अरे काली बदली! मैं तेरे पैर पड़ती हूँ। हे बिजली! और चमक मैं भाई के समान तुम पर बलिहारी जाऊँ। आज मेरे देश में तू बरस जा, जिससे मेरे प्राण प्यारे ठहर जायें।

आरे आरे हां ब्याह तौ लाये अरे पूरब से,
कंकन बांदे हांत
ऐड़ी महाउर अरे छूटे ना,
रे कंथा सीजन चले परदेस.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! पूर्व से ब्याह कर तो ले आये, हाथों में कंगन बांधकर के ले आये। मेरी ऐड़ी के तो महावर भी नहीं छूटे हैं अभी और प्रीतम हैं कि वे परदेश के लिए जा रहे हैं।

आरे आरे हां उरजन गुरजन के झूला उरे,
झूलै सबई सिंसार
एकइ ना झूलै रे लाखन बहू,
जी के कंता गये परदेस.....हुक्क हुइया हा हा

जहाँ-तहाँ गुर्ज के ऊपर देखो तो झूले पड़े हुए हैं। पूरा संसार झूला झूल रहा है। परन्तु एक वही हैं लाखन की बहू जो झूला नहीं झूल रही है क्योंकि उसके प्राण प्रिय विदेश गये हुए हैं।

आरे आरे हां तेल की फरिया मोरी फाटी ना,
ना छूटे हरद के दाग
हांत न मेहंदी मोरी छूटी ना,
कंथा मरन चले परदेस.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! अभी तो मेरी तेल वाली ओढ़नी फट नहीं पाई है। और ना ही उसके हल्दी के लगे हुए दाग ही छूट पाये हैं। हाथों में

रची हुई मेहंदी भी मेरी नहीं छूटी है और कंत हैं कि मरने के लिए परदेश जा रहे हैं।

ऐसे ही एक टीस मन को कचोट देती है। जब सैरे के ये भाव उभरकर सामने आते हैं कि किसी बुजुर्ग ने अपने बेटे को जिस आशा, आकांक्षा और विश्वास के साथ पाल-पोसकर बड़ा किया था कि वह उसके बुढ़ापे का सहारा बनेगा परन्तु वह तो ससुराल में जाकर बस गया-

आरे आरे हां धन खों बछिया पाली हती रे,
कऊं रन खों ढाल तरवार
बेटा बुढ़ापे खों पाले हतेहां,
गांडू जाय बसो ससरार.....हुक्क हुइया हा हा

बहिन-भाई की भावना का चित्रण इस सैरे में सजीव हुआ है। इसके तहत जीवन के सामाजिक धरातल पर कितना उसका महत्त्व आंका जाता। वह स्पष्ट हो जाता है।

आरे आरे हां खेरे बिहूनें, अरे रुखड़ों बिना हो,
बिन सारे ससरार
बैन बिहूनी अरे भैया बिना हो,
गलियों में बिसूरत जाय.....हुक्क हुइया हा हा

गाँव तो वृक्षों के बिना बीरान से लगते हैं। और बिना साले की ससुराल भी शोभा नहीं देती। बिना भाई के बहिन गलियों में रोती चली जाती है।

आरे आरे हां खेत बिहूने,
खेत बिहूने अरे रुखड़ा बिना रे
बिन सींगन की गाय
बैन तो बिहूनी अरे भैया बिना हो,
गलियों में बिसूरत जाय

खेत की मेड़ पर अगर वृक्ष न हो तो वह खेत उजड़ा हुआ सा लगता है। जैसे कि बिना सींग के गाय अच्छी नहीं लगती, वैसे ही बिना भाई के बहिन भी, रास्ते में रोती चली जाती है।

रस परिपाक की अनूठी मिशाल बुन्देली सैरे की अपनी

पहचान है। इसमें जहाँ शरीर सौष्ठव, श्रृंगार भाव और खेती-किसानी के बीच नारी की कर्तव्य निष्ठा, कर्मठता तथा कर्म की क्रियाशीलता का भाव शब्दों के माध्यम से लोक जीवन की छटा बिखेरता है, वहीं उसमें क्षेत्र विशेष की अपनी विशिष्टता और स्थानीय बोध का स्वरूप उजागर होता है-

आरे आरे हां उठी तौ बदरिया झुमकन लागी,
झुमकन बरस रअँ मेह
गूजर बिटिया अरे गोबर करै हां,
बाकी हेल चाव नइं लेय....हुक्क हुइया हा हा

बादल उठे और बरसने लगे। झमाझम बरसा वाले मेघ बरसने लगे हैं। गूजर की बेटी गोबर उठा रही है। पर उसके द्वारा टोकनी में इकट्ठा किया हुआ गोबर उससे उठ नहीं पा रहा है।

आरे आरे हां सीता की लरम हतुलियां रे,
कोमल अंग सरीर
बाड़ी बिसूरै अरे कारी डांग में हो,
सुरत भूले रघबीर.....हुक्क हुइया हा हा

श्रीसीता माता के हाथ मुलायम और पतलें हैं। कोमल उनका शरीर है। घनघोर घने जंगल में वह रो रहीं हैं। उनकी याद श्रीरघुवीर जी भूल गये हैं।

आरे आरे हां चंचल बहुरिया रे,
चंचल बहुरिया अरे हरवाये की
सींकन कजरा देय
हर के मारे बखर के
भोंदू सो गओ हां,
ओको कजरा लहरिया लेय....हुक्क हुइया हा हा

हरवाहे की औरत चुलबुली है वह सींक से काजल लगाती है। परन्तु उसका पति भोंदू हर-बखर चलाते-चलाते थक जाने के कारण सो गया है। पर उसका लगाया हुआ काजल लहरा रहा है।

आरे आरे हां कहाँ धरी माथे की बिंदिया,
कहां धरे हैं सिंगार

डबियन धरी माथे की बिंदिया हो,
बगसन धरे हैं सिंगार.... हुक्क हुइया हा हा

माथे के ऊपर लगाने वाली बेंदी कहाँ पर रखी हुई है और कहाँ पर उसके श्रृंगार दान रखे हुए हैं? डिब्बी के भीतर उसके माथे की बिंदिया रखी हुई है और बक्से के भीतर उसका श्रृंगारदान रखा हुआ है।

आरे आरे हां चंचल लुगइया अरे हरवाये की,
सींकन कजरा देय
मारे बखर के अरे भोंदू सो रअँ,
ऊको जीरा लहरियां लेय.....हुक्क हुइया हा हा

हरवाहे की चपल औरत सींक के द्वारा काजल लगा रही है। पर दिन भर के बखर चलाने वाले भोंदू तो सो गए हैं। उसका जी लहरा रहा है। उसका जी हिलोरें मार रहा है।

आरे आरे हां सास मोय लै दे बजन घुंघरिया रे,
लै दे हां अंगिया मोय
चुलिया लै दे रतन जड़ाव की हो,
जामें लिखे पपड़ा मोर.....हुक्क हुइया हा हा

अरे सासू जी! मुझे तुम बजने वाले और घुंघरियों वाले पाँव के जेवर ले दो और पहनने के लिए अंगिया भी ले दो। चोली तो रतन जड़ाव वाली लेना जिस पर पपीहा और मोर बने हुए हों।

आरे आरे हां ककरी तौ खइये रे,
ककरी तौ खइये अरे नुन चरचरी,
डंगरा सेत सुपेत
यारी तौ करिये उन छैल सें
जी के ओंठन नें आई रेख.....हुक्क हुइया हा हा

ककड़ी तो नमक लगी ही खाना चाहिए और डंगरा झक सफेद ही अच्छा मीठा होता है। दोस्ती तो उस छैल की अच्छी होती है जिसके ओठों के ऊपर अभी रेख नहीं जमी हो।

श्रृंगार और हास्य रस से सम्पृक्त सैरों की छटा भी कम निराली नहीं है। इसमें जहाँ हमें कबीरी धारा की छाप दिखती है

वहीं अटका, टहूका और सीधे-सादे जीवन का रस अपनी सहजता के साथ बहता दिखता है-

आरे आरे हां बांडी लुखरिया अरे कोदों दरै हां,
गावै राग मल्हार
दानों में एकऊ अरे बाहर गिरे रे,
ऐ ऊकी कुदई महोबे जाय.....हुक्क हुइया हा हा

पूँछ कटी हुई लखुरिया कोदों को दलती है। वह राग मल्हार को गा रही है। उसके हाथ से एक भी दाना बाहर नहीं गिर पा रहा है। उसकी कुदई महोबे जा रही है।

आरे आरे हां ढीमर घर लरका भये रे,
धरें मुड़ीसैं जार
मछरी रोई रे कऊं ताल में,
मोरे आ गये जी के काल.....हुक्क हुइया हा हा

सिरहाने रखे हुए जाल को ढीमर के घर लड़का पैदा हो गया है। यह सुनते ही किसी तालाब में मछली रोते हुए कहती है कि मेरे जी के लिए एक और काल आ गया है।

आरे आरे हां फूल अकौआ अरे फूलियों रे,
पीपर फूल न होंय
का तौ टटोबै डाडीजार के,
जोबन में हाड़ नैं होंय.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! आक में फूल फूलते हैं, पर पीपल में फूल नहीं होता है। अरे दाढ़ीजार! तू क्या टटोल रहा है, यौवन में हड्डी नहीं होती है।

आरे आरे हां गोरी के जुबना हुमकन लागे,
जैसे हिरनियां के सींग
मूरख जानें खता फुनगुनूँ रे,
बो तौ बांट लगावै नीम.....हुक्क हुइया हा हा

गोरी के स्तन उठने लगे हैं, जैसे हिरण को सींग निकलते हैं। मूर्ख समझता है कि कोई फोड़ा-फुन्सी हो गया है, अतः वह तो बांट कर नीम लगा रहा है।

आरे आरे हां चिंटी तौ बैठी अरे महुआ तरें हो,
नों खरिया भूसा खाय
सात समुद कौ अरै पानी पियै,
ये बातौ भूकइ भूंक चिल्लाय.....हुक्क हुइया हा हा

एक चींटी है जो महुए के वृक्ष के नीचे बैठी हुई है। वह नौ खरिया तो भूसा खा जाती है। सात समुद्र का पानी पी जाती है। फिर भी भूख-भूख चिल्लाती रहती है।

आरे आरे हां कारी बड़ैरी अरे लौहे की हो,
रूपे के लागे किवार
चारऊ चिरैयां अरे सोने कीं,
गढ़ लाये सुगर सुनार.....हुक्क हुइया हा हा

काले रंग वाली जो बड़ैरी है वह लोहे की है। चाँदी के दरवाजे लगे हुए हैं। और चार जो चिड़ियाँ बनीं हुई हैं, वे सोने की हैं। देखो, कितने सुघड़ सुनार गढ़ कर लाये हैं।

नारी का मन भी देखें, जो एक प्रकार का सजगता का पाठ पढ़ाती दिखती है और सचेत भी करती है-

आरे आरे हां जुनरी बाजरा पिया मोरे जिन बैओ,
को रखबरिया जाय
हम दुर जैहें अपने मायके,
तोरी सुआ बाल लै जाय....हुक्क हुइया हा हा

अरे प्रीतम प्यारे! तुम ज्वार-बाजरा नहीं बोना। उसकी रखवाली के लिए भला कौन जायेगा? मैं तो अपने मायके चली जाऊँगी और उसकी बालों को तोते ले उड़ेंगे।

आरे आरे हां गेंवडेंम जुनरिया अरे जिन बऔ,
को रखबरिया जाय
हम दुर जैहें मायके हां,
तोरे भुन्टा बरेदी खांय.....हुक्क हुइया हा हा

अरे! गाँव के नजदीक वाले खेत में ज्वार नहीं बोना, उसकी रखवाली के लिए कौन जायेगा? हम तो अपने मायके

चले जायेंगे और ज्वार के भुट्टे को बरेदी खा जायेंगे।

लोक जीवन में यह सरसता, सजगता और सचेतन भाव लोक को जीवनी शक्ति देता है। समय की कसौटी पर स्पष्ट रूप से अंग्रेजों की कारगुजारियों को सैरे में व्यक्त किया गया है।

आरे आरे हां ऐड़ी टेड़ी पगड़ी
आरे लरका जिन बांदियाँ,
आरे जिनइं बजारै जाव
राज बुरौ है रे अंगरेज कौ,
कऊं टंगे-टंगे मर जाव.....हुक्क हुइया हा हा

आरे लड़के! तुम तिरछी पगड़ी बांधकर नहीं निकलना और न ही बाजार को जाना। अंग्रेजों का यह राज बहुत ही बुरा है। कहीं भी तुम टंगे-टंगे मर जाओगे।

प्रश्नोत्तर शैली में भी सैरा गाया जाता है। इसके अंतर्गत सैरा तो पुरुष वर्ग ही गाता है पर वह पुरुष और नारी दोनों के मन की मनोदशा को कुछ इस तरह से उद्घाटित करता है-

आरे आरे हां सरग तरैयां आरे कौनें गिनीं,
कौनें मूँड़ के बार
बंसा की पत्तियां रे कौने गिनीं,
कौना हिलोरे ताल.....हुक्क हुइया हा हा

आसमान के तारे भला किसने गिने हैं और किसने सिर के बालों को गिना है। बाँस के पत्तों को कौन गिन पाया है। किसने तालाब को हिलोर लहरा दिया है। उत्तर है-

आरे आरे हां सरग तरैयां रे चंदा गिनीं,
ककई मूँड़ के बार
बंसा की पत्तियां भौरा गिनीं हां,
राजा राम हिलोर दये ताल.....हुक्क हुइया हा हा

आसमान की तरैयां तो चंद्रमा ने गिनी है। कंधी ने सिर के बालों को गिना है। भंवरे ने बाँस की पत्तियाँ गिनी है और राजा राम जी ने ताल को हिलोर दिया है।

आरे आरे हां बैठीं तो रइऔं आरे रानी सतखंडों हो,
खइऔं डबौ के पान
जब हम लोटें सिंहादेस सें,
तोर मुतियन भरैहों मांग.....हुक्क हुइया हा हा

आरे रानी! तुम तो सतखंडों पर बैठे रहना और मचले के पान खाना। जब हम सिंहलदेश से लौट आयेंगे तो तुम्हारी मोतियों से मांग भरा देंगे।

आरे आरे हां जर जा तौ बर जा रे,
जर जा तौ बर जा आरे तोरे सतखंडा हो,
पानों पै पर जा तुसार
तोरे अकेले आरे जीरा बिना रे,
मोय सूनों लगै संसार.....हुक्क हुइया हा हा

आरे! तुम्हारे ये सतखंडा तो जल जायें, उनमें आग लग जाये और पान के ऊपर तुषार पड़े। आरे! तुम्हारे अकेले बिना तो मुझे यह समूचा संसार सूना लगता है।

आरे आरे हां कै डर भागे रे आल्हा डर,
हां कै तौ ऊदल की हांक
भेद बता दे आरे जियरा के,
कैसें छोड़े उरई मैदान.....हुक्क हुइया हा हा

आरे! क्या आल्हा के डर के मारे भागे हो कि तुमने ऊदल की हांक सुनी है जिसके डर से भागे हो। अपने हृदय के भेद तो बताओ कि तुमने उरई के मैदान भला कैसे छोड़े हैं?

आरे आरे हां नें हम भागे आरे आल्हा डर,
आरे नें ऊदल की हांक
खरच बड़ा गये आरे जियरा के,
जैसे छोड़े उरई मैदान.....हुक्क हुइया हा हा

आरे! न तो हम आल्हा के डर से भागे हैं और न ही ऊदल की हांक से भागे हैं। हमारे तो जीरा के खर्च खत्म हो गये थे इसीलिये हमने उरई मैदान को छोड़ा है।

आरे आरे हां चांउर चकौटन मैंने धोकें धरे हैं,

घी में मोके कनक उर दार
घरियक बिलमों अरे मोरे राजा,
तुमरी धनियां तपै जेवनार.....हुक्क हुइया हा हा

चावलों को मैंने चकौटी में धोकर रखा है और घी में मोन
लगाकर आटा और दाल को रखा है। अरे प्रीतम प्यारे! जरा देर
के लिए तो ठहरो, तुम्हारी धना ज्योनार तैयार किये देती है।

आरे आरे हां चांडर चिरैयन खों चुनवा देओ,
बामनें देओ कनक घी दार
मोरौ पनवारौ अरे समर बीचां,
परसा ठांडो दुसमन आय.....हुक्क हुइया हा हा

चावलों को तो चिड़ियों को चुना देना और ब्राह्मण को
आटा-घी-दाल दे देना। मेरी थाली तो युद्ध के बीच में लगी है,
वहाँ पर परसा जो दुश्मन है वह खड़ा हुआ है।

आरे आरे हां बैठीं तो रइओ रे,
बैठीं तौ रइओ अरे रानी खतखंडों हां,
सुक में खइओ उबन भर पान
जीत जंग खों जब घर आहों,
तोरी मुतियन भराऊं मांग.....हुक्क हुइया हा हा

अरे रानी! तुम तो सतखण्डों में बैठे रहना और डब्बे भर-
भर के पान खाना। जब मैं जंग जीत कर घर लौटूंगा तो तुम्हारी
मोतियों से मांग भरा दूँगा।

इस तरह से सैरा अपनी चरम सीमा पर पहुँचता है और
उसमें एक उमंग और उत्साह समाया होता है। सैरे का घेरा एक
ही रहता है। गायन और उसमें साथ देने के लिए व्यक्ति बंटे हुए
रहते हैं। आधे एक ओर से गाते हैं और आधे या तो प्रश्न का उत्तर
गाकर देते हैं अथवा दूसरे सैरे को उठाते हैं। इस प्रकार यह क्रम
घंटों चलता रहता है। लोग बरसा ऋतु में पसीने से तर-बतर हो
जाते हैं। सैरे गायन की यह खासियत होती है कि इसको देखने
वाले के शरीर में भी रोमांच हो उठता है। उसके अंग फड़कने
लगते हैं। उसकी नसों में जोश भर जाता है। मन हिलोर मारने
लगता है। यह सैरा 'नृत्य प्रधान गीत' है। इसमें पुरुष ही भाग लेते

हैं। गिनती व्यक्ति की 10 से लेकर 20-25 तक हो जाती है।
पहनावा तो व्यक्तियों का सामान्य ही रहता है। वे परदनी पहने होते
हैं। उसे घुटनों के नीचे तक होने के कारण खूँटी में खोंस लिया
जाता है। जिससे कि उछलने, कूदने, घूमने, मुड़ने, बैठने या
झुकने में फंसे ना। कमर में गमछा बाँध लिया जाता है। मिरजई,
कतैया या बंडी शरीर के ऊपर होती है। नंगे पैर होते हैं। सैरा प्रायः
संध्या समय से शुरू हो जाता है, जो देर रात तक चलता रहता है।
सैरे में डंडों की आवाज ढोलक की थाप के स्वर से स्वर मिलाते
सुनाई पड़ती है। पैरों के आघात जमीन पर घेरे में चलने, घूमने
वालों के अनुकूल मिलकर नृत्य की मुद्रा के साथ पड़ते हैं। हाथों
का संचालन भी सधा हुआ होता है। अगर कहीं डड़ला जरा सा
चूका तो उसका वार असहनीय हो जाता है। सैरे में इसके बारे में
गाया भी जाता है कि-

आरे आरे हां सैरो तो सैरो रे,
सैरो तो सैरो अरे सब कोऊ कहे हां
सैरो भलौ नें होय
डड़ला जो चूकै अरे बैयां लागै
जेकी पीरा सही नें जाय....हुक्क हुइया हा हा

सैरा-सैरा तो सभी कहते हैं पर यह सैरा अच्छा नहीं होता।
अगर कहीं डड़ला चूक गया तो बांह पर सीधा लगता है, जिसकी
पीड़ा असहनीय हो जाती है। वह दर्द कोई सह नहीं पाता।

और इसीलिए सैरा खेलने वाले की पत्नी उससे कहती है
कि-

आरे आरे हां सैरों-सैरों रे,
सैरों-सैरों पिया ना रटौ रे,
कऊं सैरों भलौ नई होय
कम्मर लटकै उर सिर डोलै हां,
जाकी मार दुहैरी होय....हुक्क हुइया हा हा

अरे प्रीतम प्यारे! सैरा-सैरा की रटन अच्छी नहीं होती,
उसको रटते नहीं रहो। यह सैरा भला नहीं होता है। इसमें तो
कमर लचकती रहती है और सिर डोलता ही रहता है। इसकी
मार भी दोहरी होती है।

सैरे में डड़ला (डण्डा) एक विशेष प्रकार का ही प्रयोग में लाया जाता है। इसके बारे में कहा जाता है कि-

आरे आरे हां डड़ला काटन रे,
डड़ला काटन मोरे पिया गये हां,
उन लागो बड़ौ सौ झेल
खेर कुल्हाड़ी अरे मोंथल भई,
कऊं बीजौ मिलो नें बहेर....हुक्क हुइया हा हा

मेरे प्रीतम तो डड़ला काटने के लिए गये थे परन्तु उन्हें

बहुत देर लग गई। उनकी खैर वाली कुल्हाड़ी थी सो वह बोथरी हो गई, उन्हें शायद बहेरे का बीजा नहीं मिल पाया होगा या सार नहीं मिल पाया होगा। डड़ला प्रायः इन्हीं लकड़ियों से बनता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि बुन्देलखण्ड का यह सैरा लोकगीत सामाजिक, राष्ट्रीय और लौकिक मान्यताओं के बीच अपनी अमिट छाप छोड़ता है। उम्मीद है कि सैरे के माध्यम से बुन्देली लोक की सजगता, कर्मठता और रसिकता की बानगी लोक साहित्य के क्षेत्र में सार्थक पहचान को प्रस्तुत करने में सक्षम होगी।

मुंडियारी गीत

डॉ. हरिसिंह पाल

नृतत्वशास्त्रियों के मतानुसार मुंडा जाति प्रीटी ऑस्ट्रेलाइड परिवार की भारतीय शाखा है। इस वर्ग की जनजातियाँ भारत में सबसे अधिक हैं। आस्ट्रिक परिवार की जो भाषाएँ भारत की विभिन्न जनजातियों द्वारा बोली जाती हैं, वे सबकी सब मुंडा भाषाएँ कहलाती हैं। इन मुंडा भाषाओं का प्रचार भारत की आदि जातियों में बहुत पहले से था और इन्हीं जातियों से भारत में पाषाण युग की सभ्यता का निर्माण हुआ था। आजकल मुंडा प्रधानतः वर्तमान झारखंड राज्य के रांची प्रक्षेत्र में बसे हुए हैं। मुंडा जनजाति बहुत बहादुर, परिश्रमी और स्वतंत्र्य प्रेमी है। ये प्रकृति की मनोरम रंगस्थली में निवास करते हैं। रांची जिले के जिस अंचल में ये निवास करते हैं वह पहाड़ों और सघन वन क्षेत्र से घिरा हुआ है। इसी उन्मुक्त रंगीन और रसमय वातावरण में इनका जीवन व्यतीत होता है। हरियाली और फूलों से परिपूर्ण जंगल, कल-कल बहते झरने प्राणों में उन्माद भरने वाली हवाएँ और मधुर स्वरो से वातावरण को गुंजित करते पक्षियों का कलरव, यहाँ की स्थायी निधि है। कलाप्रियता और मस्ती के वरदान को पाकर मुंडा जनजाति अपने दुखों, अभावों को प्रखर धारा में बहाती और जीवन संघर्ष की भीषण ज्वाला में जलने से बचाती रही है। यह मस्ती वह घट है जिसने इनके दुःखों के पहाड़ से झुलसे मन को शीतलता प्रदान की है और अपने प्यार की थपकी से इनके थके मन को शान्ति की गोद में सुलाया है।

मुंडाओं की प्रकृत भावना सरलता, सौंदर्यप्रियता ने मिल-जुलकर उनके सारे जीवन को सुरुचिपूर्ण और कलापूर्ण बना दिया है। मुंडा जाति अपने साधन और सामर्थ्य की सीमा में जीवन को सुंदर से सुंदर बनाकर जीना पसंद करती है और पूरी तन्मयता के साथ जीवन का उपभोग करती है। उसकी संगीतप्रियता इसी सुरुचि और तन्मयता की स्वरचित अभिव्यक्ति है। मुंडा नारी जाति की स्वतंत्रता और पुरुष के साथ नृत्य स्वभावतः ही दोनों के मन के तारों की इंकृत कर देते हैं। इस अनुराग की विह्वल पुकार से मुंडा लोकगीत अनुरंजित है। आदिवासी जीवन की मस्ती और तन्मयता ने मुंडा लोगों के जीवन की प्रत्येक सांस को ही कविता बना दिया है। यहाँ तक कि बकरी चराने से लेकर पेड़ों से पत्ती तोड़ने तक सभी इनके गीतों के विषय है।

मुंडा लोकगीत, मौसम की ताल पर ही नृत्य करते हैं। सबके लय और ताल मौसम के अनुरूप बदलते हैं। सभी गीत अपने ही मौसम विशेष में गाए जाते हैं। एक मौसम का गीत दूसरे मौसम में गाया जाना वर्जित है और मुंडा इस नियम का पालन बड़ी कठोरता के साथ करते हैं। मौसम के अनुसार ही इन गीतों से संबंधित वाद्यों के ताल और नृत्य अलग-अलग हैं। मौसम के आधार पर प्रमुख मुंडा लोक गीत हैं- जदुर, गेना, अरि-जदुर, करमा, जरगा, जापी, जतरा और शादी। प्रायः प्रत्येक प्रकार का गीत किसी न किसी प्रमुख पर्व से सम्बन्धित होता है।

शादी गीत

मुंडाओं के शादी गीतों में, समस्त भारत में विवाह के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों की ही भाँति गालियाँ भरी हुई हैं। दो कुटुम्बों के मधुर मिलन के अवसर पर यह व्यंग्य विनोद मीठा ही प्रतीत होता है। लेकिन इन गीतों की संख्या बहुत कम है। कुछ गीत दूल्हा-दुल्हन के लिए आशीर्वाद रूप में हैं और कुछ सम्बन्धियों के स्वागत के प्रसंग के भी। दुलहिन की विदाई के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत है-

जल तना दिया जुल तनारे
संगिन रेगे दिया तुल तनारे
मसकल जना दिया मसकल जनारे
नुबः दिसुम रेगे दिया मसकल जनारे
नुब : जना ओड़ा दिया तमारे
गोड़ा ओड़ा: दुबर दिया एंडे: जनारे

दिया जल रहा है, दूर में ही दिया जल रहा है, दिया प्रकाशित हो गया। अंधकार के देश में दिया प्रकाशित हो गया। अब तुम्हारे घर (लड़की के बाप के घर का) दिया बुझ गया। गोहाल घर और द्वार का दिया बुझ गया। (लड़की घर में अंधकार फैलाकर सुदूर ससुराल में उजाला फैलाने चली गई।) एक और विवाह गीत की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

जमड़ा बितर रे इपिड़ पियड़ जुले तना-2
जुलत नाए, जुलत नाए रे जिलमिल
जकाम काए जुल तना-2
जमड़ा बितर रे फूल बिया रंगा साड़ी जुलतना-2

अर्थात् झमरा के नीचे जुगनू चमक रहा है- झिलमिल। झमरा के नीचे विवाह की फूलदार रंगीन साड़ी चमक रही है।

जतरा गीत

मुंडा परिक्षेत्र में प्रत्येक पर्व और आनन्द के अवसर पर नृत्य प्रेमियों के बहुत से गाँवों का जो सम्मेलन हुआ करता है उसे 'जतरा' कहते हैं। इन 'जतराओं' में ये बड़े उल्लास से स-दलबल के साथ जाते हैं। युवक-युवतियों के लिए ये जतरा महापर्व है। जतराओं के गीत रास्ते की थकान दूर करने के लिए और पैरों में उमंग भरने के लिए गाए जाते हैं। जतरा के लिए कभी-कभी नृत्य मंडलियाँ बाजे-गाजे के साथ जाती हैं और कभी-कभी बिना बाजे के ही उनके दल मुक्त रागों की लय पर नाचते हुए चलते हैं। जतरा के अवसर के लिए चाहे रास्ते में या मेले में मौसमी गीत ही अब प्रायः गाए जाने लगे हैं और जतरा गीत स्वतंत्र गीतों का स्थान लेने लगे हैं। एक जतरा गीत इस प्रकार है-

ने कुड़ि ओको तःतिया गुडुलु रुडुड मेन गया,
लेकोरे हो हो हो रे-2
न कुड़ि जतरा तिया गुडुलु रुडुड मेनअः गया
लेकोरे हो हो हो रे-2

अर्थात् यह स्त्री कहाँ चली गई, गोंदली कूटना अभी बाकी ही है। यह स्त्री तो जतरा चली गई, तभी यह गोंदली कूटना अभी बाकी है।

जापी गीत

यह मुंडा लोगों का शिकार गीत है। ये उन शिकार के आयोजनों में, जो होली और सरहुल पर्वों के उपलक्ष में होते हैं, गाए जाते हैं। इन जापी गीतों में प्रयाण की गतिशीलता, युद्ध की ललकार और शिकार करने की सफलता की उमंगें भरी हुई हैं। इनके वाद्य और नृत्य भी तदनुकूल ललकार की ध्वनियों से भरे होते हैं। इन गीतों में अपनी कला प्रियता को सम्मिलित करके मुंडाओं ने शिकार को भी उत्सव बना लिया है। जापी नृत्य, जोरदार चक्र के कारण घुड़दौड़ के समान जान पड़ते हैं। लगता है मानो स्वर द्रुतगामी कदमों का पीछा कर रहे हों। एक जापी गीत इस प्रकार है-

सेन्देरा कोड़ा को, कापी जिलब जिलबा भाई
कारेंगा कोड़ा की, सार सिजए-सोड़ोए भाई
ओको तेको सेनो तना, कापी जिलब जिलबा भाई
चिमय तेको बिरिदतान, सार सिजए सीडीए भाई
सेन्देरा तेको सेनो: तान, कापी जिलब जिलबा भाई
कारेंगा तोको विरदतान, सार सिजए सोड़ाए भाई

शिकारी लोग बलुआ चमका रहे हैं, घटवार शिकारी लोग
तीर सनसना रहे हैं। वे कहाँ जा रहे हैं? बलुआ चमकाने वाले,
तीर सनसनाने वाले शिकार को जा रहे हैं।

जरगा गीत

जरगा गीत कार्तिक से लेकर 'मागे' पर्व की सीमा तक
गाए जाते हैं। 'मागे' फसली पर्व है। यह खेती-बाड़ी के सारे काम
समाप्त हो जाने के बाद जब अनाज घर में आ जाता है और जब
मुंडा लोग काम-धाम से थोड़ी फुर्सत पा लेते हैं, तब यह पर्व
मनाया जाता है। मागे पर्व अन्न की प्रसन्नता में तृप्ति का पर्व है और
जरगा गीत अपने मौसम के अनुसार शान्त भावों के गीत है, उनके
लय, ताल और नृत्य में एक शान्ति और संतोष की भावना पायी
जाती है। यह पर्व मुंडा के जीवन की उमंगों का सुनहरा समय है।
एक जरगा गीत यह है-

नङ्गा नङ्गा नेयाड़, ओको होड़ो गोड़ तिङ्गुवा कना
नङ्गा नङ्गा अपांड, चिमय प्रजा गोड़े जपा: गा कना,
ले ली, ले ली मेन्दो गोड़े,
लसिया लक्ष्मी किड़ तिङ्गुवा कना,
चिनाई चिनाई मेन्दो गोड़ें, खेतिया कृषि किड़ जप:गा कना।
खड़ग तना रेयाड़ा तना,
लखिया लक्ष्मी किड़ ऐला बोलो बेन ॥
जेटे तना तयूर तना खेतिया कृषि किड़, नेला सोड़ो बेन ॥

अर्थात् हे माँ! देखो तो, कौन आदमी खड़ा है। हे पिता!
पहचानों तो कौन आदमी सटा हुआ है? देखने से मालूम होता है
लक्ष्मी खड़ी हैं, पहचानने से मालूम होता है कृषि की देवी खड़ी
हैं। जाड़ा पड़ रहा है, धूप पड़ रही है इसलिए लक्ष्मी खड़ी हैं।
धूल और गर्मी पड़ रही है इसलिए कृषि सटी है।

गेना गीत

ये नृत्य की सुविधा के लिए बनाए गए हैं। अक्सर दो
जदुर गीतों के बाद गेना गाया जाता है जो जदुर नृत्य के कठिन
अवरोह-आरोह के बाद नर्तक को थोड़ा आराम प्रदान करते हैं।
नृत्य की लहरों को लघुतर बनाने के लिए गेना गीतों की पंक्तियाँ
भी छोटी-छोटी रखी जाती हैं जैसे-

ओकारे तम: मई रासिका/चिमथ रे तम: मई चएला।
बाबा बा तम: मई रासिका/कसोम बा तम: मई चएला।

अर्थात् हे बेटी! तुम्हारी प्रसन्नता और श्रृंगार किस बात में
है? हे बेटी! आनन्द तो धान के फूलों में है। श्रृंगार तो कपास के
फूलों में है।

ओर-जदुर गीत

ये भी जदुर नृत्य के पूरक हैं इनके लय और छंद जदुर से
कुछ भिन्न होते हैं किन्तु गाने का समय, मौसम और उपयोग
बसंतोत्सव की तरह ही हैं।

हेस: सुता लेसे लेसे, अमे चि मङ्गा जप केन।
बडे सुवा लिखी जलं अमेंचि मङ्गा जप: केन।

पीपल की झिलमिल छाया में हे बालिके! क्या तुम्ही खड़ी
थी? बरगद की झिरमिर छांह में हे बालिके! क्या तुम्हीं खड़ी थीं?

करमा गीत

मुंडा समाज में जदुर के बाद सबसे प्रमुख स्थान करमा
गीतों का है जो भाव, लय और लोकप्रियता की दृष्टि से बहुत आगे
बढ़े हुए हैं। सरहुल पर्व की समाप्ति से ही करमा गीतों का प्रारम्भ
होता है। इन गीतों के क्रम नित्य बदलते रहने वाले वातावरण में
भी अपना रूप बदलता हुआ आश्विन के अंत तक चलता है।
भाद्रपद की एकादशी को करमा पर्व मनाया जाता है और उस पर्व
से भी सम्बन्धित बहुत से गीत हैं। एक पर्व गीत इस प्रकार है-

गुटुहातु सुसुन करम, निदा सिंगी दुमंड साड़ी
ओहोरी सांगी भाई, दोलंड संगी सुसुन अगुते

हीरा रेही वीर मेनाः, वीर रेदी कुला मेनाई,
ओ होरी सांगी भाई बुचा कापी गोओ वालड़ में
तरा तीरे खड़ा मनाः तरा तीरे ढाल मेना
ओ होरी संगी भाई हिजुः रेदो हेरो गोई या।

‘गुटुहात (स्थान का नाम) में नाच और करम हो रहा है रात-दिन मांदर बज रहा है। हे मित्र! चलो हम नाचने चलें मगर रास्ते में जंगल है और जंगल में बाघ है, इसलिए हे भाई! अपना बलुवा (हथियार) ले लो, हमारे हाथ में तलवार है। अगर बाघ आएगा तो हम उसे काट देंगे।’

करमा गीत अपने प्रकृत रूप में एकान्त संगीत है जो गर्मी में वन वृक्षों की शीतल छाया में, आषाढ़ की काली घटाओं में वर्षा के एकान्त खेतों में, भादों की सूनी राहों में समान रूप से गाए जाते हैं। एकान्त के क्षणों में उन्हीं क्षणों के लिए बने होने के कारण करमा गीतों का प्रभाव बड़ा गहरा होता है। सूनेपन की टेर अनेक स्वरों को ऊँचा उठाती है और दर्द उनमें कम्पन पैदा करता है। वन के किसी एकान्त में खुलकर गाए हुए करमा गीत प्रकृति के चरणों में पुरुष की चिरन्तन पुकार के समान जान पड़ते हैं। एक दार्शनिक पृष्ठभूमि का करमा गीत इस प्रकार है—

नोरो जोनोम बरसिड़ नांगिन लंदा जगुर हति प्रीति
ने जीतोन गातिड़; ने जीवोन का ही नमोगा।
कासा पीतल पोगः जानरे कासा पीतल बदला नमोगा,
ने जीवोन गातिड़; ने जीवोन का ही बदलाओ।
कुम्बर चाटु पोग जान रे, कुटुम्बर ताते का रुवाड़ा
ने जीवोन गातिड़; ने जीवाने का ही नमोगा।

अर्थात् मनुष्य जन्म दो दिन के लिए है इसलिए इसमें प्रेम के साथ हँस बोल लेना चाहिए। हे प्रिय! यह जीवन फिर नहीं मिलेगा। कांसा पीतल फूट जाने पर बदला जा सकता है लेकिन यह जीवन नहीं बदला जा सकता। कुम्हार का घड़ा फूट जाने पर, उसके पास लौट नहीं आता। उसी प्रकार हे प्रिय! यह जीवन लौट नहीं सकता।

करमा गीतों में कृष्णकाव्य और रामायण की भी बहुत सी कथाएँ गाई जाती हैं, ऐसे गीतों में पूर्णता है और भावों की

अभिव्यंजना अधिक मार्मिक और कलापूर्ण है।

जदुर गीत

मुंडा जनजाति का सबसे प्रमुख और प्राचीन गीत जदुर है जो बसंत गीत है। मुंडा लोगों का सबसे प्रमुख पर्व सरहुल है जो बसंतोत्सव है। इनके जीवन की चिर सहचरी प्रकृति जब अपना अभिन्न श्रृंगार करती है और जंगल में बसंत की छटा छा जाती है तब मुंडा स्त्री-पुरुष प्रकृति के स्वर में स्वर मिलाकर गा उठते हैं। इनके मस्ती भरे तन-मन पर छाया हुआ समस्त वातावरण ही महापर्व बन जाता है। सरहुल पर्व वन-देवता के प्रति इनके कृतज्ञ हृदय का विनम्र अभिनंदन है और इनके जदुर गीत प्रकृति की अर्चना में इनके विह्वल प्राणों का मधुर संकीर्तन है।

आदिवासी क्षेत्र में जब पलाश के फूलों और कुसुम की नई कोपली से सारा वन लाल हो जाता है और पूरा क्षेत्र नए पल्लवों और फूलों से भर जाता है तो उस मोहक वातावरण में मुंडा लोगों के होठों पर जदुर गीत थिरकने लगते हैं जैसे कोयल, बसंत के सरस वातावरण में रसीली हो जाती है उसी प्रकार बसंत में मुंडाओं के स्वरों में भी एक दर्द भरी मधुर टेर समा जाती है। उनका हृदय आकुल आमंत्रण से भाव-विभोर हो उठता है और वाणी करुण पुकार से भर जाती है।

बालेः बालेः रेलं सोंगती लेना
सींगोती गतीडेरेम बागे किड़ा
लिडुं लीडुं रेलं पिरोती लेना
पिरती संगइरेम राड़ा किड़ा
हिया तिड़ मोनिड़ा, सोगोती
चकातिड़े सना इआ, पिरती
हियातिड़ हियातिड़ ते जीराटी हायाद जना
चकातिड़ चकातिड़ वे कुडुम राटी ओड़े जना।

अर्थात् बचपन में ही हम दोनों की दोस्ती हुई और प्रेम हो गया, पर तुमने उस दोस्ती को तोड़ दिया। प्रेम को छोड़ दिया। मुझे बड़ा दुःख है। यह सोच-सोचकर मेरा हृदय सूख गया है चिन्ता करते-करते मेरी छाती टूक-टूक हो गई है।

माघ माह में मनाए जाने वाले ‘मागे’ पर्व के बाद जदुर का

मौसम (बसंत) शुरू हो जाता है और वृक्षों की नई कोपलों के साथ ही जदुर गीतों की कलियाँ भी फूटने लगती हैं। सरहुल पर्व मना लेने के बाद जदुर के भावमय गीत अगले वर्ष की प्रतीक्षा के लिए बंद कर दिए जाते हैं। जदुर गीतों की संख्या मुंडा लोकगीतों में सर्वाधिक है और मौसम के विस्तार भर में फैले होने पर भी इनका पर्व से अन्य सभी गीतों की अपेक्षा अधिक सम्बन्ध है।

पर्व आदिवासी के जीवन के कर्म कोलाहल में रसमय क्षणों का नाम है। आदिवासी बेचैन होकर पर्वों की प्रतीक्षा करते हैं और पर्व के आने पर अपने हृदय का सारा उमंग गीतों के रूप में उसमें उड़ेल देते हैं। मुंडा समाज बहुत भावुक है इसलिए इनके मन की प्रत्येक बात इनकी मस्ती को छूकर गीत बन जाती है। इन्होंने विषय का चुनाव करके तैयारी के साथ गीतों की रचना नहीं की है। इनकी अनुभूति के सारे विषय गीत बनकर ही इनके प्राणों में बसते हैं और फिर स्वर बनकर इनके कंठों से फूट पड़ते हैं।

मुंडा की सुकुमार अभिरुचियों ने उनकी कविता (लोकगीत) के लिए छंद, अलंकार, रस, ध्वनि आदि के ऐसे अलिखित

विधानों के संस्कार लोकमानस में बिठा दिए हैं जिनकी सहायता से गीतकार रस की सृष्टि करता है। गायक और श्रोता रस का आस्वादन करते हैं।

अन्य जातियों के सम्पर्क से दूसरी सारी बातों की तरह मुंडा गीत-शैली पर भी वाह्य प्रभाव पड़ा है। यँ तो रामकृष्ण-सम्बन्धी लोकगीत मुंडा भाषा में पहले से थे। किन्तु करमा गीतों (बसंतोत्सव के उपरांत ग्रीष्म और पावस ऋतु में गाए जाने वाले) में रामकृष्ण सम्बन्धी गीतों की प्रचुरता, चैतन्य महाप्रभु के उस प्रभाव से पाँच परगना (झारखण्ड का खूँटी प्रक्षेत्र पाँच परगना कहलाता है) की संस्कृति, भजन-कीर्तन आदि पर छाया हुआ है। कृष्ण सम्बन्धी गीतों में सांवले सलोने, घने घुंघराले बालों वाले मोर पंख खोंसे और बाँसुरी बजाने वाले कृष्ण की मनोरम छवि, गोचारण (वृन्दा) वन और गाड़ा (यमुना नदी) का किनारा राधा की प्रेम विह्वलता और करुण पुकार, ये दृश्य मुंडा समाज के लिए नये नहीं। आप इन जंगलों में जाकर देखें तो हजारों कृष्ण अपनी मधुर बाँसुरी से अमृत की वर्षा कर रहे हैं और हजारों राधाएँ उन विह्वल रागिनियों पर अपना तन-मन न्यौछावर कर नृत्य कर रही हैं।

अवधी लोक साहित्य में लोरी

डॉ. हरिप्रसाद दुबे

अवध की धरती की सांस्कृतिक पहचान उसकी लोक भाषा और बोली-बानी से है। लोक संस्कृति का दर्पण लोक साहित्य ही है। अवधी भाषा की अपनी एक लोकधुन, लोक संगीत, लोकनृत्य, लोक नाट्य और एक लोक जीवन है। यही सब कुछ उसकी अनूठी धरोहर है, उसकी अमूल्य पूँजी है।

अवधी लोकसाहित्य की मुख्य विधाओं में ग्राम्य कथा, ग्राम्य गीत, पहेलियाँ, बुझौवलि, ढकोसला (पटका), मंत्र, सूक्तियाँ, कहावतें, लोकगीतों में भरी पड़ी हैं। लोकजीवन में रचे-पगे लोकगीत स्वयं ही उपजते हैं। इनका मूल मंत्र जातीय संगीत में समाहित है। कालजयी लोकगीत सामान्य जन के कंठ से उभरकर पीढ़ी दर पीढ़ी संततियों के कंठ से कूकते हैं।

लोकगीतों की अभिव्यक्ति में नारियों की भूमिका रही है। जहाँ अनेक मांगलिक अवसरों पर वे एक साथ मिलकर संगीतबद्ध गीत गाती हैं, वहीं परिवार में जन्में छोटे बच्चों को बहलाने, सुलाने के लिए माताएँ, दादियाँ जिन गीतों को गाती आ रही हैं वे शिशु गीत, लोरी गीत के नाम से अवधी क्षेत्र में जाने जाते हैं। लोरी गीत शिशुओं के लिए गाये जाने की परम्परा है। बच्चे की इन्द्रियों का धीरे-धीरे विकास होता है। बच्चे की ध्वनि इन्द्रिय का सर्वप्रथम उत्कर्ष होता है। भूख लगने या शरीर का अंग दब जाने पर वह रोने लगता है। शिशु जैसे रोते हैं वैसे ही भूख शांत होने पर तृप्ति का अनुभव करता है और टिटकोरी देने पर हँसता मुसकराता है।

शिशु मधुर और कोमल ध्वनि से प्रसन्न होता है और कठोर ध्वनि से घबराता है। यहीं से बच्चे की कविता जन्म लेने लगती है। सर्वप्रथम माता या बच्चे की गोद में खिलाने वाले 'आ-आ' या 'ओ-ओ' की ध्वनि से बच्चे का मनोरंजन करते हैं। इसके बाद सार्थक ध्वनियाँ या लोरियाँ सुनायी जाती हैं। लोरियों में बच्चे की अपेक्षा माँ की कल्पना अधिक सक्रिय रहती है। वह ही लोरी सुनाती है।

बच्चे भूख लगने पर भोजन, आलस्य आने पर नींद चाहते हैं। वे कभी-कभी अचानक किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए अथवा अपनी भूख को शांत करने के लिए इतना रोने लगते हैं कि उनको चुप कराना माता के लिए एक समस्या बन जाती है।

माँ अपने वात्सल्य, ममत्व के आवेग एवं बाल स्वभाव की पारखी होने के कारण शिशु की इच्छाओं को तुरन्त पूरा करने का प्रयास करती है। एक ओर कविता बढ़ती जाती है- दूसरी ओर बच्चे। जब बच्चे भाषा को सार्थक रूप में समझने और बोलने लगते हैं यहीं से शिशुगीत की रचना आरम्भ हो जाती है। जो लोरी बन जाती है।

लोरी का अर्थ है- बच्चों को सुलाने के लिए स्त्रियों द्वारा गाया जाने वाला गीत। गीत सुनाने के साथ हिलाते रहना भी इसके अर्थ में सम्मिलित है। संस्कृत के लोल शब्द से लोरी की उत्पत्ति हुई है। यशोदा कृष्ण को लल्ला ही कहती हैं।

घर का अधिकांश कार्य स्त्रियाँ ही करती हैं। बच्चे माँ को छोड़ना नहीं चाहते। छुड़ाने पर रोते हैं तो चुप भी नहीं होते और जागते हैं सोते नहीं। माँ कुछ अनिवार्य काम करने को विवश रहती है। लोरी एक ऐसी विधा है जो बच्चों पर एक जादू का प्रभाव डालती है। बच्चे संगीत के साथ सोने लगते हैं। संगीत बच्चे पर छा जाता है। यही लोरी का परम आनन्द है।

लोरी के विविध रूप हैं। भोजन खिलाने के लिए, दूध पिलाने के लिए, रोते बच्चे को चुप कराने के लिए और बच्चे को सुलाने के लिए। अवधी अपने माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। अवध की संस्कृति भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। रोते हुए बच्चे को चुप कराना एक कठिन कार्य है। वह संगीत भी सुनने को तैयार नहीं होता है और माँ के लिए तो उसे चुप करना एक चुनौती सा लगता है। अतः शरीर के स्पर्श से उसे चुप कराने को लोरी गायी जाती है।

यह लोरी गाकर बच्चे की हथेली पर माँ अपनी हथेली रखकर बार-बार थपथपाती है। और लोरी का अन्त होते ही उसकी बाँह को गुदगुदाते हुए काँख तक हाथ ले जाती है। इस गुदगुदी से बच्चे हँसने लगते हैं। बार-बार करने पर वह खेल के

मूड में होकर रोना भूल जाता है। यह लोरी इस प्रकार गायी जाती है-

अट्टा पट्टा नव दस बेटा
गोला बरधा सनिया खाइस
पनिया पीइस
कहाँ गा ई गा, ईगा
गुदी गुदी गुदी गुदी।

जब बच्चा अपनी माँ को घर में अपने सामने नहीं देखता, तो वह रोने लगता है। इस समय यह लोरी गाकर उसे बहलाया जाता है- 'चुप रहु चुप रहु भइया। तोहार माई बाबू गा अहँ शिकार खेलँ। संझा कै देखि लिहा अँगना माँ।'

इस लोरी गीत से रोता हुआ बच्चा चुप तो हो गया परन्तु फिर भी उसे दूध पिलाना, भोजन कराना असंभव रहता है। भूख लगने पर तो वह रोकर खाना दूध माँग लेता है किन्तु जब भूख कम हो या न हो और माँ चाहती है कि बच्चे को खिला-पिलाकर ही स्वयं भोजन करे जिससे बच्चा विश्राम करने लगे तब उसको कैसे दूध पिलाया या खाना खिलाया जाय।

माँ कटोरे में दूध और सूती लेकर गीत गाती है। अपने दोनों पैर सामने फैलाकर बच्चे को लिटाकर ऊपर मुँह करके एक-एक घूँट दूध पिलाती है। इस प्रकार लोरी गाकर पूरा दूध पिला देती है। वह लोरी माँ गाती है-

चन्ना मामा अरे आवा परे आवा
नदिया किनारे आवा
सोने की कटोरिया माँ
दूध भात लेहे आवा
भइया के मुँहा माँ घुटूक

लोरी लोक साहित्य में अधिक ईमानदारी और सच्चाई होती है। यश, लोभ और आलोचना की चिन्ता से दूर मुग्धभाव में डूबकर वाणी से लोक साहित्य का भण्डार भरा जाता है। पूर्वजों से थाती को सुरक्षित करके विरासत में अगली पीढ़ी को अनवरत हस्तान्तरित करने की परम्परा है। मानवीय सम्बन्धों की कड़ी है।

लोक मंगल ही लोक साहित्य की दृष्टि है। इसी में जीवन की सार्थकता भी है। इसमें मानवीय भावों की सही पहचान होती है। हर युग में लोक साहित्य ने लोकमानस का संस्कार किया है। यह हमारे जीवन के छन्द के साथ मेल खाता है। अवधी का लोरी लोक साहित्य जीवन के लिए है और जीवन से ओतप्रोत है।

दूध-भात खिलाने की इच्छा माँ बच्चे में जाग्रत करती है। चन्दा मामा द्वारा भेजा गया दूध-भात शिशु कल्पना में रुचिकर लगता है। चन्दा मामा के प्रति बच्चों में जन्मजात आकर्षण होता है। वे उसको निहारकर आत्म विभोर होते हैं। बालकृष्ण तो चन्दा मामा को पाने के लिए बार-बार अपना हाथ उठाकर यशोदा माँ से उसे ले आने का आग्रह करते हैं।

महान खगोलशास्त्री गैलेलियो ने अपने संस्मरण में लिखा है कि उसकी माँ ने लोरिया गा-गाकर चन्दा मामा के प्रति जिज्ञासा पैदाकर प्रसिद्ध खगोलशास्त्री बनाने में सहयोग किया।

बच्चों को पैर पर बैठाकर झुलाते समय एक लोरी गीत की परम्परा है-

धन्ता मन्ता लेई थै। एक कौड़िया पाई थै।
 ऊ कौड़ी हम गंगा माँ बहायन
 गंगा माई बालू दिहीं
 उ बलउइया भड़भुजवा का दिहन
 भड़भुजवा हमका दाना दिहिस
 ऊ दनवा हम घसिहरवा का दिहन
 घसिहरवा हमका घास दिहिस
 ऊ घसिया हम गइया क दहिन
 राजा हमका घोड़ा दिहिन आईथै
 गइया हमका दूध दिहिस
 ऊ दुधवा हम राजा का दहिन
 घोड़े चढ़े आईथै
 घोड़े चढ़े आईथै
 दूध बतासा खाईथै।
 बूढ़ी माई आपन
 हाड़ी, कूड़ी बचाये रहिउ
 हमार भइया/बहिनी

जात अहें तोड़ ताड़ कै चला अइहें
 पुलू लुलू पुलू लुलू।

लोक जीवन में निरन्तर परिवर्तन रेखांकित किया जाता है। अलग-अलग समय पर माँ लोरी सुनाती रहती है- माँ की कल्पना कितनी सुन्दर है-

चन्दा माई, धाय आवा धपाय आवा
 घिउ कै लोना लेहे आवा
 भइया के मुँहा माँ घुटूक।

लोरी की परम्परा में ही एक लोरी गीत इस प्रकार है-

ओका बोका तीन तलोका
 लइया लाठी चन्नन काठी

लोरी में दूध, खाना, पीना, गाना, बजाना, हँसना और खेलना भी सम्मिलित है। इसमें माँ की मानसिकता ज्ञात होती है। वह अपने बच्चे को हर विधा से परिचित कराना चाहती है।

वात्सल्य रस सम्राट सूरदास ने भी अपने वर्णन में माँ यशोदा द्वारा लोरी गाकर कृष्ण को सुलाने का जीवन्त चित्रण किया है

जसोदा हरि पालने झुलावै।
 हलरावै, मल्हराई दुलराई दुलरावै जोइ सोइ कछु गावै।
 मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आन सुआवै॥
 कबहुँ पलक हरि मूँद लेत हैं, कबहुँ अधर फरकावै॥

सूरदास ने अपने बालकाव्य के माध्यम से कृष्ण लीला को लोक मानस की थाती बना दिया। इसी बालचित्रण ने कवि को ऊँचाई दी।

अवधी के लोक साहित्य में लोरी का सांस्कृतिक चिन्तन भरा है। इनसे बच्चे संस्कार पाते हैं। भौतिकवादी, भाग दौड़ के इस युग में जैसे हम बच्चों का पालन कर रहे हैं उसी के अनुसार उनके जीवन का निर्माण हो रहा है।

लोरी गीत बच्चों के लिए मात्र मनोरंजन ही नहीं है वे

जीवन मूल्य के स्रोत भी हैं। शिशु के चारों ओर फैले सौन्दर्य का ज्ञान यही लोरी कराती है। शिशु गीतों में लयात्मकता और संगीतात्मकता दोनों तत्त्व दिखाई देते हैं।

इनकी भाषा अत्यन्त सरल रहती है। लोक परम्परा में ये अधिक हैं। कंठस्थ किये गये ये लोरी गीत एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में बढ़ते हैं। इनकी विशेषता है ये अलिखित ही विद्यमान है।

माँ अपने बच्चे को पास में सुलाने का प्रयास थपकी दे-दे कर लोरी गाने के साथ करती है। बच्चे की आँखों में नींद आकर बसने लगती है जिससे बच्चा सो जाता है।

नींद बुलाने की लोरी माँ के मधुर स्वर में संगीतमय लगती है, वह लोरी इस प्रकार है-

*आव रे निन्दिया निनर वन से।
भइया आये ननियउरे से॥*

जन-जन की भावनाओं में व्याप्त लोरी की लोकप्रियता वैदिक मंत्र की ऋचाओं की भाँति है। नीरस जीवन को सरस बनाने में यह समर्थ है।

लोरी गीत सार्वकालिक, सार्वभौम और सर्वव्यापक सत्ता से परिपूर्ण हैं। आनन्द की आकांक्षा से पोषित ये गीत कंठहार बनकर अनपढ़ माताओं द्वारा गाया जाता है।

आज अपसंस्कृति के प्रसार के कारण हमें सामाजिक विकृतियों से भावी पीढ़ी को बचाने की आवश्यकता है। इसका संकल्प इसी लोक साहित्य में है। विपत्ति में सहनशीलता का गुण और विपत्ति देने वाले के प्रति भी विद्वेष न रखकर उसके कल्याण की कामना करना वाचिक साहित्य का गुण धर्म है, जो आज अहिंसा का ही मार्ग है।

जो सबके मंगल के पीछे अपने मंगल की बात सोचता है, वही साहित्य है। जो मंगलगीत गाने वाले और सुनने वाले सभी के लिए सुख की कामना करता है। वाचिक परम्परा का यह लोरी साहित्य सदा लोक मंगल का आकांक्षी रहा है।

लोक साहित्य में बड़ी तेजस्विता है। लोकमन पोथी से बंधा नहीं रहता। वह अनुभव की आँख से देखकर राह बनाने के प्रयास में रहता है। बच्चों के गीतों में एक यह भी है-

हाथी घोड़ा पालकी/जय कन्हैया लाल की।

लोरी में सदैव शाश्वत जीवन मूल्यों की चिन्ता रही है। इसकी एक आकांक्षा सत्य को बड़ा मूल्य मानती है।

बिना किसी भेदभाव के सभी के लिए लोक ने लोरी लिखी-

*गुड़िया रानी सो जा तू
चुन्ने मुन्नों को लेके बहियाँ
चिरई सोने जाती
बड़े प्यार से उनको छाती से चिपटातीं
और सब सोय गये
पिंजरे की चुनमुनिया
सो जा, सो जा
गुड़ियारानी आज मेरी कनिया।*

कुछ लोरी गीत बच्चों को प्रसन्न कर देते हैं। हँसते समय बच्चों की तैतालिस मांसपेशियाँ सक्रिय हो जाती हैं जिनसे आवश्यक हारमोन्स बनते हैं। रोने में मात्र उन्नीस मांसपेशिया ही क्रियाशील होती हैं। इसलिए हँसने वाले स्वाभिमानी और स्वस्थ होते हैं। एक लोरी गीत इसी प्रकार है।

*अकड़ बकड़ बम्बे बोल
अस्सी नब्बे पूरे सौ
सौ में लागे धागा
चोर निकल के भागा*

लोरी गीत में दादा-दादी के साथ-साथ बच्चों के नाना-नानी का भी उल्लेख आता है

*आनी आवै पानी आवै
धीरे धीरे नानी आवै
नानी हाथे लेहे बतासा।*

भइया केतना अहें पियासा ।

अवधी लोक साहित्य में सन्तान सुन्दर होने की कामना
की गयी है-

पुतवा त चाही नरियर यस, धियवा हरदी यस ।
बँसवा की नइया तुम बाढ़ौ मेरे ललना,

दुबिया यस छइलाव हमेसा
सरिया म बाढ़ें गइया भइसिया
कोठवा पधान पुरान हमेसा
ऐसे मगन दिन रहै हमेसा ।

अवधी लोक साहित्य में लोरी के संरक्षण की आवश्यकता
है ।

संत सिंगाजी के पद

अनिता राजपूत

भारतीय साहित्य और समाज में संतों का स्थान हमेशा से सम्मानीय रहा है। संतों ने मनुष्य की मुक्ति और समाज की उन्नति के लिए सक्रिय रूप से कार्य किया, जिस समय भारत में सामाजिक विखंडन जैसी महामारी फैली हुई थी, उन विषम परिस्थितियों में संतों की जीवन परक बानियों ने संजीवनी का काम किया। यह संजीवनी निमाड़ और भुआणा अंचल में अद्वैतवाद और निर्गुण परम्परा के प्रवर्तक आदि गुरु शंकराचार्य और मंडन मिश्र से प्रारंभ होकर ब्रह्मगिर, मनरंगगिर, संत शिरोमणि सिंगाजी, रंकनाथ, रामजी बाबा, आत्माराम बाबा, संत अफजल, संत हरिदास जैसे अनन्य साधकों के सत्कार्यों और उपदेशों से निराकार ब्रह्म, नाम-स्मरण, प्रेम, शील, क्षमा आदि कई तत्त्वों को अपने उपदेशों में स्थान ही नहीं दिया अपितु आडम्बरों पर गहरे प्रहार भी किये।

निमाड़ और भुआणा अंचल में अनेक महान संत हुए जिन्होंने अपने उपदेशात्मक भजनों से सोई हुई जनता में चेतना जागृत करने का शुभ कार्य किया है। लेकिन इन संतों में संत सिंगाजी का अपना अलग ही स्थान है। लोकमान्यता है कि संत सिंगाजी श्रृंगी ऋषि के अवतार हैं। जिस समय मध्यकाल में सम्पूर्ण भारत में भक्ति की अविरोध धारा प्रवाहित हो रही थी, उस समय निमाड़ अंचल में सिंगाजी निर्गुणिया पद गाकर उन्हें ईश्वर प्राप्ति का सरल व सीधा माध्यम बता रहे थे।

डॉ. कृष्णलाल 'हंस' सिंगाजी का जन्म वि.सं. 1574 बताते हैं। डॉ. श्रीराम परिहार के अनुसार सिंगाजी का जन्म कबीर की मृत्यु के एक वर्ष बाद हुआ। कबीर का जन्म संवत् 1456 और मृत्यु संवत् 1575 मानी गई है। सिंगाजी का जन्म संवत् 1576 और मृत्यु संवत् 1616 में हुई।

श्री रमाशंकर गंगराडे, श्री रामनारायण उपाध्याय के अनुसार सिंगाजी का जन्म संवत् 1576 में मिति वैशाख सुदी ग्यारस गुरुवार

को पुष्य नक्षत्र में प्रातः 8 बजे खजूरी ग्राम में हुआ था। इनके पिता का नाम भीमा जी तथा माता का नाम गऊराबाई था। इनकी पत्नी का नाम जसोदा बाई और इनके चार पुत्र कालू, भोलू, सद्दू, दीपू थे। आर्थिक समस्या के कारण इनके पिता खजूरी छोड़कर हरसूद में आकर बस गए। सिंगाजी भामगढ़ के राजा लखमेशिंह के यहाँ हरसूद से भामगढ़ चिट्ठी लाने-ले जाने का कार्य एक रूपये माहवर पर करने लगे।

संत सिंगाजी बचपन से ही सांसारिक प्रपंचों, पाखंडों से दूर भागते थे उनके निर्मल, कोमल, हृदय में ईश्वर के प्रति अगाध प्रेम था और इसी कारण ब्रह्मगिर बाबा के पद को मनरंगगिर बाबा के मुखारविंद से सुनकर वे युग-युगान्तर के महान् संत बन गए। जिस भजन को सुनकर एक साधारण सा गवली महान् संत बन गया था, वे पंक्तियाँ हैं-

*समझी लेओ रे मनाभाई, अंत ना होय कोई आपणां।
आप निरंजन निरगुणा सगुण तट ठाढ़ा
यही रे माया के फंद में नर आण भुलाणा*

इस भजन को सुनकर वे वैराग्य भाव से भर गए और मनरंगगिर बाबा से दीक्षा ग्रहण कर ली। सिंगाजी ने कई निर्गुणी पदों की रचना की है लेकिन कितने पदों की रचना की है इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। वाचिक परम्परा के कारण उनके समस्त पद उपलब्ध नहीं हैं। श्री रामनारायण सिंगाजी के पदों की संख्या 1100 बताते हैं। कुछ भक्तगण इनके पदों की संख्या 800 बताते हैं। डॉ. श्रीराम परिहार को वयोवृद्ध गायक मंडलियों के माध्यम से 108 भजन प्राप्त हुए जो 'कहे जन सिंगा' में संकलित हैं। सिंगाजी के आध्यात्मिक पदों की संख्या 1100 से अधिक भी हो सकती है। सिंगाजी ने ग्यारह सौ पदों की रचना करके निमाड़ी लोक साहित्य को अमूल्य निधि प्रदान की है। सिंगाजी ने आमजन की भावना को समझा और पदों की रचना की और वह भी ठेठ निमाड़ी में। इससे वे जनता के मानस पटल पर छा गये। इसी कारण आज भी उनको निमाड़ का जन-जन श्रद्धा भाव से स्मरण करता है। वास्तव में वे जन कवि थे। इतने वर्षों के बाद आज भी उनके पद जनता का कंठहार बने हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सिंगाजी के भजन के बिना निमाड़ी भक्ति धारा ही अधूरी है।

जनसाधारण के लिए सिंगाजी एक महान् संत के साथ-साथ एक अलौकिक व्यक्तित्व भी हैं। इसी कारण लोग सिंगाजी की मनौती आज भी करते हैं। सिंगाजी कितने महान् और जनता के कितने श्रद्धेय संत हैं, इसका पता तो इस बात से चलता है कि एक गाँव का नाम उनके नाम पर 'सिंगाजी' रख दिया। जहाँ शरद पूर्णिमा पर एक महीने का मेला लगता है। सिंगाजी का अपना एक अलग ही महत्त्व है। निर्गुण काव्यधारा में संत सिंगाजी का अद्वितीय स्थान है। सिंगाजी ने भी कबीर के समान कागज व कलम को स्पर्श नहीं किया था।

संकलित पद मैंने वयोवृद्ध गायकों से एकत्रित किए हैं। इन पदों को इसके पूर्व प्रकाशन जगत में स्थान नहीं मिला है। मेरा ध्येय भी संत सिंगाजी के साहित्य को दस्तावेजीकृत करने का रहा है-

*जिस दिन याद करोगा उस दिन बहुत झुरोगा रे ॥ टेक ॥
रूखे सूखे भोजन करना, जहाँ तहाँ पड़े रहना रे।
कोई भली कहे कोई बुरी कहे क्या दलगिरि लाना ॥ 1 ॥
काल पड़े विकराल जगत में, ऐसी चबेनी चाबे रे।
भूख लगे जब चाब जाएगा, ककड़ी सरीखा कच्चा रे ॥ 2 ॥
अगम जाना पश्चिम जाना, पूरब की सुध लाना रे।
तनक जनकपुर और रामेश्वर, गंगा सागर नहाना रे ॥ 3 ॥
साधु संत के अधीन रहना, हाय कभी ना करना रे।
कह जन सिंगाजी सुनो भाई साधु जम का धक्का ॥ 4 ॥*

हे मनुष्य! तूने मान-सम्मान प्राप्त करने में ही अपना जन्म खो दिया। जिस दिन प्राण इस शरीर से निकलने लगेंगे, उस दिन तुम परमात्मा को प्राप्त करने के लिए बहुत तड़पोगे। इस जीवन को मान-सम्मान प्राप्त करने की भावना से दूर रख रूखा-सूखा भोजन कर, जहाँ भी तुझे जगह मिले वहाँ पड़ा रह। तुझे कोई भला कहे या बुरा कहे। इन दोनों को एक समान समझना। सहनशील बनकर इन्हें स्वीकार करना। जीवन-मरण का चक्र तो चौबीस घण्टे चलता रहता है। इसे कोई रोक नहीं सकता है। काल के समक्ष किसी की नहीं चली है, जब भी काल को भूख-सतायेगी वह ककड़ी के समान तुझे कच्चा चबा जायेगा। चारों दिशाओं, चारों तीर्थों, चारों कोनों में चले जाओ तब भी तुम्हारे

अन्दर जो मैल है, वह नहीं धुल सकता। वह तो ज्ञान रूपी गंगा में स्नान करने से ही धोया जा सकता है। साधु संतों के साथ रहना, हाथ कभी भी मत करना, अर्थात् आराम से रहना। सिंगाजी कहते हैं कि जो नर सांसारिक विषय में लिप्त रहता है, वही काल के अर्थात् जीवन मरण के धके खाता है। काल के धके खाने से बचने का एकमात्र माध्यम निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करना है। इससे ही तेरा जीवन सफल हो सकता है।

आप ही धरम धारी मोरे साहेब,
 आप ही खेल खिलाड़ी साहेब ॥ टेक ॥
 तम्बू तो आसमानी कहिए, जमी दुलिचा भारी।
 चंदा सूरज दो लगी मसालें,
 कुदरत की गत न्यारी साहेब ॥ 1 ॥
 जग संसारी यो बाग लगायो, लख चौरासी क्यारी
 एक बूँद की सृष्टि रची है,
 ऊपजे नर अरू नारी साहेब ॥ 2 ॥
 पंचतत्त्व की चौसर मांडी, तुम पासा हम सारी।
 पासा चाहे वाहे जितावे, सारी कोन विचारी रे साहेब ॥ 3 ॥
 छक्का पंजा की नरद बचावे, बीजू कंठ न करारी।
 जो वो सार पक्की घर आवे,
 वो हि चतुर खिलाड़ी रे साहेब ॥ 4 ॥
 सूरत सुहागन भई मतवाली, ठाड़ी रूप निहारी।
 अनहद ऊपर भई है गरजना,
 सोहम की असवारी रे साहेब ॥ 5 ॥
 सांचे साहेब जिनके सिर पर, उनका जगत भिकारी ॥
 कहे जन सिंगा सुनो भाई साधु,
 हरदम जीत हमारी रे साहेब ॥ 6 ॥

हे ईश्वर! आप ही धर्म को धारण करने वाले हो। यह सृष्टि आप ही की लीला है। इस सृष्टि का खेल आपने ही खेला है। आप ही इसके खिलाड़ी हैं। इस सृष्टि में आसमान रूपी तम्बू कहिए या धरती रूपी गलीचा, यह आप ही ने रचा है। चाँद और सूरज रूपी दो मशालें आपने ही रोशन की हैं। सृष्टि की यह लीला अपरम्पार है। आपने संसार रूपी बाग लगा दिया है, जिसमें चौरासी लाख योनियाँ बना दी हैं। यह सृष्टि एक बूँद की है। जिससे नर और नारी उत्पन्न हुए हैं। आपने पंचतत्त्व रूपी चौसर बनाई है।

जिसके 'पासे' आप हैं और हम तो केवल 'सार' है, इस चौसर के खेल में छके-पंजे चल रहे हैं। प्राणी इसमें उलझा है किन्तु 'सार' रूपी मनुष्य जो पूरे खेल में कठिन परीक्षाओं से, चुनौतियों से पार पाकर अपने घर अर्थात् अन्तिम लक्ष्य को जरूर पहुँचता है, वही सच्चा खिलाड़ी होता है। 'सूरत' रूपी सुहागन बहुत मतवाली है जो खड़ी रूप निहार रही है। ऊपर अनहद नाद की गर्जना हो रही है। जिस पर 'सोहम' ने सवारी गाठी है। जिसके सिर पर सच्चे साहब का हाथ है उनका जगत भिखारी है। संत सिंगाजी कह रहे हैं कि इस मार्ग पर चलने से जीत हमारी होगी।

पंखेरू का सुअला रे, बन्दो रे म्हारा उड़ी हो गया।
 तोहे उड़ तन लागी रे वार ॥ टेक ॥
 रखा लाल चोंच तो रे, हरी रे थारी पाखुंडी
 तू जाई बैठयो आमूलारी डाल, पंखेरू का सुअला रे ॥ 1 ॥
 रतन को पिंजरो रे, जतान करी राखतो
 असो लेतो कंठ लगाय, पंखेरू का सुअला रे ॥ 2 ॥
 असो तो मन में रे, बन्दो रे म्हारा में जानतो।
 असो कर लेतो दो दो बात, पंखेरू का सुअला रे ॥ 3 ॥
 मनरंग स्वामी तो रे, बन्दो रे, म्हारा यो कहता गया।
 असा सिंगाजी अमरापुर जाय, पंखेरू का सुअला रे ॥ 4 ॥

प्राण रूपी पक्षी उड़ गया है, अब तुम्हारी उड़ने की बारी है। एक समय था कि शरीर में लाल चोंच और हरे-हरे पंख थे। अर्थात् शरीर में प्राण थे। प्राण रूपी यह पक्षी उड़कर दूसरी डाल पर बैठ गया। अर्थात् मनुष्य एक पंखी के समान है जो माया मोह रूपी रत्न जड़ित पिंजरे में बंद रहता है। और सारी चीजों को गले लगाकर रखता है। भक्त कहता है कि यदि मैं इस वास्तविकता को जानता तो दो घड़ी दो अच्छे काम कर लेता। मेरे गुरु मनरंगगिर स्वामी ने मुझे यह उपदेश दिया था कि जिस तरह पंखी उड़ जाता है, वैसे ही 'सिंगाजी' मनुष्य भी स्वर्ग चला जाता है।

काया नहीं रे सुहानी भजन बिना काया नहीं रे सुहानी।
 जैसे लोन बिन दाल अलोनी ॥ टेक ॥
 हाड़ मांस को बन्यो है पिंजरो ऊपर चाम लपेटी।
 हाथ पांव मुख मस्तक लाई नऽ पायो उत्तम निशाणी ॥ 1 ॥
 गर्भावास में भक्ति कबूली, बाहर आयो प्राणी।

तू कहाँ मैं कहाँ रोवन लाग्यो, सोयो ते भूमि सिराणी ॥ 2 ॥
 भाई बन्धु मिल कुटुम्ब कबीलो, जुड़ बैट्या सब नाती ।
 राम नाम की गत नहीं जानी,
 घर में बैट्या सेठ सेठानी ॥ 3 ॥
 कहे जन सिंगा सुनो भाई साधु, यो पद है निरबानी ।
 यो पद की कोई करो खोजना,
 नहीं तो काल करेगो चबेनी ॥ 4 ॥

भजन के बिना यह शरीर सुहावना नहीं लगता। जिस प्रकार नमक के बिना दाल में कोई स्वाद नहीं रहता। हाड़-मांस से बने इस पिंजरे पर चमड़ी लपेट दी गई है। हाथ, पैर, मुख, मस्तिष्क लेकर तूने उत्तम निशानी पाई है, गर्भ में जब तक रहा तब तक खूब आराधना की। प्राणी जब तू बाहर आया तो सब कुछ भूल गया। तू कहाँ और मैं कहाँ यह सोचकर तू रोने लगा। जब तू सोया तो भूमि तेरी तकिया बनी। भाई-बन्धुओं से मिलकर कुटुम्ब-कबीला बनाया, सभी रिश्ते जुड़ बैठे। नातों-रिश्तों में तू 'राम नाम' को भूल गया। इसकी महिमा को भूल गया। तेरे अन्दर तो सांसारिक विषय रूपी सेठ-सेठानी बैठे थे। सिंगाजी कहते हैं कि यह पद तो निरबानी है। अर्थात् जिसका महत्त्व वाणी के द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। इस पद के महत्त्व को नहीं समझा तो काल तुझे चबा जाएगा। अपने अन्दर विद्यमान उस परमात्मा को खोज ले। जिससे तेरा जीवन सफल हो जाएगा।

खेली लऽ दुल्हन बाई खेल लऽ, बाई थारो राज ।
 भवर खेलन मत जाइयो, आगऽ जम की वास ॥ टेक ॥
 सतगुरु लगन लिखाईयाँ, गया पूरब देश ।
 ना ऊगे ना आधवे, ऐसा अपरम देश ॥ 1 ॥
 सतगुरु आवन वे चल्या, सत् सुकत् साथ ।
 पांच पच्चीस बरातियाँ, दुल्हो बन्यो निरबाण ॥ 2 ॥
 छोटी कलश छोटी डांडिया, छोटी है रे आकार ।
 डोलाई उतारी चम्पा बाग में, मांडो दसवाँ द्वार ॥ 3 ॥
 प्रेम का पलंग बिछाईयाँ, पिया करो विश्राम ।
 मन मऽ बसी रानी दुल्हन, लज्जा राखो भगवान ॥ 4 ॥
 उलझो सुत जनम को, सतगुरु सुलझावे ।
 सतगुरु के परताप से, सिंगाजी पद गावै ॥ 5 ॥

आत्मा शरीर से कह रही है कि अब तुझे जितना भोग

विलास करना है भोग ले, तू दुल्हन की तरह खूब खेलकूद ले, पर एक बात ध्यान रख आगे इस भवर अर्थात् पुनः जन्म के चक्कर में मत पड़ना क्योंकि आगे यम का निवास है। सद्गुरु ने लिखवाया है कि सूर्य रूपी परमात्मा का देश ऐसा है जो न कभी उगता है न अस्त होता है। वह अपरम्पार है। सद्गुरु के मिल जाने से सारे सुकृत्य साथ चलते हैं, पाँच-पच्चीस बाराती रूपी पुण्य साथ चलते हैं। अच्छे कर्म करने से जिस तरह दुल्हन की डोली जाती है। उसी तरह मनुष्य भी जाता है। इस आत्मा का आकार भी छोटा सा है। अपने सुकृत्यों के द्वारा ही मनुष्य मृत्यु के द्वार के बाद ईश्वर का प्रेमरूपी पलंग प्राप्त करता है। जहाँ अनंत विश्राम है। माया मोह में उलझा मनुष्य सद्गुरु के उपदेश से सुलझ जाता है। सद्गुरु के प्रताप से ही सिंगाजी यह पद गा रहे हैं। अर्थात् उपदेश दे रहे हैं।

मन मेरे नजरों मोती आया
 सतगुरु साहब ने परखाया,
 मन मेरे नजरो मोती आया ॥ टेक ॥
 बारीक झीना नजर नहीं आवै, जित देखूँ रे उत छाया ॥ 1 ॥
 कंकर पत्थर की मत कर आशा,
 गुरु हीरालाल परखाया ॥ 2 ॥
 भरा दरियाव थाह नहीं आवे,
 कोई मरजीवा होकर आया ॥ 3 ॥
 लाखन ऊपर लाखन जड़िया,
 वो गगन मंडल में छाया ॥ 4 ॥
 कहे जन सिंगाजी सुनो भाई साधु,
 गुरु अटल खजाना पाया ॥ 5 ॥

सतगुरु साहब ने बताया है कि तेरे अन्दर श्वास रूपी मोती आया है, यह इतना बारीक व पतला है कि यह दिखाई नहीं देता। लेकिन फिर भी जिधर देखो उधर इसकी ही छाया छाई हुई है। इसे सिर्फ 'ध्यान' के द्वारा अपने अन्दर ही खोजना होगा। तू इन कंकर-पत्थर अर्थात् सांसारिक माया मोह में मत पड़। तुझे तो सतगुरु ने परब्रह्म रूपी हीरे तक पहुँचने का मार्ग बताया है। संसार रूपी सागर प्रपंचों से भरा पड़ा है। कोई संघर्षशील व्यक्ति ही इससे पार जा सकता है। लाखन ऊपर लाखन जड़े हैं। किन्तु वह परब्रह्म तो आकाश मंडल में छाया है। सिंगाजी कहते हैं कि

गुरु ने इस अटल खजाने का राज बताया है। जो कभी खत्म नहीं होता।

अधीनता जब आवे जनको,
काल कभी नहीं सतावे जन को ॥ टेक ॥
औरन को ऊँच कर माने, वो आप ही नीच कहावे।
क्या कहूँ वो जन की महिमा, शेष पार नहीं पावे ॥ 1 ॥
आती आधीन प्रेम मन लावे, दुविधा को दूर बहावे।
सात पाँच का तोड़ सनेहा, सोई सतगुरु मोहे भावे ॥ 2 ॥
क्या कहूँ मैं सकल गुण उनके, शिल में आन समावे।
ज्ञान वैरागी भक्ति पुरणता,
फिर मुक्ति की कौन चलावे ॥ 3 ॥
गुरु की सेवा साधु की संगत, बनत-बनत बनि आवे।
कह जन सिंगाजी सुनो भाई साधु,
वोई नर परम पद पावे ॥ 4 ॥

जो नर मान-सम्मान के अधीन नहीं रहता है, सांसारिक माया-मोह के पीछे नहीं दौड़ता है, उसको काल कभी नहीं सताता है। औरों को अपने से उच्च मानता है ऐसे व्यक्ति की महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। मन में प्रेम रहेगा तो सभी दुविधाएँ दूर हो जायेंगी। सात-पाँच अर्थात् काम, क्रोध, मोह, माया से अपना नाता तोड़कर ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है। ऐसा सद्गुरु ही परमात्मा को अच्छा लगता है। जिनके सभी गुण शील में आकर समा जाते हैं। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति इन तीनों की पूर्णता होने पर मुक्ति की जरूरत नहीं होती है। गुरु की सेवा साधु की संगत जो नर करते हैं, वे ही परम पद को प्राप्त करते हैं।

उतार सिर का भार, बोझा क्यों भरता-भरता ॥ टेक ॥
कौन की माया, कौन की काया, किनका है धनमाल ॥ 1 ॥
कौन की माता, किनके पिता, किनका है घरबार ॥ 2 ॥
किनका भाई, किनकी बहू, किनकी है सुन्दर नार ॥ 3 ॥
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधु, झूठे है रे संसार ॥ 4 ॥

हे मनुष्य! तू सांसारिक बंधनों का बोझा अपने सिर पर लादकर क्यों फिर रहा है, व्यर्थ ही अपना समय नष्ट कर रहा है। इस भार को उतार कर अपना ध्यान ब्रह्म को प्राप्त करने में लगा

जिससे तेरा जीवन सफल हो जायेगा। यह माया आज तक किसी की होकर रही है जो तेरी बनकर रहेगी। आज तेरे पास है तो कल किसी और के पास चली जायेगी। यह शरीर भी तेरा कितने दिनों तक साथ देगा, एक दिन नष्ट हो जायेगा। धन-धान्य किसका है माता-पिता यह घर-बार सब कुछ समय तक तेरे साथ रहेंगे। भाई-बहू यह सुन्दर नारी भी कुछ समय के बाद तेरा साथ छोड़कर चले जायेंगे। सिंगाजी कहते हैं कि यह संसार झूठा है। सभी नाते-रिश्ते झूठे हैं। तू इनमें भ्रमित मत हो। ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए अपना ध्यान लगा। यह संसार मिथ्या है।

मन तू करी लऽ अपनी जगहा,
यहाँ कोई नहीं तेरो सगा ॥ टेक ॥
भाई बन्धु अरू कुटुम्ब कबीला,
वो दीसे एक दिन दगा ॥ 1 ॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, तेरे हाथ कछु नहीं लगा ॥ 2 ॥
त्रिया जात बुद्धि की ओछी,
ओनऽ दियो श्रृंगी ऋषि को दगा ॥ 3 ॥
कह जन सिंगा सुनो भाई साधु,
तू गुरु का चरण में मन लगा ॥ 4 ॥

हे मन! तू अपने लिए सही जगह ढूँढ़ ले। क्या तू सांसारिक प्रपंचों में पड़कर जन्म मरण के फेर में पड़ना चाहता है। या ब्रह्म को प्राप्त करके इन बंधनों से छुटकारा पाना चाहता है। क्योंकि यहाँ तेरा अपना कोई नहीं है। भाई, बन्धु, कुटुम्ब, कबीला ये सभी एक दिन तुझे धोखा दे देंगे। कौड़ी-कौड़ी जोड़कर तूने माया को एकत्रित किया, किन्तु अन्त समय में तेरे हाथ कुछ नहीं लगा। त्रिया जात तो बुद्धि की ओछी है। जिसने श्रृंगी जैसे ऋषि को भी दगा दे दिया। सिंगाजी कहते हैं कि तू गुरु के चरणों में अपना मन लगा, वे ही तुझे उस परब्रह्म तक पहुँचने का माध्यम बताएँगे।

नर अहंकार क्यों मरा,
उस घर की खबर कर जरा ॥ टेक ॥
धन दौलत अरू माल खजाना,
ये सब यही जाएगा धरा ॥ 1 ॥
भाई बन्धु अरू कुटुम्ब कबीला,
ये सब हुई जाएगा परा ॥ 2 ॥

धर्म पुत्र की राह नी जानी, सिर पाप का बोझा धरा ॥ 3 ॥
कहे जन सिंगा सुनो भाई साधु, हरी चरण चित धरा ॥ 4 ॥

हे नर! तू अपने पर अहंकार क्यों करता है? घमंड में ही तू मरा जा रहा है। जिस घर में तुझे जाना है उस घर की जरा खबर रख। ब्रह्म को प्राप्त करने में यह अहंकार रास्ते का कांटा है। अतः तू इस घमंड को छोड़ दे। धन-दौलत, माल-खजाना, यह सब कुछ यही रखा रह जाएगा। कुटुम्ब-कबीला सब कुछ पराए हो जाएंगे। धर्म और पुण्य का रास्ता तूने नहीं जाना। और सिर पर पाप का बोझा बढ़ाता गया और उसे ढोता रहा। सिंगाजी कहते हैं कि- हे मनुष्य! तू हरि के चरणों में अपना ध्यान लगा। इससे तेरा जीवन सफल हो जाएगा।

कैसे निर्भय सोवे मन तू, कैसा निर्भय सोवे
यहाँ कोई नहीं तेरा है ॥ टेक ॥
काम, क्रोध दोई अति बल योद्धा,
ये विष का बीजा क्यों बोवे रे ॥ 1 ॥
भरमत भरमत जनम गमायो,
तेरी आई बाजू क्यों खोवे रे ॥ 2 ॥

पाँच तत्व की देहि बनाई,
तू जरा भूल से खोवे रे मन तू ॥ 3 ॥
कह जन सिंगाजी सुनों भाई साधु,
थारी हारी बाजू खऽ फेरलऽ रे मन ॥ 4 ॥

हे मन! तू कैसे निर्भय होकर सो रहा है। तू इस संसार में पड़कर निडर होकर सो रहा है। आराम चैन से नींद ले रहा है कि यह सब कुछ तो तेरा है लेकिन तू भूल रहा है कि इस सांसारिक जगत में तेरा अपना कोई नहीं है। काम, क्रोध ये दोनों अत्यधिक बलशाली योद्धा हैं, तू इन्हें अपने अन्दर क्यों स्थान दे रहा है। तू यह विष का बीजा क्यों बो रहा है। भ्रम में पड़कर तूने अपना जन्म गवाँ दिया है। तुझे यह जन्म मिला है तो तू ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए अपना ध्यान लगा। तू यह सुअवसर मत खो। पाँच तत्वों से मिलकर इस शरीर का निर्माण हुआ है। तू अपने उद्देश्य को पहचान। हे मन! तुझे क्या करना है? यह सोच इस शरीर को व्यर्थ ही नष्ट मत कर। सिंगाजी कहते हैं कि- हे भाई! जो बाजी तू हार गया है वह अब जीत ले। अर्थात् तुझे जो यह जन्म मिला है इसे ब्रह्म प्राप्ति के लिए लगा। जिससे तेरा जन्म सफल हो जाएगा।

कुमाउनी कहावतें

डॉ. शेर सिंह बिष्ट

कहावतें लोकमानस द्वारा युगों-युगों से प्राप्त जीवन और जगत के कटु अनुभवों एवं व्यावहारिक सत्यों की वे अनुभवजन्य ज्ञान रश्मियाँ हैं, जिन्हें व्यावहारिक जीवन का 'नीतिशास्त्र' कहा जा सकता है। सामान्यतः कहावतें घटनामूलक होती हैं। जीवन और जगत में घटित किसी घटना विशेष से प्राप्त अनुभव ही एक 'सीख' या 'नसीहत' के तौर पर कहावत का रूप ले लेती है। इसी कारण श्रेष्ठ कहावतों का संदर्भ प्रायः बहुत व्यापक होता है। उनकी सार्थकता और प्रासंगिकता देशकाल में आबद्ध न होकर कालातीत हो जाती है। जैसे-

चोर थें चोरि करिए, गुसैं थें चितैक है रए।

अर्थात् चोर से चोरी करने को कहना, मालिक से सजग रहने को कहना।

यह कहावत ऐसे दोगले चरित्र वालों के लिए है, जो हर युग में हर समाज में पाए जाते हैं।

इसी तरह- 'रीस ख्वे आपण घर, बुद्धि ख्वे पर्यै घर।'

अर्थात् गुस्सा अपने घर की बरबादी करता है और बुद्धि पराये घर की बरबादी करती है। एक ऐसी कहावत है, जो जीवन के व्यावहारिक अनुभव से उपजी है।

किसी देशकाल निबद्ध घटना विशेष के अनुभव से उपजी ये उक्तियाँ अपने में अनुभवजन्य ज्ञान राशि को समेटे रहती हैं,

जिससे ये देशकाल निरपेक्ष होकर सार्वभौमिक प्रासंगिकता से सम्पृक्त हो जाती हैं। इसी कारण इनका महत्त्व कभी कम नहीं होता। सभ्यता का संबंध मुख्यतया भौतिक विकास तथा संस्कृति का सम्बन्ध मानवीय का सम्बन्ध मानवीय मूल्यों एवं जीवन शैली से है। औद्योगिक विकास से जहाँ जीवनस्तर में गुणात्मक सुधार हुआ है, वहीं पारम्परिक सांस्कृतिक मूल्य भी प्रभावित हुए हैं, परन्तु मानवीय जीवन की कुछ ऐसी मूलभूत विशेषताएँ हैं, जो न केवल वंशानुगत होती हैं, वरन् वे मानव-प्रकृति की अभिन्न अंग भी होती हैं। प्रकृति को बदलना मानव के वश में नहीं है, चाहे वह भौतिक प्रकृति हो या मानव प्रकृति। इसी कारण कुछ चीजें काल निरपेक्ष एवं व्यक्ति निरपेक्ष होने के कारण सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक होती हैं। यही कारण है कि माता का उसकी संतान के प्रति आत्मीय संबंध, न केवल मानव प्राणी में, वरन् जानवरों में भी एक-सा दिखाई देता है। इसी आत्मीय संबंध को व्यक्त करने वाली एक प्रसिद्ध कहावत है-

मैं चावो पेट, स्यैणि चावौ फेट।

-माँ (अपनी संतान का) पेट देखती है, जबकि पत्नी गठरी।

जन्मदात्री माँ का अपनी संतान के प्रति प्यार, त्याग, समर्पण एवं निःस्वार्थभाव अतुलनीय है। बच्चे को जन्म देने में प्रसव पीड़ा के रूप में जो कष्ट माँ सहन करती है, उसका अनुभव दूसरा कैसे कर सकता है? माँ और बच्चे का आधार-आधेय संबंध है। इसी भाव को व्यक्त करने वाली एक कहावत है-

चुचि ल्हिबेर बाव, बर्ख ल्हिबेर डाव।

-स्तनपान से बच्चा पलता-बढ़ता है, जैसे वर्षा से पेड़-पौधे हरे-भरे होते हैं।

गर्भावस्था में विटामिन 'सी' की कमी होने से माँ का खट्टा खाने को मन करता है। इसीलिए एक कहावत प्रचलित है-

औछन जै के लागि रई।

-औछन जो (दोहद) क्या लगे हैं।

माँ को प्रसूतिकाल में अपने बच्चे के स्वास्थ्य के लिए खान-पान में मिर्च-मसाले वगैरह का भी परहेज करना पड़ता है, ताकि माँ के स्तनपान (दुग्धपान) के कारण बच्चे के मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य पर कुप्रभाव न पड़े, इसीलिए यह कहावत प्रसिद्ध है-

जतकालिहिं बार, नटुहिं चार।

-प्रसूतिका के लिए (खान-पान) में परहेज तो नटुवे को चारा (स्वादिष्ट भोजन) चाहिए।

उपर्युक्त कहावतें जहाँ एक ओर मानवीय संबंधों का मनोवैज्ञानिक स्वरूप प्रस्तुत करती हैं, वहीं वे भौतिक विज्ञान, शरीर विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान संबंधी महत्त्वपूर्ण जानकारीयों से युक्त होती हैं। उक्त कहावतें मानव जीवन से लेकर भौतिक विज्ञान एवं पर्यावरण विज्ञान तक फैली हैं तथा मानव एवं प्रकृति के अंतःसंबंध को उद्घाटित करती हैं।

लोकसाहित्य में विज्ञान की बात करना थोड़ी देर के लिए अटपटा लग सकता है, क्योंकि विज्ञान में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण को ही महत्त्व दिया जाता है। विज्ञान वस्तुओं के विविध रूपों की अस्तित्वमूलक व्याख्या करता है तथा बताता है कि कैसे कुछ वस्तुएँ अथवा घटनाएँ अस्तित्व में आती हैं। विज्ञान इन व्याख्याओं को ऐसी स्थापनाओं और नियमों के रूप में निरूपित करता है, जिनकी प्रयोग द्वारा परीक्षा हो सके। विज्ञान विश्लेषणात्मक प्रक्रिया पर विश्वास करता है और भौतिक रूप से सिद्ध तथ्यों और प्रमाणों के आधार पर अपनी मान्यताओं की स्थापना करता है। विज्ञान के नियम और निष्कर्ष सार्वभौम और देशकाल निरपेक्ष होते हैं। विज्ञान के इन नियमों के आधार पर भी उपर्युक्त कहावतों में निहित ज्ञान का परीक्षण किया जाय तो वह प्रत्यक्षतः प्रामाणिक सिद्ध होता है।

कुमाउँनी में ऐसी सैकड़ों कहावतें हैं, जिनकी प्रासंगिकता एवं प्रामाणिकता हर युग में विश्वसनीय मानी गई है। ऐसी ही चुनी हुई कुछ कहावतें नीचे दी जा रही हैं, जिनकी सत्यता पर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता। विज्ञान सत्य का ही अन्वेषक है और ये कहावतें भी कुछ मायनों में सार्वभौमिक सत्य को ही उजागर कर

रही हैं, जैसे एक प्रसिद्ध कहावत है-

सबूँ है लाड़िल अन।

-सबसे लाड़ला (प्रिय) अन्न होता है।

पंच महाभूतों से निर्मित इस शरीर के अस्तित्व पर ही सारे सांसारिक नाते-रिश्ते जुड़े हुए हैं। मनुष्य के प्राणों का आधार यही मानव शरीर है। इसी शरीर के माध्यम से वह जीवन-जगत का समग्र ज्ञान-विज्ञान, सुख-दुःख का बोध प्राप्त करता है। अन्न का संबंध शरीर और प्राण दोनों से है। उसके बिना मानव जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती। साथ ही जिस तरह के भोज्य पदार्थों का हम सेवन करेंगे, उसी के अनुरूप हमारी मानसिक संरचना भी होगी। सात्विक (सादा) भोजन करेंगे, तो शरीर एवं चित्त स्वस्थ एवं शांत रहेगा। उत्तेजक या तामसी भोजन से उत्तेजना एवं विकार उत्पन्न होंगे, जो मनुष्य के शारीरिक एवं मानसिक पतन के कारण बनेंगे। जिस बात को विज्ञान लंबे-चौड़े तामझाम के साथ सिद्ध करने की कोशिश करता है, उसको कहावत के रूप में सटीक सूत्र के रूप में बड़ी सहजता से कह दिया गया है-

जस अन, तस मन।

-जैसा अन्न (भोजन), वैसा मन।

सम्पूर्ण चिकित्सा विज्ञान को इस छोटे से वाक्य में समझा दिया गया है, इसीलिए कहावतों को 'गागर में सागर' कहा जाता है। इसी तरह की एक अन्य कहावत है-

'जैक जस तैक तस, मुसक प्थ मुसै जस।'

जिसका जैसा, उसका वैसा, चूहे का बच्चा चूहे जैसा। इसमें आनुवंशिक विज्ञान की झलक मिलती है। ऐसी ही एक और कहावत है-

जस व्वीण लऊण।

-जैसा बोना, वैसा काटना।

इस कहावत में बीज की प्रजाति एवं उसकी गुणवत्ता से

लेकर मानवजीवन के कर्म-फल के सिद्धान्त तक, सब कुछ समाया हुआ है। कृषि-विज्ञान के अंतर्गत इस बात पर सबसे अधिक बल दिया जाता है कि बीज उत्तम कोटि का होना चाहिए, तभी अच्छी पैदावार की अपेक्षा की जाती है। परन्तु खेतों में उत्तम प्रजाति का बीज बो देना ही अच्छी पैदावार की गारण्टी नहीं है। उसके लिए खेतों में अपेक्षित मात्रा में गोबर की खाद भी डाली जानी चाहिए। इस आशय की कई कहावतें प्रचलित हैं-

जैसे-

मैलिक सैल।

-खाद से ही पैदावार बढ़ती है।

मल खेती, बल राजा।

-खाद पर खेती निर्भर करती है और शक्ति (सेना) पर राजा।

मैलिक बाल, खाएकि गाल।

-गोबर की खाद से फसल उसी तरह अच्छी होती है, जैसे पौष्टिक आहार से गालों में चमक आ जाती है।

अर्थात् पौष्टिक आहार केवल मनुष्यों को ही नहीं, वरन् अनाज के पौधों को भी चाहिए। उक्त कहावत में शरीर विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान के साथ-साथ कृषि विज्ञान तथा वनस्पति विज्ञान के मूलभूत सिद्धान्त भी निहित हैं।

अच्छी पैदावार के लिए उत्तम कोटि का बीज तथा गोबर की खाद ही पर्याप्त नहीं है, वरन् यथोचित समय पर खेतों की जुताई, बीज की बोआई, खेतों की सिंचाई तथा फसल की समुचित देखभाल भी उतनी ही जरूरी है। अतः कृषि विज्ञान से संबंधित सभी बातों को बड़े तार्किक एवं वैज्ञानिक आधार पर कहावतों में स्थान दिया गया है। इस आशय की कुछेक कहावतें इस प्रकार हैं।

जैक हल सपड़, वीक कव सपड़।

जो ठीक समय पर खेतों की जोताई कर ले, उसका काम बन

गया, अर्थात् उसकी फसल अच्छी होगी।

जैक असाड़, वीक असौज, जैक असौज वीक बैसाख।

जिसका आषाढ़, उसका आश्विन, जिसका आश्विन, उसका वैशाख।

अर्थात् जो आषाढ़ के महीने में खेतों में फसल गोड़ाई-निराई समय पर कर लेगा, उसे आश्विन माह में खरीफ की फसल से अच्छी पैदावार मिलेगी। आश्विन माह में जो ठीक समय पर खेतों की जुताई और बोआई कर लेगा, उसे वैशाख के महीने में रबी की फसल की अच्छी पैदावार मिलेगी।

खेतिक खसम सेति।

खेती का स्वामी (सर्वस्व), उसकी देखभाल। अर्थात् समुचित देख-रेख से ही अच्छी फसल मिल सकती है।

खेति हालि द्यो, घर हालि ज्वे।

-खेती (फसल) नष्ट होने के बाद वर्षा और घर बार नष्ट होने के बाद पत्नी (किस काम की)।

पहाड़ों में खेती वर्षा पर निर्भर करती है, क्योंकि यहाँ असिंचित कृषि-क्षेत्र अधिक है। यहाँ के कृषक को मौसम संबंधी प्रामाणिक जानकारी रहती है, जिसकी झलक यहाँ की कहावतों में देखी जा सकती है-

मैतकि ब्वारिक ताथ न बाथ, पूरबक बादलक द्यौ न पाणि।

-मायके में रहने वाली बहू (के आचरण) का जिस तरह कोई भरोसा नहीं, वैसे ही पूर्व दिशा से आने वाले बादलों से भी वर्षा की आशा नहीं करनी चाहिए।

यद्यपि अच्छी पैदावार के लिए पर्याप्त मात्रा में सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यह भी लोकानुभव पर आधारित ज्ञान है कि माघ के महीने में पहाड़ों में जब हिमपात होता है तो गेहूँ की अच्छी पैदावार होती है। इस आशय की कई कहावतें प्रचलित हैं-

बरसो ह्युँ, को समालो ग्युँ।

-हिमपात जब हो जाय, तो गेहूँ कौन सँभाल पाए। अर्थात् बर्फ गिरने पर गेहूँ इतनी अधिक मात्रा में पैदा होगा कि भंडार-गृह में उसके लिए स्थान कम पड़ जायेगा।

जै वर्ष ह्युँवै, वी वर्ष ग्युँवै।

-जिस साल हिमपात होता है, उस साल गेहूँ की फसल अच्छी होती है।

ह्युँ पड़ो पूस, ग्युँकि पड़ो धूस।

-पूस के महीने में बर्फ पड़े तो बेशुमार गेहूँ पैदा होवे।

अर्थात् बर्फ गिरने पर, बर्फ के पिघलने के साथ-साथ पानी धीरे-धीरे रिस-रिस कर गेहूँ की जड़ों तक पहुँचता है, जिसके कारण उपज अच्छी हो जाती है। साथ ही यह भी हो सकता है कि बर्फ में कुछ ऐसे तत्व हों, जो फसल की पैदावार के लिए लाभकारी हों।

इसी तरह कृषि विषयक कई ऐसी कहावतें लोकजीवन में प्रचलित हैं, जो वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं। जैसे-

करिबेर च्यल, सारिबेर क्यल।

-उद्यम करने से लड़का (पुरुष) तरक्की करता है और एक जगह से दूसरी जगह रोपने से केला तेजी से बढ़ता-फैलता है।

खाड़ाक पिनालु खाड़ै रै।

-गड्डे के पिनालू के कंद खेत से खोदने के बाद, घर के आसपास पुनः किसी गड्डे में दबा दिए जाते हैं, ताकि उनकी गाँठें (कंद) सूखने न पाएँ और सब्जी के लिए जब जरूरत हो, निकाल लिए जाएँ। इस तरह ये गड्डे प्राकृतिक शीत गृह (कोल्ड स्टोर) का काम देते हैं।

इसी तरह कहावतों में कहा गया है कि खरीफ की फसलों में धान पहले (चैत्र माह में) बोना चाहिए और मडुवा बाद में (जेठ में)। धान की पहली गोड़ाई जेठ में हो जानी चाहिए, तभी धान की फसल अच्छी हो सकती है। इस आशय की कुछेक कहावतें इस प्रकार हैं-

अघौलक धान, पछौलक मडु।

-आगे धान (बोना चाहिए), बाद में मडुवा।

*जेठाक ठसोली धान, सासुकि टकोरी ब्वारि।
भै तो भै, नतरि गै।*

-जेठ के महीने में हल्की गोड़ाई की हुई धान की फसल (पौधे) और सास के द्वारा प्रशिक्षित (डॉट-फटकार लगाई हुई) बहू, दोनों या तो खूब फूलेंगे-फलेगें या फिर सूख ही जाएंगे।

इस कहावत में मानव-व्यवहार एवं कृषि विज्ञान विषयक गहरे अर्थ अन्तर्निहित हैं।

कहावतों का विषय यद्यपि जीवन के विविध अनुभव क्षेत्रों से संबंधित है, तथापि उनमें अधिकांश कहावतें इस तरह की हैं, जिनकी पृष्ठभूमि वैज्ञानिक सोच पर आधारित प्रतीत होती है। इनका संदर्भ सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक है।

संदर्भ :

1. वैष्णव धर्म संप्रदायों के दार्शनिक सिद्धान्त और कृष्ण भक्ति काव्य-डॉ. शेरसिंह बिष्ट
2. कुमाऊँनी कहावतों में कृषि विषयक ज्ञान-डॉ. शेरसिंह बिष्ट एवं डॉ. जे.सी. भट्ट
3. कुमाऊँ हिमालय: समाज एवं संस्कृति-डॉ. शेरसिंह बिष्ट
4. उत्तरांचल: भाषा एवं साहित्य का संदर्भ-डॉ. शेरसिंह बिष्ट
5. कुमाऊँ का लोक साहित्य-डॉ. कृष्णानंद जोशी

अरुणाचल की विवाह परम्परा

डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह

अरुणाचली समाज में विवाह की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं। प्रदेश की जनजातियों की विवाह पद्धति में न्यूनाधिक अंतर पाया जाता है लेकिन कुछ बातें सभी जनजातियों में समान हैं। विवाह परम्परागत विधियों से और समाज के बुजुर्ग लोगों की देखरेख में सम्पन्न होता है। किसी विवाह को सामाजिक स्वीकृति मिलना भी परमावश्यक है। प्रेम विवाह सामाजिक स्वीकृति प्राप्त होने के उपरांत ही वैध समझा जाता है। अधिकांश जनजातियों में वधू-मूल्य के भुगतान की परम्परा पाई जाती है। गाय, मिथुन, सूअर, अलंकरण इत्यादि के रूप में वधू-मूल्य अदा किए जाते हैं। कुछ जातियों में नकद रूप में भी वधू-मूल्य अदा करने की परम्परा है। बहुपत्नी विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। अरुणाचल एक कृषि प्रधान राज्य है। महिलाएँ कृषि कार्यों में अथक परिश्रम करती हैं। परिवार की सुख-समृद्धि में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका होती है। अधिक पत्नियों का मतलब होता है, कृषि कार्यों के लिए अधिक सहायकों का मिलना। इस समाज में अधिक पत्नियाँ आर्थिक और सामाजिक सम्मान का सूचक भी हैं। जिस व्यक्ति की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है, वही ज्यादा पत्नियों के लिए वधू-मूल्य अदा कर सकता है और अधिकाधिक शादी कर सकता है। इस प्रकार बहुपत्नी विवाह आर्थिक अवस्थिति से जुड़ा हुआ है।

प्रदेश में शादी के निम्नलिखित चार रूप पाए जाते हैं- नियोजित विवाह, प्रेम विवाह, अपहरण विवाह और बालविवाह। अरुणाचली समाज में शादियाँ नियोजित होती हैं और उसमें माता-पिता पहल करते हैं। विवाह के लिए सर्वप्रथम वर-पक्ष के द्वारा पहल की जाती है। लड़के का पिता विवाह योग्य कन्या के माता-पिता के पास कुछ उपहार के साथ किसी मध्यस्थ को भेजता है अथवा स्वयं जाता है। प्रस्ताव पर सहमत होने की स्थिति में कन्या के माता-पिता उपहार को रख लेते हैं अन्यथा वापस कर देते हैं। लड़का-लड़की के मध्य प्रेम होने पर प्रेम विवाह होता है। प्रेम विवाह में भी जातीय रीति के अनुसार वधू-मूल्य अदा करना और कुछ संस्कारों को सम्पन्न कराना आवश्यक होता है। अपहरण विवाह में लड़का अपनी पसंद की लड़की का अपहरण कर कुछ दिनों के

लिए भाग जाता है। बाद में वह अपने माता-पिता को इसकी सूचना दे देता है और अनुरोध करता है कि वे वधू-मूल्य अदा करने की व्यवस्था करें। सर्वप्रथम तो लड़की के माँ-बाप इस शादी से इंकार करते हैं लेकिन अंततः लोक लाज के भय से उन्हें इस शादी के लिए अपनी सहमति देनी ही पड़ती है। अरुणाचली जनजातियों में बाल विवाह भी प्रचलित है। कभी-कभी तो बच्चे के जन्म के पूर्व ही उनकी शादी के लिए समझौता हो जाता है। शिक्षा के प्रचार-प्रसार और विकास के कारण बाल विवाह में कमी आयी है।

बहुपत्नीवाद का कारण निःसंदेह आर्थिक है। महिलाएँ अन्न उत्पादन और गृहस्थी की अन्य जिम्मेदारियों के निर्वाह में अथक परिश्रम करती हैं। किसी परिवार की आर्थिक अवस्था उस परिवार की महिलाओं की कुशलता और परिश्रम पर निर्भर करती है। जिस परिवार की महिलाएँ अधिक मेहनती और कृषि-कार्यों में दक्ष होती हैं, वह परिवार आर्थिक रूप से उतना ही समृद्ध और खुशहाल होता है। बहुपत्नी विवाह का दूसरा प्रमुख कारण उत्तराधिकार के पारम्परिक नियम हैं। इस नियम के अनुसार किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसका भाई अथवा उसका सौतेला पुत्र विधवा से शादी कर मृतक की संपत्ति का स्वामी बन जाता है। परिवार की संपत्ति किसी अन्य व्यक्ति के पास नहीं चली जाए, इसके लिए मृतक के संबंधी अन्य पत्नियों के बावजूद एक और शादी कर लेते हैं। यहाँ की अनेक जनजातियों में एक विवाह प्रथा भी प्रचलित है। कुछ जनजातियों में पहले बहुपति विवाह भी प्रचलित था लेकिन अब यह बिल्कुल बंद हो गया है। यहाँ विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार है यदि वह इसकी इच्छा व्यक्त करती है। युवक-युवतियों को अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन-साथी चुनने का पूर्ण अधिकार है। प्रायः सभी जातियों में समगोत्रीय शादी प्रतिबंधित है। प्रायः सभी प्रकार के विवाहों में वधू-मूल्य भुगतान करना अनिवार्य है। मूल्य का निर्धारण वर-कन्या के माता-पिता और गाँव के बुजुर्ग लोग करते हैं। इसका निर्धारण लड़की के माता-पिता की आर्थिक अवस्था को देखकर किया जाता है। कभी-कभी उसके रूप, गुण और कृषि कार्य में दक्षता को देखकर भी वधू-मूल्य तय किया जाता है। अनेक जनजातियों में वधू-मूल्य को वापस करने का भी प्रावधान है। तलाक होने की स्थिति में यदि तलाक के लिए पत्नी द्वारा दावा

किया जाता है तो विवाह के समय पति द्वारा अदा किये गए मूल्य लड़की के माता-पिता को वापस करना पड़ता है। यदि पति की ओर से तलाक का दावा किया जाता है तो वधू-मूल्य वापस करने की अनिवार्यता नहीं है। यदि लड़की विवाह के कुछ वर्षों के बाद ही निःसंतान मर जाती है तो रिवाज के अनुसार पति ने जो मूल्य अदा किए होंगे उसे लौटाने के लिए वह दावा कर सकता है।¹ यदि पति के दुर्व्यवहारों से क्षुब्ध होकर पत्नी अपने माता-पिता के घर भाग जाती है तो उसके माता-पिता का यह कर्तव्य बनता है कि वह अपनी पुत्री को समझा-बुझाकर पति के पास भेज दें। यदि ऐसा संभव नहीं हुआ तो लड़की के माँ-बाप द्वारा विवाह के समय लिया गया मूल्य अपने दामाद को वापस करना होगा।

‘न्यीदा’ तागिन जनजाति की सर्वाधिक प्रचलित वैवाहिक रीति है। यह रीति महंगी है और निर्धन व्यक्ति इस प्रकार की ‘न्यीदा’ का आयोजन नहीं कर सकता है। समाज के धनी व्यक्ति ही इस प्रकार का वैवाहिक समारोह आयोजित कर सकते हैं। इस प्रकार की शादी में सर्वप्रथम लड़के के पिता लड़की के माँ-बाप से संपर्क स्थापित करते हैं। यदि वर-पक्ष के पास गाय, मिथुन, सूअर इत्यादि है तो वह ‘न्यीदा’ का आयोजन करता है। अंडे और मुर्गी के परीक्षण से पता किया जाता है कि प्रस्तावित विवाह लड़की-लड़के के भविष्य के अनुकूल है अथवा नहीं। परीक्षण का परिणाम अनुकूल होने की स्थिति में वर-पक्ष और कन्या-पक्ष दोनों ओर से एक-एक मध्यस्थ नियुक्त किया जाता है जिसे ‘पिंको’ अथवा ‘नितम’ कहा जाता है। वह वधू-मूल्य और दहेज का निर्धारण करता है। ‘सामान्यतः कन्या पक्ष के सदस्यगण वर-पक्ष के घर अंतिम समारोह के दिन जाते हैं। वर-पक्ष द्वारा उनका गर्मजोशी से स्वागत किया जाता है। पाजुक, होयी पेनम इत्यादि को हाथ में लेकर नृत्य किया जाता है और कन्यापक्ष के लोगों का स्वागत किया जाता है। जब दुल्हन-दूल्हे के घर आती है तो घर के मुख्य द्वार को छोड़कर अन्य द्वार पर उसका स्वागत किया जाता है। इस द्वार को ‘नामजा’ कहा जाता है। नामजा को बाँस और पत्तों से सजाया जाता है। दुल्हन और उसके माता-पिता के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति इस द्वार से प्रवेश नहीं कर सकते हैं। पुजारी (न्यीब) और दूल्हे के माता-पिता नववधू का स्वागत करते हैं। शेष व्यक्ति मुख्य द्वार से प्रवेश करते हैं। जब कन्या-पक्ष

के सभी सदस्य घर के भीतर आ जाते हैं तो 'अपो' (मदिरा), 'अदिन' (माँस) तथा 'अचिन' (चावल) से उनका स्वागत किया जाता है। भोजनोपरांत वे लोग कुछ देर विश्राम करते हैं। वयस्क लोग मदिरापान करते हैं। शाम में दहेज और वधू-मूल्य का निर्धारण किया जाता है।² तागिन जनजाति में बहुपत्नी विवाह सामाजिक रूप से मान्य है। बड़ी पत्नी को 'इते' और छोटी को 'इसी' कहा जाता है। माँ की बहन (मौसी), मौसी की पुत्री, बहन की पुत्री, बुआ की बेटा और ममेरी बहन से शादी मान्य है। अग्रज अथवा अनुज की विधवा को भी पत्नी बनाया जा सकता है। यदि विधवा चाहे तो परिवार से बाहर के व्यक्ति से भी वैवाहिक संबंध स्थापित कर सकती है, बशर्ते कि उससे शादी करने वाला व्यक्ति क्षतिपूर्ति के रूप में उसके पूर्व पति के परिवार को वधू-मूल्य वापस कर दे। तागिन समाज में विवाह संस्कार 'न्यीब' की देखरेख में सम्पन्न होता है। धनी व्यक्ति इस अवसर पर पाँच से लेकर दस मिथुन तक बलि देता है। इस समाज में अपहरण विवाह भी सामान्य है। अविवाहित लड़कियों का अपहरण सामाजिक अपराध नहीं माना जाता। पति द्वारा पत्नी का मूल्य अदा करने के बाद समाज विवाह की मंजूरी दे देता है। अविवाहित लड़कियों की अपेक्षा विवाहित औरतों का वधू-मूल्य अधिक होता है। यदि किसी विवाहित औरत से शादी करनी हो तो पति को उस औरत के प्रथम पति द्वारा दी गई कीमत की दुगुनी राशि देनी पड़ती है। इस समाज में बाल विवाह को 'नेपे न्यीदा' कहा जाता है। इसके अन्तर्गत बच्चों के जन्म के पहले ही दो पिताओं में वैवाहिक समझौता हो जाता है। आजकल इस प्रकार की शादी अधिक नहीं होती है। आपातानी समाज में एक विवाह प्रथा पायी जाती है। एक पत्नी के जीवित रहते हुए पति दूसरी शादी नहीं कर सकता है। कुछ विशेष परिस्थितियों में ही आपातानी समाज दूसरे विवाह के लिए सहमति देता है। इस समाज में विवाह पूर्व के प्रेम को गलत नहीं माना जाता है। लड़के-लड़कियाँ अपनी इच्छा के अनुसार अपना जीवन-साथी चुनती हैं। माँ-बाप अपने बच्चों के विवाह संबंधी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करते हैं। वधू-मूल्य के संबंध में भी इस समुदाय का दृष्टिकोण अपेक्षाकृत उदार है। माँ-बाप अपनी पुत्रियों के लिए ऊँची कीमतों की माँग नहीं करते हैं।

हिल मीरी समाज में नियोजित शादी को 'न्यीदा' कहा जाता है। यह माता-पिता द्वारा तय किया जाता है। इस समाज में

भी वधू-मूल्य अनिवार्य हैं। उसका निर्धारण वर और कन्या दोनों पक्षों के अनुभवी और बुजुर्ग लोगों द्वारा किया जाता है। 'न्यीदा सम्पन्न होने के पूर्व ही वधू-मूल्य का सम्पूर्ण रूप से भुगतान कर देना अनिवार्य है। यदि संबंधित पक्ष सहमत हों तो उसका भुगतान किशतों में भी किया जा सकता है। कम से कम एक किशत निर्धारित अवधि के भीतर अदा कर देना आवश्यक होता है।'⁴

सिंहफो समुदाय में समगोत्रीय विवाह प्रतिबंधित है। इस समाज में भी बहुपत्नी विवाह सामान्य है। 'बहुपत्नी विवाह का मुख्य कारण आर्थिक हैं। दूसरी पत्नी का अर्थ है कृषि कार्य के लिए एक जोड़ा अतिरिक्त हाथों की अभिवृद्धि। इसके साथ ही घरेलू कामों के लिए भी दूसरी पत्नी के रूप में एक अतिरिक्त सहायिका मिल जाती है। दूसरी शादी का अन्य कारण पहली पत्नी का बांझपन भी है। कभी-कभी एक व्यक्ति के सामाजिक स्तर की पहचान इस बात से होती है कि उसके पास कितनी पत्नियाँ हैं। सिंहफो प्रधान (चीफ) सामान्यतः एक से अधिक पत्नियाँ रखता है जो उसके सामाजिक स्तर के लिए अनिवार्य होती है और अधिक से अधिक अतिथियों का भोजन और पेय के साथ स्वागत कर सकती है। घरेलू और खेती के कार्य का दायित्व उपपत्नियों का होता है।'⁵ इस समुदाय में शादी तभी वैध समझी जाती है जब वधू-मूल्य का भुगतान कर दिया जाता है। विवाह में मामा मध्यस्थ का कार्य करता है। सर्वप्रथम वह उपहार लेकर लड़की के घर जाता है। यदि लड़की के माँ-बाप शादी के लिए सहमत होते हैं तो दोनों पक्ष के लोग वधू-मूल्य का निर्धारण करते हैं। कुछ दिनों के बाद लड़के के माता-पिता कुछ संबंधियों के साथ लड़की के घर जाते हैं। वह लड़की के लिए उपहार स्वरूप स्कर्ट, चूड़ी इत्यादि और उसके माँ-बाप के लिए मदिरा और माँस ले जाता है। वधू-मूल्य की एकाध किस्त भुगतान करने के बाद शादी की तैयारी आरंभ होती है। शादी का दिन नियत किया जाता है। शादी की नियत तिथि के कुछ दिन पहले लड़का अपनी माँ और अन्य संबंधियों के साथ लड़की के घर जाता है। वह अपने साथ मदिरा-माँस और सूखी मछली भी ले जाता है। वर-पक्ष के लोग तीन दिनों तक कन्या के घर में रहते हैं ताकि कन्या पक्ष के लोग वर को देख लें। इसके बाद अंतिम रूप से वधू-मूल्य का निर्धारण होता है। लड़की को लड़के के घर भेजने के पूर्व मूल्य का सम्पूर्ण रूप से भुगतान करने की तिथि नियत

की जाती है। शादी के दिन किसी विशेष समारोह का आयोजन नहीं होता है। दूल्हे की माँ कुछ अन्य महिलाओं के साथ दुल्हन को अपने घर ले जाती है। सिंहफो समाज में सामान्यतः एक व्यक्ति अपने मामा की पुत्री (ममेरी बहन) से शादी को प्राथमिकता देता है लेकिन ऐसा संभव नहीं होने पर वह किसी दूसरे परिवार की लड़की को अपना जीवन साथी बना सकता है। मामा अपने भानजे की शादी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि मामा के पास पुत्री नहीं है तो उसका यह कर्तव्य होता है कि अपने भानजे के लिए किसी ऐसी परिवार की लड़की की तलाश करे, जिस परिवार को वह अच्छी तरह से जानता हो।

मोंपा समाज में पहले बहुपत्नी विवाह प्रचलित था लेकिन अब उस पर रोक लग गयी है। अब इस समाज में एक पत्नी विवाह सामान्य है। शादी की उम्र सामान्यतः दस वर्ष से लेकर पच्चीस वर्ष तक है। विधवा को पुनर्विवाह की स्वतंत्रता है। तलाक समाज द्वारा मान्य है। लेकिन जिस पक्ष से तलाक के लिए दावा किया जाता है उसे संबंधित दूसरे पक्ष को क्षतिपूर्ति देनी पड़ती है।

आका जनजाति में अधिकतर शादी नियोजित होती है। कुछ विशेष परिस्थितियों में बलात् विवाह और अपहरण विवाह भी होते हैं। बड़े भाई की विधवा चाहे तो अपने समुदाय के किसी अन्य व्यक्ति से भी विवाह कर सकती है लेकिन उस स्थिति में उसे अपने मृत पति के भाई को वधू-मूल्य लौटाना होगा। चचेरे भाई-बहनों में शादी भी मान्य हैं। खास्ती जनजाति में भी बहुपत्नी विवाह सामान्य है लेकिन समाज के धनी लोग ही एक से अधिक पत्नियाँ रखने में सक्षम होते हैं क्योंकि वधू-मूल्य अदा किए बिना शादी संभव नहीं है। परिवार में अन्य पत्नियों की अपेक्षा पहली पत्नी को अधिक अधिकार और सम्मान प्राप्त है।

खोआ (बुगुन) जनजाति में भी बहुपत्नी विवाह सामान्य है। एक व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार उतनी शादी करने के लिए स्वतंत्र है जितनी के लिए वह वधू-मूल्य अदा कर सके। शादी के लिए कोई उम्र निर्धारित नहीं है। किसी लड़के की शादी के लिए उसके माता-पिता बातचीत करते हैं। इस समाज में बाल विवाह और विधवा विवाह भी प्रचलित है। किसी व्यक्ति के

मरने के बाद उसका छोटा अथवा बड़ा भाई उसकी विधवा से विवाह कर सकता है। यदि विधवा चाहे तो अन्यत्र भी शादी कर सकती है। 'खोआ लोग पत्नी को परिवार की आर्थिक परिसंपत्ति मानते हैं। सम्पूर्ण समाज कृषि पर निर्भर है और महिलाएँ कृषि कार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। कृषि की सफलता मुख्य रूप से पत्नी के सहयोग पर निर्भर करती है।' ⁷ खोआ जनजाति में वधू-मूल्य लड़की के गुण और उसके माता-पिता की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करता है। विवाह लड़की के माँ-बाप को वधू-मूल्य के भुगतान पर अवलंबित है। भुगतान किए जाने वाले वधू-मूल्य की राशि विवाह के प्रकार और लड़की के माता-पिता की आर्थिक अवस्था के अनुसार तय होती है। सबसे छोटी लड़की के साथ विवाह करने पर वधू-मूल्य कुछ अधिक होता है। वधू-मूल्य नकद रूप में नहीं बल्कि पशु, कपड़े और बर्तन के रूप में दिया जाता है। मूल्य अदा नहीं करने पर शादी की बातचीत समाप्त हो जाती है। उसका भुगतान किस्तों में किया जाता है। ⁸

मीजी जनजाति में सामान्यतः नियोजित विवाह होते हैं। लड़के के माता-पिता किसी मध्यस्थ को लड़की के माता-पिता के पास भेजकर शादी के लिए पहल करते हैं। दोनों पक्ष के सहमत होने पर वधू-मूल्य तय किया जाता है। पूर्व निर्धारित तिथि पर लड़के का पिता अपने कुछ संबंधियों को लेकर लड़की के घर जाता है। वे अपने साथ दो मिथुन, दो सूअर, माँस और कुछ अन्य वस्तुएँ ले जाते हैं। वहाँ जाने पर मिथुन को काटा जाता है और सभी ग्रामवासियों को आमंत्रित कर उन्हें भोज दिया जाता है। इस दिन दुल्हा-दुल्हन को नए वस्त्र देता है। लड़के का पिता लड़की को दाव, बर्तन और कुछ अन्य वस्तुएँ देता है। तीसरे दिन वे लोग अपने घर लौट जाते हैं। तय वधू-मूल्य का किस्तों में भुगतान किया जाता है लेकिन उसका बड़ा हिस्सा उसी दिन अदा कर दिया जाता है जिस दिन लड़का-लड़की के घर जाता है। इसके एक वर्ष बाद लड़की को लड़के के घर लाया जाता है। उस समय भी उपहारों का आदान-प्रदान किया जाता है। इस समुदाय में भी बहुपत्नी विवाह सामान्य बात है।

वांचू जनजाति में प्रायः गाँव के भीतर ही शादी होती है। समुदाय के प्रधान (चीफ) इसके अपवाद है। चीफ गाँव के भीतर और बाहर किसी से शादी कर सकता है। इस समाज में भी

समगोत्रीय विवाह प्रतिबंधित है। एक पत्नी विवाह सामान्य है, परंतु बहुपत्नी विवाह को भी सामाजिक अपराध नहीं माना जाता है। यह व्यक्ति की समाजार्थिक अवस्था पर निर्भर है। वांचू समाज का प्रधान (चीफ) अपनी इच्छा के अनुसार उतनी शादियाँ कर सकता है जितना वह सक्षम है। यह समाज कई वर्गों में विभक्त है। सामान्य परिस्थितियों में समान वर्ग में ही शादी होती है। वांचू चीफ की लड़की दूसरे चीफ के लड़के के साथ ब्याही जाती है। 'वांचू समाज में यौन व्यवहार संबंधी सामाजिक नियम बहुत उदार हैं और वे लड़का-लड़की के बीच विवाह-पूर्व संबंधों की अनुमति देते हैं। लड़की-लड़के स्वतंत्रतापूर्वक एक-दूसरे से मिलते हैं जिससे उन्हें अपना जीवन-साथी चुनने में सहायता मिलती है। लेकिन प्रायः विवाह माँ-बाप द्वारा ही आयोजित किया जाता है।'⁹ चचेरी-ममेरी बहन और बुआ की पुत्री से शादी को प्राथमिकता दी जाती है। वांचू समुदाय में दो परिवारों के बीच लड़कियों की अदला-बदली द्वारा भी शादी होती है। इस जनजाति की एक उल्लेखनीय विशेषता है कि विवाह पूर्व गर्भवती होना लड़की की प्रजनन क्षमता को प्रमाण-पुष्ट बनाता है। इस प्रकार की लड़की से शादी करने वाले के लिए अधिक व्यक्ति इच्छुक होते हैं। प्रधानतः वांचू समाज में लड़की के गर्भवती हो जाने के बाद सामाजिक रीति से शादी कर दी जाती है। गर्भवती होने से लड़की की प्रजनन क्षमता प्रमाणित हो जाती है। जो वंश-परम्परा को कायम रख सकती है। यह इस समाज में स्त्री की प्रमुख वांचनीय विशेषता मानी जाती है।

नोके जनजाति में एक विवाह प्रथा अधिक प्रचलित है लेकिन कहीं-कहीं बहुपत्नी विवाह के उदाहरण भी मिल जाते हैं। इस समाज में गाँवों के भीतर शादी नहीं होती है। प्रधान (चीफ) दो शादी करता है-एक अपने गाँव में तथा दूसरी अपने गाँव के बाहर। उसका विशेषाधिकार है कि वह किसी लड़की को अपनी पत्नी बना सकता है। इस समाज में विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार है।

तांगसा समाज में बहुपत्नी विवाह प्रतिबंधित है। उसी स्थिति में एक पुरुष दूसरी शादी कर सकता है जब उसकी पहली पत्नी बांझ हो अथवा घरेलू और कृषि कार्यों में कुशल नहीं हो। 'एक व्यक्ति अपने बड़े भाई की विधवा से तो विवाह कर सकता है

लेकिन छोटे भाई की विधवा से विवाह नहीं। केवल 'खेमसिंग' उपजनजाति में ही बड़ा भाई अपने भाई की विधवा से विवाह कर सकता है। विधवा विवाह के मामले में विधवा के भावी पति द्वारा विधवा के माँ-बाप को नाममात्र का वधू-मूल्य दिया जाता है। यह विवाह को सामाजिक मान्यता देने के लिए आवश्यक है। यदि मूल्य अदा नहीं किया जाता है तो विधवा के माता-पिता नवदंपती के घर में कभी नहीं आते हैं। 'योगील' लोगों में ऐसे विवाहों में वधू-मूल्य की राशि सामान्यतः तीस रूपये निश्चित है। यदि किसी विधवा के पास बच्चे नहीं हैं तो वह अपनी इच्छा के अनुसार पुनर्विवाह कर सकती है, बशर्ते उसके मृत पति का छोटा या बड़ा भाई नहीं हो। कोई व्यक्ति अपनी पत्नी की मृत्यु के बाद वधू-मूल्य देकर अपनी मृत पत्नी की बहन से विवाह कर सकता है।¹⁰ विवाह के प्रकारों के अनुसार वधू-मूल्य की राशि कम-ज्यादा होती है। प्रेम विवाह में यह राशि अपेक्षाकृत अधिक होती है। इस समाज में तलाक मान्य नहीं है।

आदी मिन्योंग समुदाय में प्रेम विवाह अधिक लोकप्रिय है। सामान्यतः प्रेमी-प्रेमिका के प्रेम-संबंध आगे चलकर वैवाहिक बंधन में बदल जाते हैं। इस समाज में लड़की-लड़के को अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन साथी चुनने की पूरी आजादी है। प्रत्येक गाँव में युवागृह बने होते हैं जिन्हें 'देरे' अथवा 'मोसुप' कहा जाता है। यह ग्रामीण अविवाहित युवकों का सामूहिक शयनागार होता है। इसमें सोने वाले युवकों को 'यामेंग' कहा जाता है। इसी प्रकार गाँव की अविवाहित युवतियों के लिए भी सामुदायिक शयनागार होता है जिसे 'रासेंग' कहा जाता है। रासेंग में सोने वाली तरुणियों को 'मिमोंग' कहा जाता है। रात्रि भोजन के बाद गाँव के सभी युवक-युवतियाँ क्रमशः 'देरे' और 'रासेंग' में सोने जाते हैं। रात्रि में देरे के यामेंग रासेंग में जाते हैं तथा मिमोंग के साथ नृत्य-गीत और अन्य गतिविधियों में भाग लेते हैं, परस्पर हँसी-मजाक करते हैं और विविध विषयों पर बातचीत और विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। इसी क्रम में किसी लड़की को किसी लड़के से प्रेम हो जाता है जो बाद में शादी में परिणत होता है। जब किसी लड़के को किसी लड़की से प्रेम हो जाता है तो लड़की रासेंग में आना बंद कर देती है और लड़का देरे में आना स्थगित कर देता है। इससे सभी लोग समझ जाते हैं कि दोनों में प्रेम संबंध स्थापित हो गया है। 'इसके उपरांत लड़का

अपनी प्रेयसी के घर प्रतिदिन जाता है एवं कृषि तथा अन्य विकास संबंधी गतिविधियों के बारे में उसके माता-पिता से बातचीत करता है। इसे 'मकबो जिनम' कहा जाता है। यह उल्लेखनीय है कि लड़का-लड़की के साथ उसके घर में सोता है। ये युवागृह मिन्योग समाज की अत्यंत महत्वपूर्ण संस्था है जो अविवाहित युवक-युवतियों के लिए प्रेम और सहानुभूति के बंधन में हार्दिक रूप से बंध जाते हैं एवं तदोपरांत शांतिपूर्वक अपना वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं।¹²

श्री एम.एम. फूकन ने मिन्योग समुदाय की वैवाहिक विशेषताओं का उल्लेख करते हुए लिखा है-

1. मिन्योग समाज में वधू-मूल्य अथवा दहेज की प्रथा नहीं है।
2. मिन्योग लड़के-लड़कियों को अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन-साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता है। यह समाज बहुत उदार है और युवक-युवतियों को प्रेम की आजादी देता है। इस कार्य में युवागृह सक्रिय भूमिका निभाते हैं।
3. प्रेमी जुगल के बीच का प्रेम 'रायिंग' और 'अरेय' की सामाजिक प्रक्रिया के परीक्षण के उपरांत ही समाज स्वीकृत वैवाहिक संबंध में परिणत होता है।
4. 'मकबो जिनम' के समय संबंधित युवती गर्भ धारण कर सकती है और बच्चे को जन्म भी दे सकती है। सामाजिक दृष्टि से इसे अवैध या अपराध नहीं माना जाता है।¹³

आदि जनजाति की विभिन्न उपजातियों की वैवाहिक रीतियों में न्यूनाधिक अंतर पाया जाता है। 'मिन्योग और पादाम लोगों की शादियाँ परम्परा सम्मत होती हैं। गालोंग जनजाति की वैवाहिक परम्परा इनसे भिन्न है। पादाम जनजाति में शादी लड़का और लड़की की इच्छा पर निर्भर करती है। यदि दोनों एक-दूसरे से राजी हैं तो प्रायः माँ-बाप तथा समाज के लोग उसमें अपनी स्वीकृति दे ही देते हैं। लेकिन यदि लड़का-लड़की की अवस्था या चयन सामाजिक नियमों के विरुद्ध है तो ऐसी स्थिति में शादी की मान्यता नहीं मिलती है। नियोजित शादी एवं अनियोजित

शादी का स्वरूप उपलब्ध होता है।' ¹⁴

निशिंग जनजाति की वैवाहिक पद्धति तागिन, मालोंग और हिल मीरी जनजातियों के समान है। इस समुदाय में भी शादी के कई रूप प्रचलित हैं लेकिन सभी प्रकार की शादियों में लड़के के माँ-बाप को लड़की के माँ-बाप को वधू-मूल्य का भुगतान करना पड़ता है। प्रेम विवाह में भी वधू-मूल्य भुगतान की अनिवार्यता है। लड़के को लड़की से प्रेम होने के बाद वह अपने माता-पिता से मूल्य तय करने और उसका भुगतान करने का अनुरोध करता है। 'ऐसे मामलों में लड़के के माता-पिता लड़की के माता-पिता को प्रस्तावित विवाह के बारे में सूचना देते हैं और अपने घर पर वधू-मूल्य स्वीकार करने के लिए आमंत्रित करते हैं। यदि दोनों पक्ष सहमत होते हैं तो लंबी वार्ता के बाद वधू-मूल्य का भुगतान किया जाता है। वधू-मूल्य के बदले में दूल्हा और वर-पक्ष को कीमती वस्तुएँ दी जाती हैं।' ¹⁵ नियोजित विवाह में भी वधू-मूल्य का भुगतान अनिवार्य है। नियोजित शादी में वर के माँ-बाप कन्या के माँ-बाप के घर जाकर शादी का प्रस्ताव रखते हैं। यदि कन्या-पक्ष को शादी का प्रस्ताव स्वीकार होता है तो मुर्गी-यकृत-परीक्षण किया जाता है और शादी का दिन निश्चित किया जाता है। इसके उपरांत स्त्री-पुरुष मदिरा (अपो), माँस और चावल लेकर दुल्हन के घर जाते हैं। गाँव के बुजुर्ग लोग वधू-मूल्य के संबंध में बातचीत करते हैं। विवाह दल जब लड़की के घर पहुँचता है तो वहाँ पर अपो, माँस और चावल से उनका स्वागत-सत्कार किया जाता है। रात्रि भोजनोपरांत दोनों पक्ष के लोग और पुजारी अंगीठी के निकट बैठकर वधू-मूल्य के संबंध में बातचीत और मेल-जोल करते हैं तथा उपहारों का आदान-प्रदान भी करते हैं। 'निशि समाज में वधू-मूल्य पूर्णतः लड़की के माँ-बाप की संपत्ति पर निर्भर करता है। यदि वह बहुत धनी है तो अधिकाधिक मिथुन की मांग करता है। मिथुन की संख्या पचास और उससे अधिक भी हो सकती है। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि ये मिथुन लड़की के मूल्य के रूप में लिए जाते हैं। सामान्य रीति यह है कि प्रत्येक मिथुन का कुछ बहुमूल्य वस्तुओं और अलंकारों से विनिमय किया जाता है। कभी-कभी लड़की के माता-पिता उससे भी अधिक दे देते हैं जितना उन्होंने वर-पक्ष से प्राप्त किया होता है। वास्तविक रूप में वधू-मूल्य तीन मिथुन अथवा पंद्रह हजार रुपये से अधिक नहीं

होता है। कभी-कभी लड़की की शादी मुफ्त में भी कर दी जाती है, जहाँ पर दामाद और कन्या-पक्ष के लोगों के बीच परस्पर समझ होती है। इतना ही नहीं, कन्या के माता-पिता लड़के और उसके माँ-बाप को उपहार स्वरूप कुछ मिथुन और कीमती सामान भी देते हैं।¹⁶

निशि समाज में समगोत्रीय शादी प्रतिबंधित है। समगोत्रीय व्यक्ति भाई-बहन समझे जाते हैं। मातृ-पक्षीय सदस्यों से शादी करना नियमानुकूल है। माँ की बहन और माँ की भतीजी से शादी करने को प्राथमिकता दी जाती है। माँ के गोत्र में शादी करना भी परम्परा सम्मत है। इस समुदाय में भी बहुपत्नी विवाह सामान्य है। धनी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुसार अनेक शादियाँ कर सकता है। इसके विपरीत जिसके पास वधू-मूल्य के भुगतान की क्षमता नहीं है। वह एक से अधिक पत्नी नहीं रख सकता है। अधिक पत्नियाँ सम्मान और सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक हैं। बड़े परिवार को भी सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त है। बड़ा परिवार लाभदायी समझा जाता है क्योंकि इससे गाँव के अन्य छोटे परिवारों पर वर्चस्व बना रहता है। इसीलिए लोग अपना परिवार बढ़ाने के लिए अधिक शादियाँ करते हैं। 'निशि और हिल मीरी लोग झूम खेती पर निर्भर हैं। वे एक से अधिक शादी करते हैं। प्रत्येक पत्नी आर्थिक परिसंपत्ति समझी जाती है। वह जमीन में खेती करती है और अन्नोत्पादन में सहायता करती है।'¹⁷ निशि समुदाय में बहुपति विवाह पर सामाजिक प्रतिबंध है। विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार है। किसी व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसकी विधवा पर मृत व्यक्ति के भाई का उत्तराधिकार समझा जाता है। यदि उसके पास भाई नहीं हो तो उसका सौतेला पुत्र उससे शादी कर सकता है। इस समाज में तलाक का रिवाज नहीं है।

मिशमी जनजाति में वधू-मूल्य के अंतर्गत मिथुन, गाय, सूअर आदि दिए जाते हैं। इन पशुओं की संख्या कन्या-पक्ष की आर्थिक अवस्था के अनुसार निश्चित की जाती है। लड़की की कार्यकुशलता तथा खेती के कामों में उसकी परिश्रम-क्षमता के अनुसार मूल्य तय होता है। विवाह में सूखी मछलियाँ, नकद, मदिरा, अन्न इत्यादि लड़की के घर भेजने की परम्परा है। मिशमी समाज में वधू-मूल्य की दर बहुत ऊँची है। इसलिए शादी करना युवकों के लिए आकाश के तारे तोड़ने के समान है। इस समाज

में 'विवाह की बातचीत संबंधियों के बीच वधू-मूल्य की राशि तय हो जाने के बाद ही अंतिम निर्णय पर पहुँचती है। मिशमी रीति-रिवाज के अनुसार सगाई तथा दुल्हन को दूल्हे के घर में आने के बीच का समय कुछ महीनों से लेकर कुछ वर्षों तक हो सकता है। भावी पति द्वारा कन्या के माता-पिता को वधू-मूल्य का बड़ा हिस्सा भुगतान करने के उपरांत ही शादी सम्पन्न होती है।'¹⁸

शेरदुक्पेन जनजाति बौद्ध धर्मावलंबी है। इस समाज में एक पत्नी विवाह का नियम सख्ती से लागू होता है। इस समाज में भी शादी की अनेक पद्धतियाँ प्रचलित हैं लेकिन अधिकांश विवाह परस्पर बातचीत के द्वारा ही तय होते हैं। शादी-ब्याह में अधिक पैसे खर्च नहीं किए जाते हैं परन्तु वधू-मूल्य देना अनिवार्य है।

अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों की वैवाहिक पद्धतियों, रिवाजों और परम्पराओं का विश्लेषण करने के बाद कहा जा सकता है कि-

1. अरुणाचली समाज में युवक-युवतियों को अपनी पसंद के अनुसार अपना जीवन-साथी चुनने की पूरी स्वतंत्रता है।
2. इस समाज में वधू-मूल्य की परम्परा सदियों से चली आ रही है। वधू-मूल्य का भुगतान करना विवाह का महत्वपूर्ण अंग है। यह मूल्य मिथुन, गाय, सूअर, अलंकार इत्यादि के रूप में अदा किया जाता है।
3. अधिकांश जनजातियों में वर्ग के भीतर लेकिन गोत्र के बाहर शादी करने का रिवाज है। समगोत्रीय विवाह प्रतिबंधित है।
4. शादी-विवाह में लड़की-लड़के के माता-पिता और गाँव के बुजुर्ग लोग महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं लेकिन अपने बच्चों की राय का हमेशा सम्मान करते हैं।
5. अरुणाचली समाज में विधवा का पुनर्विवाह का अधिकार

है। परिवार की सम्पत्ति पर किसी अन्य व्यक्ति का अधिकार नहीं हो जाए, इसलिए मृत पति के भाई अथवा उसके सौतेले पुत्र से विवाह करने की परम्परा है।

6. अधिकांश जनजातियों में बहुपत्नी विवाह को सामाजिक मान्यता प्राप्त है। इसका कारण आर्थिक है। यह समाज कृषि पर निर्भर है और कृषि-कार्य भौगोलिक कारणों से अधिक कठिन और श्रमसाध्य है। कृषि में अधिक लोगों का सहयोग अपेक्षित है। इसीलिए बहुपत्नी प्रचलित है। कुछ जनजातियों में एक पत्नी विवाह का नियम भी सख्ती के साथ लागू है। पहले कुछ जनजातियों में बहुपति विवाह

भी प्रचलित था लेकिन अब बिल्कुल बंद हो गया है।

7. अरुणाचली समाज में शादी के लिए कन्या-पक्ष की ओर से पहल की जाती है। इससे स्पष्ट है कि यहाँ लड़कियों को अधिक महत्त्व दिया जाता है। जो लड़की अधिक गुणी और परिश्रमी होती है उसके साथ सभी लोग शादी करना चाहते हैं।
8. अधिकांश शादियाँ नियोजित होती हैं और वर-कन्या के माता-पिता की देखरेख में सम्पन्न होती हैं। पहले यहाँ बाल विवाह भी प्रचलित था लेकिन अब धीरे-धीरे उस पर रोक लग गयी है।

संदर्भ संकेत :

1. सुबनसिरी जिला गजेटियर (1980)-संपा. एस. दत्त चौधरी-पृ. 131
2. श्री ताको दुपित-अरुणाचल न्यूज-अप्रैल-मई 1983, पृ. 36
3. श्री के. दासगुप्ता-द तागिन्स एंड देयर लैंग्वेज-रेसार्च (शिलौंग)-जनवरी-1977, खंड-3 सं.-1
4. डॉ. बी.बी. पांडेय-द हिल मीरीज-पृ.-99
5. श्री टी.के.एम. बरुआ-द सिंगफोज एंड देयर रिलीजन-पृ.-59
6. श्री टी.के. एम. बरुआ-उपर्युक्त-पृ. 59
7. श्री आर.के. देउरी-रेसार्च 1975-पृ.-79
8. श्री आर.के. देउरी-रेसार्च 1975-पृ.-1
9. तिरप जिला गजेटियर (1981)-पृ.-66
10. श्री माताप्रसाद-मनोरम भूमि : अरुणाचल-पृ. 161
11. पारुल दत्त-द तांगसाज (शिलौंग) 1969-पृ.-59
12. श्री एम.एम. फूकन-मैरेज सिस्टम ऑफ द मिन्थोंग-अरुणाचल न्यूज-जनवरी 1981-पृ.-32
13. श्री एम.एम. फूकन-उपर्युक्त-पृ. 35
14. डॉ. धर्मराज सिंह-अरुणाचल की आदि जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन-पृ.-70
15. श्री अजातशत्रु बेंगिया-अरुणाचल रिव्यू-जुलाई-अगस्त-1996
16. श्री अजातशत्रु बेंगिया-उपर्युक्त।
17. सुबनसिरी जिला गजेटियर (1980)-पृ. 129
18. श्री टी.के.एम. बरुआ-रेसार्च (1976)-पृ. 111

वाराणसी की देव दीपावली

बी.एल.द्विवेदी

कार्तिक मास की पूर्णिमा तिथि को देवता अपनी दीपावली मनाते हैं, जिसे देव दीपावली कहा जाता है। वास्तव में आषाढ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि, जिसे देवशयनी एकादशी कहा जाता है, देवता (भगवान श्री नारायण) योग निद्रा में लीन हो जाते हैं तथा कार्तिक मास की देवोत्थान एकादशी तक (चार माह की अवधि) योग निद्रा में लीन रहते हैं। इसी कारण चार माह की यह अवधि चतुर्मास के नाम से जानी जाती है। इस अवधि में सभी माँगलिक कार्य वर्जित हैं। यहाँ तक साधु-संत भी इस बीच भ्रमण त्यागकर एक स्थान पर रहकर यम-नियम पूर्वक समय व्यतीत करते हैं।

कार्तिक अमावस्या 'महालक्ष्मी कमला' की जयन्ती है, जो सुख-समृद्धि देने वाली हैं, अतः इस तिथि को मानव जन सुख समृद्धि एवं धन वैभव की प्राप्ति हेतु दीपावली मनाते हैं जिसमें लक्ष्मी के साथ श्रीगणेश एवं कुबेर की पूजा का विधान है।

एक मान्यता यह है कि इसी दिन भगवान श्रीराम रावण वध के उपरान्त अयोध्या वापस लौटे थे, जिसके उपलक्ष्य में उनके स्वागत हेतु अयोध्यावासियों ने दीपमालिका का आयोजन किया था, तभी से दीपावली मनाने का प्रचलन हुआ।

कार्तिक अमावस्या के पन्द्रह दिन बाद कार्तिक पूर्णिमा को श्रीनारायण के योगनिद्रा से (देवउठनी एकादशी) जग जाने के उपरान्त देव दीपावली का आयोजन, चतुर्मास की समाप्ति, वर्षा ऋतु की समाप्ति तथा खरीफ फसल के तैयार हो जाने तथा माँगलिक कार्यों के प्रारंभ के दृष्टिकोण से भी युक्ति संगत प्रतीत होता है।

देव दीपावली आयोजन की पृष्ठभूमि में एक अन्य पौराणिक आख्यान भी है कि इसी तिथि को भगवान शिव ने त्रिपुरासुर का

वध किया था। देव सेनापति कार्तिकेय द्वारा तारकासुर का वध किये जाने के पश्चात् उसके तीनों पुत्र तारकाक्ष, कमला तथा विधुन्माली ने ब्रह्मा की घोर तपस्या की। इन तीनों ने ब्रह्मा जी से तीन ऐसे विमान या पुर मांगे जो देवताओं द्वारा भी नष्ट नहीं किये जा सकते थे। दूसरे वरदान में उन्होंने यह वर मांगा कि उनकी मृत्यु तभी हो जब वे तीनों इकट्ठा हों और कोई सामर्थ्यवान पुरुष एक ही बाण से विद्ध कर सके। ऐसा वर पाकर तीनों अजर-अमर हो गये। उन तीन विमानों में एक स्वर्ण, दूसरा रजत का तीसरा लौह का था। फलस्वरूप वे तीनों विमानों में निर्भय होकर भ्रमण करने तथा देवों को त्रसित करने लगे। सभी देवता मिलकर भी उनका प्रतिकार नहीं कर पाते थे। पूरे ब्रह्माण्ड में उनका आतंक छा गया।

अन्त में सभी देवता मिलकर ब्रह्मा तथा विष्णु को साथ लेकर भगवान शिव के पास गये एवं उनसे इस संकट से निवारण की प्रार्थना की। भगवान शिव ने उन्हें आश्वासन देकर विदा किया कि समय आने पर वे त्रिपुरासुर का विनाश अवश्य करेंगे। वास्तव में तारकाक्ष, कमलाक्ष एवं विधुन्माली के वे पुर कभी आपस में मिलते नहीं थे। वे अलग-अलग रहकर ही आतंक मचाते तथा देवों को त्रास दिया करते। इस संरचना में एक गूढ़ भेद था कि वे एक निश्चित आकाशीय नक्षत्रीय योग में ही आपस में मिल सकते थे। यह भेद भगवान शिव के अतिरिक्त अन्य किसी को ज्ञात नहीं था। वे उसी क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसा योग उपस्थित होते ही वे तीनों पुर एकत्र हुये और भगवान शिव ने एक ही बाण में उनका संहार कर डाला। यह योग कार्तिक पूर्णिमा को सम्पन्न हुआ था। तभी से देवता दीपावली मनाने लगे। आध्यात्मिक नगरी काशी में देव दीपावली को बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है। इस दिन वाराणसी के हर मंदिर, कुँआ, बावली, सरोवर, सभी जगह दीप दान, पूजा आरती की प्रथा है। परन्तु गंगा नदी के विभिन्न घाटों पर हजारों लाखों दिये जलाकर जिस प्रकार उन्हें सजाया जाता है, उसकी छटा निराली ही होती है। घाटों के अतिरिक्त हजारों नावों, मोटर बोट तथा बजरो में लाखों लोग आतिशबाजी के साथ नदी में दीप प्रवाहित करते हैं। असी घाट से लेकर राजघाट तक घाटों की सीढ़ियों पर लाखों दीपों की कतारें, विद्युत सजावट, झालरें विद्युत एवं दीप स्तम्भों के विभिन्न आकार नयनाभिराम दृश्य उपस्थित करते हैं।

असी घाट, तुलसी घाट, बच्छ राज घाट, शिवाला घाट, हनुमान घाट, हरिश्चन्द्र घाट, केदार घाट, राणा घाट, दशाश्वमेघ घाट, मीर घाट, ललिता घाट, मणिकर्णिका घाट, रामघाट, पंच गंगा घाट, गरु घाट, त्रिलोचन घाट, प्रहलाद घाट, मालवीय पुल तथा राजघाट तक की सजावट तथा हजारों नावों में लाखों दर्शनार्थी सांझ होते ही देव दीपावली का आनंद उठाने टूट पड़ते हैं। परन्तु सर्वाधिक भावपूर्ण मंगलमय समय होता है जब सात बजे गंगा जी की आरती का कार्यक्रम प्रारंभ होता है। दशाश्वमेघ घाट पर नावों को जोड़कर नदी के बीच आरती का मंच बनाया जाता है। जो गजरों, फूलों, दीपों तथा विद्युत झालरों से सजाया जाता है। आरती प्रारंभ होती है- गणेश, शिव तथा पतित-पावनी गंगा जी की आरती से मंच पर प्रमुख पुजारी के अतिरिक्त घाट पर सैकड़ों बटुक, घंटा-घड़ियाल, शंख-ध्वनि के साथ, पंखे-चंवर, दीपक लेकर सुमधुर कण्ठों से भाव भक्ति पूर्वक आरती करते हैं। अन्त में सैकड़ों कुण्ठों में हवन कर पूरे कार्यक्रम को अतिशय गरिमा प्रदान करते हैं। यह कार्यक्रम लगभग घंटे भर का होता है, जब सभी दर्शनार्थी श्रद्धा भक्ति से ओत-प्रोत हो भाव विह्वल हो उठते हैं। आरती के उपरान्त भी लोग काफी समय तक नौका विहार करते दीपोत्सव तथा आतिशबाजी का आनन्द उठाते हैं, जब आकाश में भी अननित फुलझरिया तथा सरगवान आकाश में फूटते आसमान की शोभा बढ़ाते रहते हैं तथा उनकी छाया गंगा के निर्मल जल में झिलमिलाती अत्यधिक लुभावनी लगती है। वाराणसी में गंगा अर्धचन्द्राकार वृत्त में प्रवाहित है, अतः किसी भी स्थल से पूरा दृश्य दृष्टिगोचर होता है जो अपने आप में एक अलौकिक दृश्य का सृजन करता है। आकाश में पूर्ण चन्द्रमा तथा धरती पर गंगा का अर्धचन्द्र मानों भगवान शिव का मुकुट ही सुशोभित हो रहा हो।

मान्यता है कि कार्तिक पूर्णिमा को गंगा अथवा किसी भी सरोवर में स्नान दान तथा दीपोत्सव से दुख दरिद्रता का निवारण तथा अत्यधिक पुण्य की प्राप्त होती है। एक बार नारद के पूछने पर भगवान विष्णु ने इसका रहस्य बताते हुए कहा था-एक समय की बात है- गोलोक में कार्तिक मास की पूर्णिमा को राधा महोत्सव धूमधाम से मनाया जा रहा था। परमेश्वर श्री कृष्ण भी भगवती राधा जी की पूजा कर वहीं बैठ गये। तभी सरस्वती देवी वीणा बजाते हुए मधुर गान करते अवतरित हो गईं। प्रत्येक शब्द में रस

के उल्लास की शक्ति भी भरी थी जिसे सुनकर सभी देवता मन्त्रमुग्ध हो गये। सभी देवता अपनी चेतना खो बैठे। बाद में जब वे प्रकृतस्थ हुये तो उन्होंने देखा कि रासमण्डल की जगह जल से आप्लावित है तथा भगवती राधा तथा कृष्ण का कहीं पता नहीं है। ब्रह्माजी ने ध्यान लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि श्री कृष्ण जी के श्रीराधा जी के साथ द्रवीभूत हो जाने से पूरा रासमण्डल जलमय हो गया। सभी देवताओं द्वारा पुनः दर्शन देने की प्रार्थना किये जाने पर आकाशवाणी हुई- मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी शक्ति स्वरूपा श्रीराधा ने भक्तों पर अनुग्रह करने के लिये यह जलमय विग्रह धारण किया है। इस प्रकार भगवानश्रीकृष्ण जी राधा के साथ जलस्वरूप होकर गंगा बन गये। गोलोक से प्रकट होने वाली गंगा का यही रहस्य है। वे कार्तिक पूर्णिमा को ही गंगा के रूप में प्रकट हुये थे। इसी कारण गंगा परम पवित्र होने, भक्ति मुक्ति-

दायिनी तथा परम पूज्य मानी गई।

ऐसी मान्यता है कि वाराणसी में देह त्याग से जीव को मुक्ति प्राप्त होती है। ऐसा संयोग किसी-किसी के भाग्य में ही होता है। इसी धारणा के कारण जो व्यक्ति अपने अंतिम समय में वाराणसी नहीं पहुँच पाते, उनके परिजन आस-पास के क्षेत्रों से अपने प्रिय जन का अंतिम संस्कार ही वाराणसी पहुँचकर गंगा घाट पर करते हैं। इस कार्य के लिये मणिकार्णिका घाट को सर्वोत्तम माना है। देव दीपावली के समय भी मणिकार्णिका घाट पर अनेकों चिताओं की ज्वालायें प्रज्वलित हो रही हैं, दृष्टि गोचर होती है जो देव दीपावली के समूचे वैभव के मध्य अपनी अलग पहचान से बरबस लोगों का ध्यान खींच लेती है, मानो सद्यः प्रयाण कर गई आत्मायें भी देवों के मध्य दीपावली मनाने में लीन हो गई हैं।

चुनार की मृद् कला का स्वरूप

शिवप्रसाद 'कमल'

संभवतः प्रागैतिहासिक काल से ही हमारे पूर्वज मृद्भांड एवं मृद्मूर्तियों के निर्माण में रुचि लेने लगे थे। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा और सिंधुघाटी की खुदाई में मिली वस्तुओं से इसकी प्राचीनता प्रकट होती है। हजारों वर्ष प्राचीन यह मूर्तिकला आज काफी विकसित हो चुकी है। अब तो मिट्टी के अतिरिक्त चीनी मिट्टी और प्लास्टर ऑफ पेरिस की बनी चीजें काफी लोकप्रिय हो गयी हैं। इधर स्वतंत्रता प्राप्त होने के पश्चात् लोगों की आर्थिक दशा सुधरने एवं शिक्षा के प्रसार-प्रचार के कारण लोक-रुचि का परिष्कार हुआ है। इसीलिए आजकल आंतरिक गृह-सज्जा में इन रंग-बिरंगी मूर्तियों का चलन खूब बढ़ा है।

मिट्टी की बनी ये चीजें वैसे तो देश के अनेक भागों में बनती हैं, किंतु उत्तरप्रदेश के मिर्जापुर जिले में स्थित चुनार की बनी मूर्तियाँ और पात्र सर्वत्र खूब प्रचलित हैं। बहुत पहले कुम्हारों की वंश-परम्परा से जुड़े लोग ही इस क्षेत्र में एकाधिकार रखते थे, लेकिन आज अन्य जाति के व्यक्ति भी इस व्यवसाय में आ गये हैं। विशेषकर चीनी मिट्टी एवं प्लास्टर ऑफ पेरिस से बनी वस्तुओं के साथ ऐसा हो रहा है, जबकि चुनार के लाल मिट्टी से बने पात्रों के संग अब भी पारम्परिक परिवार जुड़े हुए हैं।

मृद्मूर्ति कला

अपने देश में किसी भी लोक कला के विकास और आरम्भ होने का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध नहीं हो पाता है। जो कुछ थोड़े विवरण मिलते भी हैं तो उस पर आम सहमति नहीं हो पाती। ठीक यही बात चुनार की मृद् लोक कला की भी है। वैसे लोगों का मानना है- चुनार में मिट्टी की लोक कला की नींव सम्राट अशोक के समय पड़ गयी थी। तथ्य चाहे जो भी हों, किंतु इसका विकास मुगलकाल में सबसे अधिक हुआ। तब से यह कला यहाँ कुटीर उद्योग के रूप में विद्यमान है। चूँकि चुनार गंगा तट पर स्थित है, अतः



यहाँ गंगा में मिलने वाली मिट्टी से ही विभिन्न प्रकार के पात्र, मूर्तियाँ तथा घरों में आंतरिक सजावटी चीजें बनायी जाती हैं। लाल मिट्टी के नाम से विख्यात यह लोककला काल के अनेक थपेड़े सहकर भी आज अपना अस्तित्व बचाए हुए है।

सबसे पहले गंगा तट से इन पात्रों के निर्माण के लिए मिट्टी लायी जाती है। इसके पश्चात् इसे अच्छी तरह रौंद कर कुछ चीजें चाक पर, तो कुछ वस्तुएँ साँचों में डालकर तैयार की जाती हैं। इन्हें अच्छी तरह सुखाकर तब भट्टियों में 700-800 डिग्री फारेनाइट तापमान पर पकाया जाता है। इससे ये चीजें लाल रंग की हो जाती हैं। इसीलिए इन्हें लाल मिट्टी से बनी वस्तुएँ कहा जाता है। इसके बाद इन कलात्मक वस्तुओं को विशेष प्रकार की बनी रासायनिक घोल में डुबोकर निकाल लिया जाता है। धूप में इनके अच्छी तरह सूख जाने पर, इन्हें फिर एक निश्चित तापक्रम पर पकाया जाता है। अब दूसरी बार पकाए जाने पर इनका रूप निखर कर अत्यंत आकर्षक हो जाता है। चूँकि ये पालिश चपड़े की-सी होती है, अतः इन्हें लुक के बर्तनों-पात्रों के नाम से भी जाना जाता है। विभिन्न रंगों की ये छोटदार चीजें इस अंतिम फिनिशिंग के बाद बिक्री के लिए भेज दी जाती हैं।

इन वस्तुओं के तैयार होने में कौन से रसायन किस मात्रा में प्रयोग होते हैं, इसका भेद प्रकट नहीं होता। यह लोक कला पूर्ण रूप से पैतृक एवं गोपनीय है। कहा जाता है कि ये कुम्हार इन रासायनिकों के मिश्रण का अनुपात अपनी पुत्रियों को भी इसलिए नहीं बतलाते कि यह लोककला उनके विवाह के पश्चात् अन्यत्र न चली जाय। मिट्टी के पात्रों पर पालिश किया जाने वाला

यह मिश्रण कब और कहाँ से चुनार के इन कुम्हारों को प्राप्त हुआ, इसकी सही एवं प्रामाणिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ लोगों का मत है कि यह लोककला सम्राट अशोक के काल से आरम्भ होकर मुगलकाल में अपने उत्कर्ष तक पहुँची। कुछ कुम्हारों का मानना है आज की वर्तमान पालिश करने की विधि मुगलकाल में किसी मोहम्मद सादिक नाम के व्यक्ति द्वारा यहाँ लायी गयी। शायद यही कारण है कि हिन्दू कुम्हारों के साथ यहाँ के एक दो मुस्लिम परिवारों में भी यह व्यवसाय किया जाता है। लाल मिट्टी से बने कलमदान, गुलदस्ते, कृष्ण, प्याला और सैकड़ों अन्य पात्र तथा मूर्तियाँ अपना विशिष्ट स्थान रखती हैं। प्रायः पूरे देश के रेलवे स्टालों पर चुनार की बनी ये चीजें बिकती हुई मिल जाती हैं। यद्यपि चीनी मिट्टी के बने पात्रों तथा प्लास्टर ऑफ पेरिस से बनी इंद्रधनुषी रंगों से सुसज्जित चीजों के चलन के कारण लाल मिट्टी से बनी ये कलात्मक वस्तुएँ कम आकर्षक होती हैं, तब भी यह लोककला संघर्ष करते हुए अब भी अपना अस्तित्व बचाने में सफल रही है।

चीनी मिट्टी एवं प्लास्टर लोक कला

जहाँ एक ओर यहाँ निर्मित होने वाले लाल मिट्टी के बर्तनों का इतिहास पुराना है, वहीं चीनी मिट्टी से बनने वाली चीजें यहाँ 1954 ई. में शुरू हुई। उस समय यहाँ एक राजकीय चीनी मिट्टी पात्र विकास केन्द्र की स्थापना हुई। इसके विकास हेतु इसमें रुचि रखने वालों को सरकार द्वारा चाइना क्ले, कोयला, कई रसायन और भट्टियाँ उचित मूल्य पर उपलब्ध करायी गयीं। उत्तरप्रदेश के खुर्जा आदि स्थानों की तरह शुरू में यह योजना यहाँ काफी फली-फली और यहाँ के बने चीनी मिट्टी के पात्र सर्वत्र लोकप्रिय





भी हुए। इसके परिणाम स्वरूप चुनार में इस क्षेत्र में एक नया अध्याय जुड़ा। इसका समुचित विकास होने पर कुछ लोगों ने अपनी निजी भट्टियाँ भी बना लीं और कोयला, चाइना क्ले, रंग-रसायन भी छोटे निर्माणकर्ताओं को उपलब्ध कराने लगे।

इस कला के विकास में राजकीय विकास केन्द्र के सिरेमिक की सहायता से नए डिजाइनों आदि की सुव्यवस्था होने के कारण, यह उद्योग अच्छी स्थिति में आ गया। इसके पश्चात् 1990 ई. का दशक आया। इस काल में जहाँ तमाम सुविधाएँ इससे जुड़े लोगों को मिलनी रुक गयी, वहीं आगे चलकर लाखों रूपयों से बना यह राजकीय चीनी मिट्टी पात्र विकास केन्द्र बंद कर दिया गया। इसे चालू करने के अनेक उच्चस्तरीय प्रयास हुए, किंतु अभी तक कोई प्रगति नहीं हुई। इसके बंद होने से इस धंधे में लगे छोटे

व्यवसायी काफी प्रभावित हुए हैं।

एक ओर जहाँ चीनी-मिट्टी उद्योग से जुड़े लोग अनेक संकटों का सामना कर रहे हैं, वहीं पिछले कुछ वर्षों से प्लास्टर ऑफ पेरिस से बनी रंग-बिरंगी कलात्मक वस्तुएँ नए आयाम जोड़ने में सफल हुई हैं। बेशक इनकी लोकप्रियता बढ़ी है तथा इस लोक कला से जुड़े लोग नए-नए प्रयोगों के द्वारा इसकी अभिवृद्धि में लगे हुए हैं। इससे एक ओर प्लास्टर ऑफ पेरिस उद्योग बढ़ा तो दूसरी ओर लाल मिट्टी और चीनी मिट्टी पात्र उद्योग प्रभावित भी हुआ है, ऐसा इन व्यवसायों से जुड़े लोगों का मानना है। निश्चित रूप से आज के चमक-दमक के युग में प्लास्टर की बनी चीजें हर घर में प्रवेश कर गयी हैं।

अपनी कलात्मक भव्यता, रोचकता और इंद्रधनुषी रंगों वाली ये कलाकृतियाँ जहाँ लोगों को अपनी सम्मोहन शक्ति से अविभूत कर देती हैं, वहीं इसे बनाने वाले कारीगरों और मजदूरों की स्थिति अच्छी नहीं है। एक ओर इन उद्योगों में लगे लोगों को न कोई सरकारी सहायता मिलती है और न कोई प्रोत्साहन, तो दूसरी ओर इनका भविष्य भी अंधकार मय रहता है। अपने बलबूते पर पूरे देश में यहाँ की बनीं ये कलात्मक वस्तुएँ दीपावली और दशहरा पर लगभग एक करोड़ रूपए से अधिक का व्यापार करती हैं। आशा की जानी चाहिए कि कुटीर उद्योग के रूप में विकसित ये लोक कलाएँ भविष्य में भी उन्नत रूप से अपना अस्तित्व बचाए रखेंगी।



उराँव जनजाति में करमा पर्व

निरंजन महावर

करमा का मिथक संपूर्ण मध्यवर्ती भारत की जनजातियों में व्यापक रूप में विद्यमान है। मिर्जापुर से छत्तीसगढ़ तक यह मिथक अनेक रूपों में मिलता है। सभी मिथकों में एक बात सर्वसम्मत है कि इसमें कर्म को महत्ता प्रदान की गई है। कर्म ही जीवन में प्रधान है, उसके बिना जीवन संभव नहीं है। कर्मा की उत्पत्ति की अवधारणा भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न रूपों में मिलती है। कहीं उन्हें घसिया के घर में उत्पन्न होने की बात कही गई है तो कहीं उन्हें चांदभखार के राजा के घर में। उत्तर भारत में गोरखपुर के आसपास एक कथा में कर्मा और धरमा दो भाईयों की कथा विद्यमान है। मुझे इस कथा के विषय में डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने तब बताया था जब वे एक बार खैरागढ़ इन्द्रा संगीत विश्वविद्यालय में आये थे। डॉ. प्रेमलता शर्मा जिन्हें हम आदरपूर्वक बहनजी मानते थे, ने उनके भोजन की व्यवस्था हमारे घर पर ही करवा दी थी। यहाँ से हम सब साथ में ही खैरागढ़ गये थे। वहाँ की कथा के अनुसार करमादेव को कर्म करने वाली जातियाँ थी, ने जिनमें कृषक एवं अन्य जातियों ने अंगीकार कर लिया और धरमा को ब्राह्मणों (द्विज जातियों ने कालान्तर में) ने अपना लिया।

उराँव जनजाति में करमा की कथानुसार इस मिथकीय नायक का जन्म चांदभखार गोंड मुखिया (राजा या जमींदार) के घर हुआ था। उसका आरंभिक नाम घमसान था। यही बालक करमा का प्रतीक था। उसका मन वहाँ नहीं लगा क्योंकि गोंड मुखिया उसकी देखभाल अच्छी तरह नहीं कर रहा था। अतः उन्होंने सरगुजा की रानी के सपने में प्रकट होकर उन्हें बताया कि वह सरगुजा आ रहा है। रानी प्रसन्नतापूर्वक करमा की प्रतीक्षा करने लगी। वह जंगल से करम वृक्ष की शाखा तोड़कर ले आई। उन्होंने बालक-बालिकाओं को बुलाया और उन्हें नये-नये वस्त्र पहनाए और उनका श्रृंगार किया। घमसान के स्वागत में सारी रात नृत्य किया गया। इस स्वागत सत्कार से घमसान बहुत प्रसन्न हुआ।

घमसान के चांदभखार से चले जाने के कारण वहाँ देवी रूष्ट हो गई और उसका प्रकोप हुआ, जिसके कारण लोग भयभीत हो

गये। वे सब लोग सरगुजा घमसान को वापस बुलाने के लिए गये और उनसे वापस चलने हेतु आग्रह करने लगे। तब घमसान ने कहा- 'तुम्हारे करम में यही लिखा था कि मेरी संगत का लाभ न उठा सको। अब तुम करम वृक्ष की एक शाखा ले जाओ और नाच-गाना करके उसकी सेवा करो। ऐसा करने पर मैं प्रसन्न हो जाऊँगा।'

इस कथा से एक बात तो स्पष्ट होती है कि करमा का मिथक मूलरूप से गोंड जनजाति का है और उराँव जनजाति में वह गोंड जनजाति से अपनाया गया। इस क्षेत्र में निवास करने वाली सभी जनजातियों में कर्मा का मिथक विद्यमान है। यहाँ के गोंड, बैगा, उराँव, कंवर, बिंझवार, देवार आदि सभी जनजातियों में करमा का मिथक मिलता है। बस्तर की सभी जनजातियों में जो गोंड समुदाय की ही उपजातियाँ हैं, करमा का मिथक विद्यमान नहीं है। बस्तर के समूचे पठार में न तो करमा का मिथक मिलता है और न ही करमा नृत्य या करमा गीत।

त्यौहार के दिन गाँव के सभी युवक-युवतियाँ एकत्र होकर ग्राम बैगा के यहाँ जाते हैं। वे बैगा के आदेश पर नृत्य करते हुए जंगल में जाते हैं। बैगा वहाँ कर्मावृक्ष की पूजा करता है। बैगा उस वृक्ष की सात बार परिक्रमा करता है और उस पर धागा लपेटता जाता है। उसके पीछे-पीछे ग्राम के युवक-युवतियाँ भी वृक्ष की परिक्रमा करते हैं। फिर बैगा तथा सभी लोग वृक्ष पर पुष्प-अक्षत चढ़ाते हैं और उसे प्रणाम करते हैं। इसके उपरांत एक युवक वृक्ष पर चढ़कर सात बार अपनी कुल्हाड़ी से आघात कर उस वृक्ष की सात शाखाएँ काटकर गिरा देता है। वह कुल सात शाखाएँ ही काटता है। उन कटी हुई शाखाओं को लेकर युवतियाँ एक के पीछे एक कतारबद्ध होकर चलती हैं और उस स्थान पर पहुँचती हैं, जहाँ उन्हें भूमि पर रोपकर स्तंभ की भाँति स्थापित किया जाता है। इस स्थान को अखाड़ा कहते हैं जो एक खुले प्रांगण के समान होता है। ग्राम का मुखिया इस कार्य को सम्पन्न करता है। इस अवसर पर युवक एवं युवतियाँ गीत गाते हैं।

करमा पर्व आरंभ होने के साथ ही सभी परिवार एक-एक टोकरी में जौ बो देते हैं जिनमें सात दिनों में पत्तियाँ निकल आती हैं जिन्हें जवारा कहते हैं। सब लोग इन जवारों के साथ पूजा की सामग्री पुष्प, चिवड़ा, खीरा, आटा, जवाफूल, दतौन आदि लेकर

आते हैं। तब बैगा पूजा करवाता है। इसके उपरान्त करमा (वृक्ष की शाखाओं का) का विसर्जन नृत्य एवं गायन के साथ किया जाता है। करमा पर्व से सम्बन्धित उराँव गीत है-

के कटालम नवा करम डाहर
के कटालम नवा करम डाहर बाबू रे।
राम बाबू कटालम नवा करम डाहर
के झोकलय नवा डाइस बइनि रे।
के झोकलय नवा डाइर
सीता बहिनी झोलकय नवा करम डार।

राम ने करम की नई डाल को काटा। सीता ने उसे ग्रहण किया। इसके उपरांत सात किशोरियाँ उन डालों को लेकर कतारबद्ध होकर अखाड़े की ओर चल पड़ती हैं। उस अवसर पर यह गीत गाती हैं-

करम करम वा दीन बहिनि रे
करम निंगहै सरगे नु राई रे
सरग के नितिया अखेड़ा नु उकिया बहिनि रे
सेवा नगोय, पूजा नगोय रे
सिंदूर चिओय, टीका नीनोय

करम का दिन है। बहिनों! करम स्वर्ग से आया है, अखाड़े में करमा उपस्थित है। उनकी पूजा करो। सिंदूर चढ़ाओ, टीका लगाओ।

करमा की शाखाओं को ग्राम प्रधान अखाड़े में स्थापित करता है। उस अवसर का गीत-

ले ले मझयानी करम गाड़ देले
निंगहै खैक्ख सोनापरी दे मझयानी
निंगहे हाथ रूपापरी रे मझयानी

हे मुखिया! तुम करमा को भूमि पर स्थापित कर दो। तुम्हारे हाथ सोने-चाँदी के हो जाएँगे।

करमा की प्रतिष्ठा हो जाने के उपरान्त युवतियाँ यह गीत गाती हैं-

आज दिन करम राजा रने हो भाने रे
 इन्ने करम आंगोना में ठाढ़े हाइय रे
 इन्ने करम आंगोना ठाढ़ रे
 आज दिन करम बैल अम्भ रे आहार रे
 इन्ने करम दूध के आहार हाइय रे।
 हाय इन्ने करम दूधा के आहार रे।

हे करम देवता! इतने दिनों तक तुमने जंगल में निवास किया। परन्तु आज तुम हमारे आँगन में हो। इतने दिनों तक तुमने जल का आहार किया, परन्तु आज तुम दूध का आहार ग्रहण करो।

करमा का त्यौहार सात दिनों तक चलता है। सातों दिन युवक-युवतियाँ सारी रात नाचते-गाते हैं। इसके उपरान्त करमा विसर्जन का दिन आ जाता है।

सालो रे सातो भैया, बहिन सातो करम गाड़े
 सालो बहिन सेवा करे, हो सातो बहिन सेवा करे
 बहिन जे कमर पेट रसिका जे मांदर बजाय,
 घंटा पटेरा भुंया लवराय हो।

सात भाई और सात बहिन थीं। भाई करमा गाड़ते और बहिन पूजा करतीं। पूजा के समय शंख एवं घंटा बजता। नाचने वालों के कटि पर बँधे घुँघरू और मांदर बजने लगते।

करमा विसर्जन के गीत

नमहा करम कालगी रे गंगा जमुना
 कालगी रे गंगा जमुना कालगी
 किरो सहिया किरो सहिया बारा महीना
 नू किरो रे बारा महीना।

हमारे करम गंगा-जमुना की ओर जा रहे हैं। हे साथी! तुम बारह माह पूरे होने पर आना।

करमा अनुष्ठान

करमा एक अनुष्ठानिक पर्व है जिसका आयोजन क्रार माह के शुक्लपक्ष की एकादशी को मनाया जाता है। करमा वृक्ष की

मान्यता देव रूप में है, उसमें कर्म देवता का निवास है। करमा पर्व बैगा गुनिया द्वारा अनुष्ठानिक विधियों एवं पूजा पाठ से आरंभ होता है। करमा पर्व सामुदायिक रूप में तो मनाया ही जाता है परन्तु प्रत्येक आदिवासी परिवार भी अपने-अपने घरों में इसका विधि-विधान के साथ आयोजन करते हैं। इस अनुष्ठान को 'पलकासना' कहते हैं।

कर्मा पूजा के पूर्व घर के शुद्धिकरण की क्रिया की जाती है। इस क्रिया हेतु बैगा को बुलाया जाता है। बैगा घर में पूजा स्थल पर चौक पूरता है। सम्पूर्ण घर को लीप-पोतकर सफाई की जाती है। 'पलकासना' के अवसर पर परिवार के सभी सदस्य उपस्थित रहते हैं। बैगा कई प्रकार के रंगों के चूर्ण से चौक पूरता है। उसके पश्चात् उस पर चावल के दाने छिड़ककर चौक की आकृति पर एक अण्डा रखता है फिर वह एक-एक सदस्य का पारी-पारी से नाम लेकर मन्त्र का उच्चारण करता है। फिर वह सूप में कुछ चावल रखकर मन्त्रोच्चार के साथ उसे बजाता है। चौक में ही एक दीपक प्रज्वलित करके समीप ही रख दिया जाता है। सूप को बजाने के पश्चात् वह तेंदू की एक छोटी सी लकड़ी के अग्रभाग को चीरकर उसमें तीन-चार इंच लंबे एक लकड़ी के टुकड़े को फँसाकर उसे ओसारे में रख देता है। इससे यह माना जाता है कि घर की शुद्धि हो गई है। इस बात को जाँचने के लिये वह लकड़ी के सात टुकड़ों को चावल के साथ सूपे में रखकर उछालता है जैसे अन्न साफ किया जाता है। लकड़ी के टुकड़ों को सूपे में उछालकर उन्हें चित्त-पट करता है। यदि वे टुकड़े चित्त रूप में दिखाई दें तो समझा जाता है कि शुद्धिकरण का अभिचार सफल हो गया है। ऐसी ही परम्परा स्थानीय कँवर एवं गोंड जन-जातियों में भी प्रचलित हैं।

उराँव जनजाति के गोत्र

उराँव या ओराँव जनजाति छत्तीसगढ़ एवं झारखण्ड की एक महत्वपूर्ण जनजाति है। जशपुर, कोरिया, रायगढ़ एवं सरगुजा छत्तीसगढ़ में इनके निवास क्षेत्र हैं परन्तु अधिक विशाल क्षेत्र इनके निवास का झारखण्ड में है। इस जनजाति में शिक्षा का स्तर काफी ऊँचा है और उच्च शिक्षा प्राप्त अनेक लोग झारखण्ड, छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश में उच्च पदों पर आसीन हैं। अनेक उच्च शिक्षित व्यक्ति भारतीय प्रशासनिक सेवाओं में भी पदस्थ हैं।

इस जनजाति में शिक्षा को उच्च स्तर तक पहुँचाने में ईसाई मिशनरियों का बहुत बड़ा योगदान है। लगभग डेढ़ सौ वर्ष पूर्व रांची में ईसाई मिशनरियों ने जनजातियों के बीच सेवा कार्य आरंभ किया था और उन्होंने उराँव, हो, मुंडा, संथाल तथा अन्य जातियों के मध्य शिक्षा प्रदान करने के उद्देश्य से पाठशालाएँ, कालेज खोले। आदिवासियों में गरीबी तथा पिछड़ेपन के कारण अनेक प्रकार के अंधविश्वास और बीमारियाँ फैली हुई थीं। ईसाई मिशनरियों ने उपचार हेतु अस्पताल खोले तथा स्वास्थ्य के प्रति लोगों में जागृति उत्पन्न की और उन्हें उपचार हेतु जादू-टोने तथा झाड़-फूँक के प्रचलित अंधविश्वास से बाहर निकलने में सहयोग प्रदान किया। उनके सेवा कार्य के प्रभाव स्वरूप इन क्षेत्रों की जनजातियों में ईसाई धर्म का प्रचार हुआ। उराँव जनजाति में ईसाई मतावलम्बियों की संख्या का प्रतिशत काफी ऊँचा है।

ईसाई धर्म स्वीकार कर लेने के बावजूद भी उराँव जनजाति ने अपनी अनेक परम्परा को मानना जारी रखा। उनमें से ही एक प्रमुख परम्परा है उनकी गोत्र परम्परा। यहाँ तक कि ईसाई धर्म अंगीकार करने के बावजूद भी उराँव अपने नाम के साथ अपने गोत्रों का प्रयोग करते हैं और सगोत्र विवाह को वर्जित मानते हैं। ये लोग अपने परम्परागत पर्व-त्यौहारों को अपने स्वजातीय हिन्दू उराँवजनों के साथ मनाते हैं। ईसाई उराँव विवाह की रस्म पहले गिरजाघर में सम्पन्न करते हैं फिर वे अपने घर परिवार में जनजातीय परम्परा से भी विवाह रस्म मनाते हैं।

इस जनजाति में अनेक गोत्र हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे गोत्रों के अतिरिक्त भी बहुत से गोत्र छूट गये होंगे, अतः यह सूची अपूर्ण हो सकती है। उराँव गोत्रों में पशुओं के आधार पर, पक्षियों के आधार पर, मछलियों के आधार पर, स्थानों के आधार पर, खाद्यान्न के नामों के आधार पर, वनस्पतियों के आधार पर तथा अन्य वस्तुओं के आधार पर गोत्रों के नामकरण हुए हैं।

पशुओं के नामों पर आधारित गोत्र और उनके गोत्र अभिप्राय- अड्डो-बैल, अला-कुत्ता, बण्डो-जंगली बिल्ली, बरवा-ढोल या जंगली कुत्ता, चिड्रा-गिलहरी, चिगालो-लोमड़ी, एडगो-चूहा, गाड़ी-बन्दर, हलमान-बंदर (हनुमान), किस्स-सूर, खोया-

जंगली कुत्ता, लकरा-बाघ, रुण्डा-लोमड़ी, निग-बंदर विशेष प्रकार का, तिरकी-छोटा चूहा, ओसगा-चूहा और खैचा-सर्प।

पक्षियों के नाम पर आधारित गोत्र और उनके अभिप्राय- बकुला (बगुला)-पक्षी, ढेंचवा-भुजंगा या भृगराज, गड़ना-सारस, गेंडे-बदक, केरकेट्टा-गौरय्या, कोकरो-मुर्गा, ओर गोड़ा-बाज, खा-खा-कौआ, निरकुवार-निरकी चिड़िया, टोप्पो-लंबी पूँछ वाली एक चिड़िया संभवतः भुजंगा, गिद्धी-गिद्ध, रंका-तोता, चैलेक चेला-एक विशेष पक्षी और लंग टोप्पो-एक विशेष पक्षी।

मछलियों के गोत्र अभिप्राय- आइंद, बींह, केन, खालखो, किन्दुवार, कुन्दुवार, कुसुवा, लिन्डा, लिता, साल, तिडू, किन्डो, मुंजनी, मिंज, गोड़ो (मगर), और एक्का (कुकुआ)।

वृक्षों, फलों एवं वनस्पतियों पर आधारित गोत्र- मदगी (महुआ), कुजुर (विशिष्ट वृक्ष), बखला (एक प्रकार की घास) बाड़र (एक वृक्ष विशेष), बासा (एक प्रकार का वृक्ष), बाड़ा (वृक्ष विशेष), पुतरी (वृक्ष विशेष), रोरी (एक प्रकार का वृक्ष), गोंद्रारी (प्याज), केन्डा (मीठा कंद या शकर कंद), केथी (भाजी तरकारी हेतु), किओंद (एक प्रकार का फल), खैस (धान), किन्डा (खजूर), कुंदरी (कन्दरू), मंजनियार (लता), पुसरा (कुरुम वृक्ष का फल) और चिटखा (पीपल)।

वस्तुओं पर आधारित गोत्र एवं अभिप्राय-पन्ना (लोहा), बंक (नमक) और दादेल (पत्थर शिला)।

स्थान आधारित गोत्र- बंध (बांध) और जुब्बो-दलदल।

खाद्यान्न पर आधारित गोत्र- अमड़ी (चावल का मांढ़), और किस पोट्टा (सुअर की आंत)।

यहाँ गोत्र नाम एवं उनके अभिप्रायों की एक सूची प्रस्तुत की गई है। इन पर आगे भी काम करने की आवश्यकता है। जैसे पक्षियों की पहचान तथा विशिष्ट वृक्षों आदि की पहचान। इसके अतिरिक्त उड़ीसा, झारखण्ड आदि क्षेत्रों में विद्यमान गोत्रों का भी दस्तावेजीकरण करने की आवश्यकता है।

सरना या सरहुल पर्व

सरना पूजा ही सरहुल पर्व है। यह पर्व चैत्र शुक्ल पूर्णिमा के दिन मनाया जाता है। जब शाल वनों में शाल के वृक्ष पुष्पित होने लगते हैं, तब वसन्त की विदाई का समय आ जाता है और ग्रीष्म ऋतु आरंभ हो जाती है। सम्पूर्ण शाल वन शाल के पुष्पों की सुवास से महक उठते हैं। चैत्र की पूर्णिमा एक पर्व के रूप में मध्यवर्ती भारत की जनजातियों में उल्लासपूर्वक मनाई जाती है। बस्तर के आदिवासी इस पर्व को चैतपरब या चैत डांडर के रूप में मनाते हैं। आदिवासियों के लिये यह समय अवकाश का होता है। इस अवसर पर देवी-देवताओं की जात्राओं का आयोजन किया जाता है। हिन्दू चैत्र नवरात्रि मनाते हैं और देवी की आराधना करते हैं। नवरात्र समाप्त होने पर जवारों के साथ देवी की जात्रा का आयोजन किया जाता है। नवमी के दिन रामनवमी पर्व मनाया जाता है। दशमी को देवी की जात्रा में जवारे सिराने हेतु लोग नदी या तालाबों पर गाजे-बाजे के साथ जुलूस बनाकर जाते हैं। इस अवसर पर बहुत से देवी के भक्त जो मनौती रखते हैं, वे लम्बे-लम्बे त्रिशूलों से अपने गालों को छेदकर आपस में बाँधकर जात्रा में सम्मिलित होते हैं।

उराँव जनजाति का यह एक महत्वपूर्ण पर्व है और वर्ष का आरंभ इसी माह से होता है, अतः वे इसे बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। सरहुल के अवसर पर किया जाने वाला नृत्य सरहुल नाच कहलाता है और नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीत सरहुल गीत। यहाँ कुछ सरहुल गीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं। इन गीतों में आदिवासियों के श्रम के प्रति निष्ठा का पता चलता है। इसके अतिरिक्त इन गीतों में श्रृंगार, प्रेम की अभिव्यक्ति भी परिलक्षित होती है। सरहुल नृत्य सम्पूर्ण रात्रि चलते हैं, और सूर्योदय के पूर्व उनका समापन होता है। रात्रि में चावल से बनी हंडिया शराब या महुआ से बनी शराब युवक-युवतियाँ पीकर नृत्य करते हैं।

सरहुल गीत

चानुम चानुम नयगयो
बे-लर लेक्खआ बेंजरा लगदय,
खद्दी चन्दो पड़रो नयगाबो
बे-हर लेक्खआ बेजरा लगदग।

पुजारी प्रतिवर्ष राजा की भाँति विवाह कर रहा है। खद्दी (पर्व) के प्रातःकाल पुजारी राजा की भाँति विवाह कर रहा है।

के कारा डूटी चौरी
लइयो डौड़े गिराल जाये,
रनी का डुरी चौरी
लइयो डौड़े गिराल जाये।

किस (स्त्री) की फुंदरे वाली चोटी और केश बांधने वाली जाली लइयो (नामक) खुले मैदान में गिरी जा रही है। रानी की चोटी और जाली लइयो नामक खुले मैदान में गिरी जा रही है।

झिलमिल रआ नुकुर आ लगी,
चेड़ा पेल्हो मार लवचा
झिलमिल रआ नुकुर आ लगी।

राजा का कलश सोने का है। वह हिल रहा है और झिलमिल झिलमिल कर रहा है। एक अधेड़ स्त्री ने उस कलश को मारा वह हिल रहा है और झिलमिल-झिलमिल कर रहा है।

काला बरा भइया रे बातन बनावआ।
खद्दी पड़री भइया रे बातन बनावआ ॥

हे भाई! तुम वहाँ जाओ और बात पक्की कर आओ। खद्दी पर्व के प्रातःकाल भाई तुम जाओ और बात पक्की कर आओ।

रकम पाड़ाये छोड़ी पाडू
खरा राजी मेन्दरआ लगी,
खरा राजी मेंदरआ लगी।

हे गायक! तुम बहुत ऊँचे स्वर में गाते हो। तुम बहुत जोर से गा रहे हो। तुम्हारा गान दूर-दूर तक सुनाई पड़ रहा है।

नीन ओंग होन पाड़ोय भइया
ए-न ओंग होन पाड़ोन।
अपड़हा अन्बोत पाड़ा पड़री बीरि,
तीन ओंग होन पाड़ोय भइया
ए-न ओंग होन पाड़ोन।

भाई तुम एक बार गाओ। मैं भी एक बार गाऊँगी। लेकिन सुबह होने पर नहीं गाएँगे। तुम एक बार गाओ। मैं भी एक बार गाऊँगी।

कौन बना रे निकसल बनजारा
सिंगारला मिंजूरा के मारय,
हाय पयरी बोरी निकसल बनजारा
सिंगारला मिंजूरा के मारय।

किस वन से बनजारा निकला। जो श्रृंगार किये हुए मयूर को मारता है। हाय! बंजारा प्रातःकाल निकला, जो श्रृंगार किये हुए मयूर को मारता है।

काला बस भइया रे मोरा
पैल्लो निंगहे हीरा लेक्खआ रई,

पइरी बीरि काला बरा भइया रे मोरा
पैल्लो निंगहे हीरा लेक्खआ रई।

युवक से कहते हैं- 'तुम उस लड़की को देखने जाओ वह अत्यन्त सुन्दर है, हीरे की जैसी। सुबह होते ही तुम उस लड़की को देखने जाओ। वह बहुत सुन्दर है, हीरे की जैसी।'

चुंजा किरकी कोय पेल्लो
चुंजा टंगरा नूं गुनाइन लगदी
खदी पइरी किरकी कोय पेल्लो
चुंजा टंगरा नूं गुनाइन लगदी।

तुम धान कूटने गई और ढेंकी के पास खड़ी-खड़ी सोच रही हो। खदी के प्रातःकाल तुम धान कूटने गई किन्तु ढेंकी के पत्थर (मूसल) के पास खड़ी-खड़ी तुम सोच रही हो।

अनुष्ठानिक नृत्य-गीत करमा

प्रो. अश्विनी केशरवानी

विशाल वनों से आच्छादित छत्तीसगढ़ प्राचीन काल से आज तक सबके लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। गीत और नृत्य यहाँ के लोगों के जीवन का आधार है। आनंद-उल्लास और सुख-दुख सभी अवसरों पर गीत गाये जाते हैं। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में विचरण करने वाले इन प्रकृति पुत्रों का वास्तविक स्वरूप उनके गीतों और नृत्यों में परिलक्षित होता है। छत्तीसगढ़ी इस प्रदेश की लोक भाषा है जो लिखित साहित्य के बजाय अलिखित, मौखिक और वाचिक परम्परा के साहित्य से समृद्ध है। वाचिक परम्परा के गीतों में यहाँ गाये जाने वाले विविध अवसरों के लोक गीत हैं। इन गीतों में मानव मन की भावनाएँ झरने की तरह फूटकर निकल पड़ती हैं। इन लोकगीतों को सुविधा के लिए सात भागों में बांटा गया है-

1. संस्कार गीत : इसमें सोहर गीत, बिहाव गीत और पठौनी गीत आते हैं।
2. ऋतुओं से संबंधित गीत : इसमें फाग, बारामासी गीत और सवनाही गीत आते हैं।
3. उत्सव गीत : इसमें छेरछेरा, राउत नाच और सुआ गीत आते हैं।
4. धर्म और पूजा गीत : इसमें गौरा गीत, माता सेवा गीत, जवारा गीत, भोजली गीत, धनकुल गीत और नाग पंचमी गीत प्रमुख हैं।
5. लोरी गीत : बच्चों को सुलाने और उनके मनोरंजन के लिए गाये जाने वाले गीत को लोरी कहते हैं। इसके अलावा इसमें फुगड़ी, कारु-मांऊ, डांडी-पौहा और खुड़वा गीत भी आते हैं।

6. मनोरंजन गीत : इसमें केवल गाये जाने वाले गीत और नृत्य के साथ गाने वाले गीत आते हैं। केवल गाने वाले गीतों में ददरिया, बांसगीत और देवार गीत प्रमुख हैं जबकि नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों में करमा गीत, पंथी गीत, डंडा गीत और नाच गीत (नचोरी) प्रमुख हैं।

7. अन्य स्फुट गीत : इसमें भजन गीत आते हैं।

सब गीतों में कहीं न कहीं मनोरंजन की भावना छिपी होती है। मगर कुछ गीत ऐसे होते हैं जो केवल मनोरंजन के लिए गाये जाते हैं। उनके साथ संस्कार, धर्म और पूजा विशेष की भावना जुड़ी नहीं होती। शहरों से दूर सुविधा विहीन गाँवों के गली कूचों में जीते ग्रामीण जन अपनी मनोभावनाओं को इन्हीं गीतों के माध्यम से व्यक्त करते रहे हैं। हालाँकि आज टी.वी. और रेडियो के फूहड़ फिल्मी गीत इन लोकगीतों के गाने की परम्परा को निगलती जा रहे हैं। लेकिन आज भी ये गीत छत्तीसगढ़ की वादियों में गूँजते हैं।

मनोरंजन के लिए नृत्य के साथ गाये जाने वाले गीतों में करमा गीत प्रमुख है। यद्यपि करमा नृत्य एवं गीत एक धार्मिक पृष्ठभूमि में होते हैं, परन्तु करमा गीतों में धर्म और पूजा की भावना नहीं पायी जाती। ये आनंद और मनोरंजन के गीत ही हैं। इन नृत्य गीतों का कोई निश्चित समय नहीं है। विभिन्न जातियाँ इसका आयोजन करती हैं। प्रमुख रूप से वर्षा ऋतु के प्रारंभ से लेकर फसल के कट जाने तक किसी भी समय ये गीत गाये जाते हैं। करमा गीत के संबंध में अनेक मत हैं। कुछ लोगों का मत है कि करम देवता की पूजा के बाद इन नृत्य गीतों का आयोजन होता है। अतः इन्हें करमा नृत्य और करमा गीत कहा गया है। कर्म का आशय यहाँ कार्य और कुछ लोग भाग्य को मानते हैं। लोककथा के अनुसार करमसेन राजा था, उसके ऊपर विपत्ति आ गयी। उसने मनौती और नृत्य गान किया जिससे उसकी विपत्ति दूर हो गयी। तब से करमा नृत्य गीत की उत्पत्ति मानी जाती है।

डॉ. प्यारेलाल गुप्त के अनुसार करमा गीत एक आनुष्ठानिक गीत है। करमा गीत के संबंध में अनेक बातें प्रचलित हैं। प्राचीन काल में जम्मू दीप रेवा खंड छत्तीसगढ़ की पदमपुरी नामक गाँव में महानदी के किनारे पदमसेन नाम का एक बंजारा रहता था।

उसकी पत्नी का नाम पद्मिन था। ये लोग कंजूसी और बेईमानी से धन संचय किया करते थे। इनके सात पुत्र थे। इनका नाम कलिंगहा, घुघुरहा, लमतूरी, बंदियाहा, फून्दरहा, झांझ मंजीरहा और सरमाहा था। इनके अलावा इनकी एक पुत्री सतवंतीन थी। बंजारा की मृत्यु के बाद बेईमानी से संचित किया धन नष्ट होने लगा। क्योंकि इनके सभी पुत्र अलाल और कामचोर थे। उन्होंने अपने पिता की लाश को जमीन में दफन कर दिया जिससे जमीन अपवित्र हो गयी और उस वर्ष वर्षा नहीं हुई जिससे अकाल पड़ गया। व्यापार करने पर उन्हें हानि हुई। सरमाहा ने श्मशान में खेती की और कामदेव से पीड़ित भावजों को कामदेव को प्रसन्न करने के लिए गीत गाया। इससे उन्हें लाभ हुआ और सब प्रसन्न हो गये। उन्होंने कदम की डगाल को काटकर जमीन में गाड़कर उसकी मिलकर पूजा की और गीत गाकर नृत्य किया। दूसरे दिन उस डगाल को महानदी में सरा दिये जिससे करमदेव उनसे पुनः रूष्ट हो गये। तब सरमाहा उसे लेने महानदी गया। वहाँ पर करमदेव से क्षमा याचना करने पर करमदेव का दर्शन हुआ, तबसे सरमाहा को करमाहा कहा जाने लगा। उसी समय से करमा गीत गाये जाने लगे। इस नृत्य गीत में स्त्री और पुरुष दोनों भाग लेते हैं। स्त्री-पुरुष एक पंक्ति गाते हुए झुककर आगे बढ़ते हैं और दूसरी पंक्ति को गाते हुए सीधा होकर अपने पूर्व स्थान को लौट आते हैं। देखिये करमा गीत की एक बानगी-

चोला रोवत हे राम बिन देखे परान
दादर झांवर झाड़ी ढूँढो डोंगर बीच मंझाय।
सबै परेतन तोला ढूँढौ कहां लूके हे जाय ॥
चोला रोवत हे राम बिन देखे परान
माया ला तै कस के टोरे सुरता मोर भुलाय।
मोर मड़इया सूनी करके कहां करे पहुँचाई ॥
चोला रोवत हे राम बिन देखे परान
इन नैना मा नींद नहीं आये हिरदा होइगे सूना।
डोंगरी उहरी तोला ढूँढौ विपदा बढ़गे दूना ॥
चोला रोवत हे राम बिन देखे परान

स्तुति विषयक करमा गीत भी प्रस्तुत है-

पहली पंवारों गौरी, फेर गाबो देवी शारदा
काकर गावो, काकर बजाओ, सुरसती के करो परनाम

कहाँ बैठे जोगनी कहाँ बैठे देवी शारदा

काहे मा गुरू बनाही।

मांदर बैठे मोर जगमोहन जोगनी जिभिया बैठी शारदा

काहे मा गुरू बनाही ॥

सरगुजा का यह प्रमुख गीत है। वहाँ के जनजीवन में करमा गीत रचे-बसे है। वहाँ गाये जाने वाले करमा गीत की एक बानगी पेश है-

चल सखी करमा रमाय मोर मया लागे।

कहाँ के सुरसती कहाँ के जोगिन मोर

अखरा के सुरसती, खर्रा के जोगन मोर।

करमा त्यौहार मनाने के पूर्व सब देवताओं का आह्वान किया जाता है। कलकत्ता की काली माई और संबलपुर की समलाई दाई इस क्षेत्र में बहुत लोकप्रिय है। देखिये एक गीत :-

हरे सुमरिन करौं रे,

यहीं अंगनइया मा सुमरन करौं,

एक सुमिरन में चंदा सुरुज ॥ हरे.....

एक सुमिरो धरती अकास ॥ हरे.....

एक सुमरिन चारों देवता ला,

गांव के गंवटिया ठाकुर देवता रे ॥ हरे

कलकत्ता के काली माई संबलपुर की समलाई

लाफा के बुढ़वा देव, छूरी के कोसगई ॥ हरे.....

करमा नृत्य केवल छत्तीसगढ़ में ही नहीं बल्कि उड़ीसा और बिहार के वनांचल प्रदेश में भी प्रचलित है। सरगुजा में इसे उत्सव के रूप में मनाया जाता है। विंध्य प्रदेश के लोकगीत संग्रह में श्रीचंद्र जैन ने करमा गीत के प्रकारों का बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। प्रत्येक करमा गीत के तीन भाग होते हैं- राग, टेक और आड़। राग गीत के प्रारंभिक भाग को कहते हैं। इसके द्वारा नाचने वालों को गाई जाने वाली धुन का ज्ञान हो जाता है। राग से ही नृत्य की भूमिका बंधती है। राग के भाव निम्नानुसार है-

1. अहो हे अहो हे हे

2. ओ हा हे हे हे

3. आ हो हो रे हो

4. ओ हो हो रे हो

गायन शैली के भेद के अनुसार करमा गीत झूमर, लंगड़ा, लहकी, ठाढ़ा और रागिनी पाँच प्रभेद हैं। इन प्रभेदों का मूल नृत्यकारों और नर्तकियों के शारीरिक अंग संचालन की विधि पर आधारित होता है। एक पैर को झुकाकर गाया जाने वाला गीत लंगड़ा कहलाता है। जो गीत झूम-झूमकर गाये जाते हैं उसे झूमर कहते हैं। लहराते हुए नृत्य करते गीत को लहकी और ठाढ़ा के गीत को खड़े होकर गाया जाता है। राग-रागिनी के पुट लिए गीत रागिनी कहे जाते हैं। दादरा, ताल और खेमटा के अंतर्गत करमा गीतों की स्वर लिपियाँ भी तैयार की गयी हैं।

‘गोलेन्दा जोड़ा’ यह प्रेम भरा एक संबोधन है। अधिकतर गाँवों में ऐसे कई सुंदर शब्दों का गठन कर लिया जाता है जिससे वे आपस में एक दूसरे का नाम न लेकर ऐसे ही संबोधन कारक शब्दों का प्रयोग करते हैं। जैसे जवारा, भोजली, गोंदाफूल आदि। देखिये एक गीत-

चला नाचे जाबो रे, गोलेन्दा जोड़ा

करमा तिहार आये हे, नाचे जाबो रे।

पहली मैं सुमिरौं सरस्वती माई रे

पाछू गौरी गणेश रे, गोलेन्दा जोड़ा.... ॥

गाँव के देवी देवता के पदयां लागो रे

गोड़ लागौं गुरूदेव के रे, गोलेन्दा जोड़ाक।

करमा गीत को मांदर बजाकर जब गाया जाता है तब युवक-युवतियों का मन बौरा जाता है- मांदर की थाप नहीं जैसे श्रीकृष्ण की बंशी हो गयी, जिसे सुनकर गोपियाँ खिंची चली आती थी। देखिये गीत की एक बानगी-

ये मांदर बाजे, रून्दा बांस रे

हाय राम सुतले चले आय,

चतुर खेला रे, सुतले समरो चले आय

जबकि सुतले समरो चले आय रे

हाय राम, आके अखरा भइगे ठाढ़

जबकि आयके अखरा भइगे ठाढ़ रे

हाय राम, दिले हिले सिंकरी धराय, चतुर खेलारे...।

जबकि तो हिले हिले सिकरी धराय रे
हाय राम, नाचे लगे कनिहा डुलाय, चतुर खेलारे... ।
जबकि तो पंख जोहियो गीत गाय रे
हाय राम, उलथी पलथी मांदर डोलाय, चतुर खेलारे... ।

ज्यों ही रात में मांदर बजना आरंभ होता है त्यों ही युवतियाँ निद्रा त्यागकर 'अंखरा' या करमा नृत्य गीत स्थल पर श्रृंगार करके पहुँच जाती हैं। उसके एक-एक अंग के आभूषण और वस्त्र सौंदर्य की छटा में चार चाँद लगा रहे हैं। करमा गीत सुनकर वह अपने को नृत्य करने से नहीं रोक पा रही है।

हौरै हौरै, घीच बेनी भुजा डारे
मांग में तो सेंदुरा बिराजे
घीच बेनी भुजा डारे ।
हाजी पैर के प्यारी ललकारे-घीच....
पिंडरी चुरूवा ललकारे-घीच....
जांघ के जंघिया ललकारे-घीच....
कनिहा लंहगा ललकारे-घीच....
छाती के चोलिया ललकारे-घीच....
गला के सुतली ललकारे-घीच....
नाक के नथुली ललकारे-घीच....
माघ के मघोटा ललकारे-घीच....

करमा गीत में यह 'नख-शिख' का वर्णन अपूर्व और अनूठा है। 'ललकारे' शब्द में तो जान भरी हुई है। प्रत्येक अंग, आभूषण और वस्त्र सभी उमंग से भरे हुये हैं। इस गीत में मुनगा पेड़ की तुलना नवयौवना स्त्री और उसकी डाल की तुलना युवती की कोमल झुकी हुई भुजाओं से की गई है-

छोटे-छोटे मुनगा, तीमा लुरे डार हो। छोटे....
मोर बर ककनी गड़ा देवा हो। छोटे....
ककनी गढ़ैया गये हे रतनपुरिहा,
तीर तगान सोनहरिया नइतो दिखय। छोटे
मोर बर सुआ कटार ककनी गढ़ा देवा हो,
मोर बर छोटे-छोटे बहंटी गढ़ा देवा हो। छोटे....

इसी प्रकार प्रेमगीत की एक बानगी पेश है। इस गीत में

युवक अपनी प्रेयसी से कहता है कि मैं मंडला का रहने वाला हूँ इतनी दूर तुम्हारे प्रेम के कारण ही आया हूँ। तब युवती कहती है कि प्रेम की बातें सभी करते हैं परन्तु जिंदगी भर साथ निभा सको तभी तुम्हें सच्चा प्रेमी जानों-

हाय रे मया मा आयेंव राम,
तोर बुलाये नइ आयेंव, मया मा आयेंव रे ।
करिया तो भांटा पतेल पानी, हो पतेल पानी,
मैं तो मंडला के रहवइया, लेलेहू बानी ।
चांदी के मुंदरी अठत्री भर ठीक हो अठत्री भर ठीक,
जिंदगानी ला निभावै, तभै मैं तो जानो ठीक ।
गयेन जंगलवा, टोरेने फूल पान हो, टोरेन फूल पान,
तोला नइ आवय करमा, इन तो दे तैं परान ।

करमा गीत अधिकतर स्थानीय समस्या को स्थिति के अनुसार तुरंत बनाकर भी गाये जाते हैं। कभी-कभी कोई परिस्थिति और घटना बड़ी प्रभावशील होती है। उनसे संबंधित गीत काफी समय तक लोक जीवन में प्रचलित रहता है। अन्यथा करमा गीत बहती गंगा है- जो आज सुनने को मिला वह कल नहीं मिलेगा। तत्काल बनाये गीत की बानगी पेश है-

हाय रे हाय, मन बोधना, चले आबे हमार अंगना,
मन बोधना ।
तुंहरे अंगना मा छपल छिया पानी, पानी उलचि चले आबे... ।
तुंहरे अंगना मा कराही कुकुर ठाढ़े, कराही कुकुर ला
सकरी मा बांधे चले आबे..... ।

एक अन्य गीत है-

ले जाबे कोइली कछार, जोड़ी मोला ले जाबे रे ।
ले जाहूं कोइली कछार, जोड़ी तोला ले जाहू रे ।
झिरिया के पानी छलक बहना रे
रोइहें चोला हमार ।
झांवर के रेरा कठिन चलना रे,
कइसे के पाहूं किनार ।
डोंगर देवारी में जरथे पतेरा,
सब बन होथैं उजार ।
डोंगर के डहरी कठिन भुलनी के

कोन कोती करबो गुहार
ले जाबो कोइली कछार।

एक कथानक का भाव देखिये। इसमें रतन कुमारी नामक युवती को बेर के पेड़ के नीचे कांटा गड़ गया है जिसे निकालना उसके वश की बात नहीं है। उसी समय उसका प्रियतम उधर से निकलता है। उनसे अनेक अनुनय विनय करने पर जब उसका प्रियतम कांटा नहीं निकालता तब उसे अपनी प्रेम देने की बात कहती है और वह तत्काल कांटा निकाल देता है—

हां हां रे रतन बोइर तरी रे
गड़े हे मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
ओही मा ले नहकय डिंडवा रे, छैलवा
हेर देबे मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
कांटा हेरउनी का भूती देबे,
हेर देहू मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
ले लेबे भइया थारी भर रूपइया
हेर देबे मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
थारी भर रूपइया तोरे घर भावय
नइ हेरंव मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
ले लेबे भइया लहुरि ननदिया
हेर देबे मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
लहुरि ननदिया तोर घर भावय
नइ हेरंव मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।
ले लेबे छैलवा मोरे रस बुंदिया
हेर देहंव मैनहरी कांटा, रतन बोइर तरी रे।

‘मैनहरी कांटा’ में सुंदर भाव छिपा है। पारस्परिक प्रेम के वशीभूत होकर एक दूसरे का सामीप्य प्राप्त करने के लिए कांटा गड़ना और उसे निकालने के लिए प्रिय द्वारा मेहनताना मांगने का सरस प्रसंग उपस्थित करता है। इसी प्रकार गोंड जाति में विवाह के पश्चात् गाँव के जलाशय में ‘सह स्नान’ के लिए वर-वधू को बाँस के बने परे बिठाकर पानी में खींचने का दृश्य बड़ा मनमोहक होता है। गीत है—

हां हां रे, गोरी पियरी रचावंव, तोर अचरा ला रे।
हाथे ककइया धरे ठेकवा मां तेल

सोन कलश लेके जमुना मा पेल। पियरी....
आगु ननदिया चले पाछे मा भौजाई
पानी भीतर संग सहेली करत हय किलकाई। पियरी....

इसी प्रकार अपने चिर सहचरी के बिछुड़ने पर प्रेमी का सहज एवं सरल उद्गार मन को हिला देता है। देखिए एक गीत—

हाय रे गोंदा बने रे सइयां जी के गोद फूल गोंदा बने रे।
तोला गियां बदेवं अच्छा संगी जानके, मैं गियां बदेवं रे,
एक झलक दिखा के, ते तो पहुना बने रे हाय रे फूल....
छोटकन ले संग संग डोलेन, अब तो भये होशियार,
कांधे के ओढ़ना मूड़े मा चढ़ गये गरब टूटे ससुराल,
हाय रे फूल....
न सुख पाये भाई ददा घर पाई ससुरार
न सुख जाने संगी जंवरिया के, हाय आज चले ससुरार,
हाय रे फूल....

‘फूल गोंदा बने रे’ में श्लेष है। एक ओर वह युवती के लिए प्रयुक्त है कि कली जैसे फूल बन गई हो, जिसका तात्पर्य यौवनावस्था को प्राप्त युवती से है। दूसरी ओर ‘सइयां जी’ के गोद फूल गोंदा बने रे ‘यहाँ प्रियतम’ की गोद ही मानों पुष्प की सेज हो?

नई नवेली दुल्हन से सास जाम झरिया नदी से पानी लाने को कहती है। बेचारी परेशान होकर सोचती है कि जाम झरिया कहाँ है और वह अकेली वहाँ कैसे पहुँचेगी? तभी गाँव की महिला उसे बताती है कि सामने की पहाड़ी को पार करने पर जाम झरिया नदी मिल जायेगी। गीत है—

हाय रे हाय
मैं तो नहीं जानों जी, कहां बोहावे जाम झरिया।
घर से निकले फरिका मेर ठाढ़े, कहां बोहावे जाम झरिया।
डोंगरी च डोंगरी तै चढ़ि जाबे, नीचे बोहावे जाम झरिया।
एक कोस रेंगे, दूसर कोस रेंगे,
तीसर मा पहुँचे जाम झरिया।
हाथे मा गगरी मूढ़े मा गुढ़री, खड़े देखय जाम झरिया।

करमा गीत के एक प्रसंग में नदी पार रहने वाली एक स्त्री

अपने दूधमुँहे बच्चे को छोड़ आयी है। अब जब वह नदी पार जाना चाहती है तो नदी में भंवरे बनते देख नाविक उसे मना करता है और अपने घर में आतिथ्य स्वीकार करने को कहता है। मगर मातृत्व भावना से सम्पृक्त स्त्री नाविक से किसी भी तरह नदी पार कराने को कहती है-

नदिया भौना मारे
कइसे नकाबे नदी पार रे। नदिया....
आज के रतिया रहिबसि लेबे
कालि नकाबो पार रे। नदिया.....
दिने खवाहूँ खाड़ा मछरिया,
राते ओढ़ाहूँ भंवर जाल रे। नदिया....
रहेला रहितंव राती तोरे टेपरिया
कोरा के बलमवा के खियाल रे। नदिया....

भाई-बहन का एक प्रसंग देखिए-

हाय तिरिया भंवरा बनके राम
निकल चले परदेश तिरिया भंवर बनके रे।
भाई भाई कहत रहेंव, भाई है परदेश
देखे रे भाई है परदेश
आन खाये पान-सुपारी मोला है संदेश। तिरिया....

इसी प्रकार छत्तीसगढ़ में देवर-भाभी के बीच मजाक करने का रिश्ता होता है। इस गीत के प्रत्येक पंक्ति में उलाहना, मान-मनौव्वल का बड़ा सुंदर वर्णन है-

ओ हो रे, हाय रात झिम झिम करे,
उठ देवरा कंदरा बजावा हो। रात झिम झिम करे.... ।
कय दो मोहर कर केंदरा रे केंदरा,
कय दो मोहर ओकर तार हो। रात झिम झिम करे.... ।
दसे मोहर कर केंदरा रे केंदरा,
बीसे मोहर ओकर तार हो। रात झिम झिम करे..... ।
हल जोती आवे कुक्षारी भाजी आवे,
लगे देवरा केंदरा बजावा हो। रात झिम झिम करे.... ।
फूट गये केंदरा बजावा हो। टूट गये तार हो,
कइसे बजावा गोइ केंदरा हो। रात झिम झिम करे..... ।

तुंहर बने केंदरा तुंहर बने तार हो,
कइसे पतियावव तुंहर बात हो। रात झिम झिम करे..... ।

पति-पत्नी के बीच हँसी-मजाक होता है। इस गीत में पति अपनी पत्नी से कहता है कि मैं तुम्हें मोंगरी मछरी पकाते देखा है और तुम सूखा साग परस रही हो, इच्छा होती है कि तुम्हें दो-चार तुरारी मार दूँ। तब पत्नी कहती है कि तुम मुझे मारोगे तो मैं मायके चली जाऊँगी। पति फिर कहता है कि मैं दूसरी शादी कर लूँगा। पत्नी कहती है कि मुझ जैसा सुंदर चेहरा तुम्हें कहाँ मिलेगा। पति जवाब में कहता है कि तुम्हारा ऐसा सुंदर चेहरा लेकर मैं क्या करूँगा... ?

रांधत देखेंव मोंगरी मछरी
परसत देखेंव भोंगा सागे।
अइसन सुवारी बर बड़ गुस्सा लागे,
मारतें तुतारी दुई चारें।
मारिहा तुतारी दुई चारें।
चलि देबो मइके हमारे।
मसके देहा मइके तुम्हारे,
कर लेब दूसर बिहाव।
कर लेइहा दूसर बिहाव, हमर सूरत कहां पइहा।
अइसन सुघरई का करबो, चिटको तो चाल कहर नइहे।

गाँव में अकाल पड़ जाने से किसान परिवार की जो हालत होती है वह अवर्णनीय है। देखिए एक गीत-

नइ गिरय पानी बूंदी, नइ पाके धान,
नइ मिलय गढ़ा कुदारी, नइ बांचय परान,
देस दुनिया के अइसन दुरदसा हो गय ना।
आगू आगू पानी चलय पाडू मा गेजा,
कागज मा नोंट बनाय कपड़ा के तेजा। देस दुनिया के.... ।
व्यापारी अउ सूद खोरन करथय अइबर मजा,
हमर जान सांसत में पड़ गय, हमर हो गय सजा।
देस दुनिया के.... ।

किसान को अपना खेत और अपने गाँव से इतना लगाव होता है कि वह सुविधा विहीन गाँव में फटा-पुराना पहनकर और

रुखा-सूखा खाकर भी रहना मंजूर कर लेता है। देखिए एक गीत-

हरे मैं तो गांव मा रहिहौं गा,
बिरदा बसंती हा मोला नीक लागे गा।
तता तता नागर जोते, तात कलेवा खाय,
फटे पुराना कपड़ा पहिन, अपन दिन बिताय।
जैसे जैसे घर बने हे वैसे हे फुलवारी
भाई भाई मा मेल बने हे, मालिक हे बलिहारी।

इस गीत में जीवन की एक मनोरम झाँकी देखिए-

जियत जनम लेबे, हंसि लेबे खेलि लेबे
फेर ये दुरलभ संसार।
के दिन जीबो राम जिनगी के नइये भरोसा
जिनकी के नइये भरोसा ये जी ला लेके कहां भागे
मोर जम के आगू
ये छान्ही ओ छान्ही कूदय बिलैया
हम परदेसी दूरिहा के रहइया,
लकर धकर आवत होही मोर अलबेला
कोन जाने बलम ला भेंटहूं कि नइ
कोरे गांथे मांग संवारे दरपन मा छइहां देखे
कोन जाने बलम संग भेंटहूं कि नइ।

मारीच वध की कथा को करमा गीत में किस प्रकार व्यक्त किया गया है, देखिए एक बानगी-

बिपति परे हे रघुबीरा, मोर धावन हो लखन बलबीरा।
सुन सुन माता, मोर माता जनकिया, अजर अमर रघुबीरा।

आज मैं जानेंव बाबू, तुंहरो मन पाप, भाई बर नइहे पीरा।
छिन मा सराप देहों, देवर सेवर नइ चिनिहौं,
गरिबरी जाइहो सरीरा
अतका बचन सुनिन, गोबर के रेखा खींचिन चले
जाथय जहां रघुबीरा

शबरी के बेर खाकर भगवान श्रीराम ने उन्हें मोक्ष प्रदान किया। देखिए करमा गीत-

सबरी जोहथय पथ मारे कब आही प्रभु मोरे।
सुनहिन गइया के गोबर मंगा के,
अपन आंगन ला लिप डारे।
चिख चिख बोइर कुंदेला टोरे, करू कसा ला अपन खावे,
मीठ मीठ ला चंगोरा चारे।

सरगुजा के सीतापुर, जशपुर, धरमजयगढ़ के आदिवासी करमा नृत्य को वर्ष में केवल चार दिन उत्सव के रूप में मनाकर नाचते-गाते हैं। एकादशी करमा नवाखाई के उपलक्ष में, भादों में पुत्र प्राप्ति और उसकी मंगल कामना के लिए, उठाई करमा नृत्य क्रार में, भाई-बहन के प्रेम से संबंधित दसाई करमा नृत्य किया जाता है। दीपावली के अवसर पर नृत्य गीत प्रेम रस में डूबा होता है।

इस प्रकार वाचिक परम्परा पर आधारित करमा गीत आज लुप्त होने लगा है। क्योंकि इस युग में मनोरंजन के अनेक साधन हैं। ग्रामीण जनों का झुकाव भी फिल्मी गीतों की ओर बढ़ गया है। करमा नृत्य गीत के आयोजन में अत्याधिक खर्च आने के कारण लोग इसका आयोजन नहीं कर पाते। अतः इसके अस्तित्व को बचाने का सामूहिक प्रयास होने चाहिए।

निमाड़ का दर्शनीय स्थान मांधाता

गजानन वर्मा

मोरटका से कुछ मील ऊपर की तरफ, जहाँ अजमेर-खण्डवा के बीच चलने वाली ट्रेन नर्मदा को पार करती है, मांधाता नामक ऐतिहासिक स्थान है। सदियों से यह स्थान यात्रियों के आकर्षण का केन्द्र रहा है। हिन्दू धर्मानुसार नर्मदा नदी भारत वर्ष में अत्यंत पवित्र नदी मानी गई है। हिन्दुओं में ऐसा विश्वास है कि इसके मुहाने से लेकर इसके उद्गम स्थान अमरकंटक तक इसकी परिक्रमा करने से मोक्ष प्राप्त होता है। नित्य प्रति असंख्य यात्री एवं साधुसंत गोदारपुर नामक गाँव को आते हैं जो सामने एक सँकरे प्रवेश मार्ग पर मनोरमता से बसा हुआ है। मांधाता का स्थान नदी के ऊपर एक ऊँचे हरे रंग की चट्टान वाली पहाड़ी पर है। इस पहाड़ी से नीचे जाने वाले रास्तों पर नदी के किनारे अनेक मंदिर, धर्मशालाएँ और धर्मस्थल बने हुए हैं। किनारे पर कई बड़ी-बड़ी नावें, यात्रियों के झुण्ड के झुण्ड को इस पार से उस पार ले जाने के लिए खड़ी रहती हैं। छोटे-छोटे बच्चे नर्मदा माई में मछलियों को खिलाने के लिये चने डालते हैं और सैकड़ों मछलियों की छप-छप की आवाज़ और जलक्रीड़ा का आनंद उठाते दिखाई देते हैं। इससे किनारों पर बँधी छोटी नावें कभी-कभी उलट जाती हैं। इस द्वीप के पूर्वी सिरे से जहाँ नर्मदा दो हिस्सों में विभाजित हो गई है, लट्टों के बने हुए बड़े-बड़े बेड़े पानी में बाँस डालते हुए आते हैं जो पानी पर तैरते हुए नाविकों के छोटे-छोटे घर होते हैं। ये लोग आसपास के जंगलों से बाँस काटकर लाते हैं और नदी द्वारा रेल अथवा मुख्य सड़क तक पहुँचाते हैं।

नदी के दूसरे किनारे पर श्रेणीबद्ध दूकानें और अन्य इमारतों के पीछे चमकीले श्वेत महल और मंदिर अपनी भव्यता के साथ खड़े दिखाई देते हैं। जैसे ही नाव किनारे के पास पहुँचती है, स्त्रियों और नंगे बदन आदमी पानी में से पैसे निकालने की आशा से डुबकी लगाकर तैरते हुए दिखाई देते हैं। हर प्रकार के यात्रियों के झुण्ड अपनी भड़कीली पोशाकों में घाटों पर नाव से उतरते हैं और साधुओं के दल उनको अपना यजमान मानकर उनका स्वागत करते हैं। ये साधु और पुरोहित लोग इस पहाड़ी की तह में खुदी हुई

छोटी-छोटी कोठरियों में रहते हैं। इन सब में एक सफेद बाल वाली बूढ़ी महिला दिखी जो ढीला वस्त्र पहने थी और जिसकी कमर में चाँदी की कर्धनी बँधी थी, अपने उच्चारित मंत्रों से सब को उसने आश्चर्य में डाल दिया। मंत्र बोलते समय वह हाथ में पकड़ी हुई एक लम्बी लाठी को घुमाती थी। उसके इन श्वेत वस्त्रों और वृद्ध चेहरे से एक प्रकार की तेजस्विता टपकती थी। उसकी मंत्रोच्चारित आवाज अभी हमारे कानों में गूँज रही है।

यहाँ से सीढ़ियों द्वारा यात्रियों के साथ-साथ हम ऊपर आये। ऊपर मांघाता एक बड़ा बाजार है जो इस स्थान की मुख्य सड़क है। यहाँ पर सुन्दर दूकानें हैं जिनमें कई प्रकार की वस्तुएँ बिकती हैं। यहाँ से यात्री लोग यात्रा की स्मृति स्वरूप चीजें खरीदकर अपने साथ ले जाते हैं। रंग-बिरंगे रेशम के हार, मालाएँ, मूर्तियाँ, शंख, पूजा सामग्री इत्यादि काफी तादाद में बिकते हैं। जब हम बाजार में इन दूकानों को देखते हुए घूम रहे थे, यकायक ओंकारेश्वर मंदिर में बजने वाले भव्य नगाड़ों की ध्वनि ने हमारा ध्यान आकर्षित किया। सारा जन-समूह इस ध्वनि की ओर बढ़ने लगा और हम भी चल पड़े।

ओंकारेश्वर शिव के 12 अवतारों में से एक अवतार माने गये हैं और यह मंदिर भारत के 12 ज्योतिर्लिंगों में से एक है। नगाड़ों का नाद बन्द होने पर गायक जन एक गैलरी में जा बैठे और उन्होंने मधुर स्वरों में अपने-अपने वाद्यों को बजाना शुरू किया। ये लोग वाद्यों पर शंकर की नित्य स्तुति और उनके सम्बन्ध में भजन कीर्तन करते हैं। बहुत नीचे की तरफ नर्मदा अपनी उताल तरंगों से किनारों का आलिंगन करती हुई बहती हैं। किनारे पर ऊँची चट्टानों से नदी का टकराकर बहना अत्यन्त मनोहर दृश्य उपस्थित करता है। ओंकारेश्वर का मंदिर भव्य और सुन्दर है जो दूर से दिखाई देता है।

ओंकारेश्वर के पूर्व में लगभग पौन मील की दूरी पर 'वीर शिला' नामक एक ऊँची और सीधी चट्टान है जिस पर से 1824 तक कार्तिक यात्रा के दिनों में परम् धार्मिक भक्तजन नीचे पानी में उड़ी लगाकर अपने जीवन का बलिदान दिया करते थे। उनका विश्वास था कि नर्मदा में इस प्रकार प्राण देने से वे अपने पुनर्जन्म में राजा अथवा महापुरुषों की योनि प्राप्त करेंगे। यह भारतीय

अन्धविश्वास का एक उदाहरण है। सर जॉन मालकम के समय में यह प्रथा रोक दी गई थी। यहाँ उस जमाने की एक घटना सुनने को मिली कि मन्दसौर के कुलमी जाति के एक युवा पति-पत्नी ने सन् 1918 में परतापगढ़ के राजा के भाई के काफी रोकने और समझाने पर भी अपना बलिदान दिया था। यह भी सुनने में आया कि दूसरे ही वर्ष एक और युवक ने बद्रीनाथ की यात्रा करने का संकल्प किया था परन्तु पैसों की व्यवस्था न होने के कारण वह यात्रा पर नहीं जा सका था अतः उसने नर्मदा में अपना बलिदान देने का साहस किया था, परन्तु बड़वानी के एक आदमी ने जब उसे बद्रीनाथ की यात्रा का खर्च देने का प्रस्ताव रखा तो उसने बलिदान देने का विचार त्याग दिया था। लोगों ने बताया कि अन्तिम बलिदान सन् 1824 में एक 20 वर्षीय युवक ने दिया था। एक अंग्रेज ऑफिसर ने अपनी आँखों से वह दृश्य देखा था और उसने इसका बड़ा मार्मिक वर्णन लिखा बताया जाता है। चारों ओर दर्शकगण स्तब्ध खड़े हुए हैं और एक लड़का चट्टान के सिरे पर अपने दोनों हाथों को फैलाए मुक्ति की प्रार्थना करते हुए अपना बलिदान देने को आतुर खड़ा है। एक क्षण बाद ही वह लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया और नीचे नर्मदा की सतह पर एक क्षीण रेखा खिंच गई। लोगों ने देखा कि उसके गिरते ही चट्टान पर उसके टुकड़े-टुकड़े उड़ गये। उस समय से आज तक मानवी बलिदानों की जगह बकरे का बलिदान दिया जाता है, ऐसा लोगों ने बताया।

स्कंद पुराण के रेवाखण्ड में ओंकार क्षेत्र एवं मांघाता राजवंश के बारे में विवरण मिलता है। यह कितना सत्य है या दन्तकथा मात्र है, कहा नहीं जा सकता। बताया जाता है कि ओंकार क्षेत्र देवताओं, ऋषियों, सिद्धों, तपस्वियों और राजाओं की जप-तप एवं यज्ञ कर्म की भूमि रही है। कहते हैं यौवनाश्व नाम के इक्ष्वाकु वंशीय राजा ने यहाँ अनेक अश्वमेघ यज्ञ किये थे। यौवनाश्व को कोई पुत्र नहीं था और वे इस दुःख में अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में मंत्रियों को राज्य का भार सौंपकर तपस्या के लिये चले गये थे। एक दिन वे प्यास से व्याकुल पानी की तलाश में भटकते हुए किसी यज्ञस्थल पर पहुँच गये। रात का समय था और वे 'पानी-पानी' चिल्लाते रहे पर किसी ने उनकी आवाज नहीं सुनी। जो भी लोग वहाँ रहे होंगे, वे गहरी नींद में सोए हुए थे। यकायक राजा को यज्ञ वेदी के पास जल से भरा कलश दिखाई

दिया और उन्होंने उसे उठाकर गटागत पी लिया। जल से तृप्त होकर वे फिर तपस्या हेतु वन में चले गए।

राज्य के स्वामीभक्त मंत्रियों ने विचार किया कि रानी निःसंतान महल में अकेली है। उत्तराधिकारी के अभाव में राज्य सूना है, ऐसी स्थिति में यदि वरुण का यज्ञ कराया जाय और यज्ञ पूरा होने पर अभिमंत्रित जल रानी को पिलाया जा सके तो सम्भवतः संतान उत्पन्न हो जाय। मंत्रियों ने ओंकार क्षेत्र के पवित्र स्थान में यज्ञ शुरू कराया और जल को मंत्रों द्वारा श्रीवृद्ध कराया। यह सब कार्य ऋषियों-पुरोहितों ने किया। संयोग देखिये कि उसी रात तपस्वी राजा प्यास से व्याकुल वहाँ आये और उन्होंने वह अभिमंत्रित जल पी लिया। प्रातः काल उस यज्ञस्थल पर जल का पात्र खाली मिला। यज्ञस्थल पर हाहाकार मच गया और खोज की गई कि कौन जल पी गया? पता चला कि राजा यौवनाश्व ही रात को आकर पुत्रेष्टि हेतु अभिमंत्रित जल पी गए थे। राजा ने यह बात स्वीकार की। ऋषियों ने कहा कि यह घटना प्रारब्ध वश घटी है लेकिन जल अकारण नहीं होगा। हे राजा! अब तुम गर्भवान हो गए। सौ वर्ष बाद राजा की बाँयी कोख फोड़ कर सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र हुआ। पुरुष की कोख से पैदा हुए पुत्र को देखने स्वर्ग से देवतागण आये। इन्द्र भी आये। उन्होंने कहा कि माता के बिना इस पुत्र का पालन पोषण कैसे होगा? इसे दूध कौन पिलाएगा? फिर इन्द्र ने अपनी तर्जनी अँगुली पुत्र के मुख में रखी अर्थात् इन्द्र ने उसका पालन पोषण किया। माँ का दूध न पीने के कारण उसका नाम 'मांधाता' रखा गया।

आगे वय प्राप्त कर मांधाता राजा बने। उनके ऐश्वर्य, धर्माचरण तथा प्रजापालन की योग्यता देख इन्द्र को ईर्ष्या होने लगी। इन्द्र ने वर्षा को रोक दिया। मेघों का रास्ता बन्द कर दिया तब मांधाता ने अपने तपोबल से जलवर्षण कर प्रजा को प्राणदान दिया। इसी राजा मांधाता ने अमरकण्ठी नर्मदा के किनारे वैदूर्य पर्वत पर स्थित ओंकार क्षेत्र में 100 यज्ञ किये और शिव का आराधन किया। शिव प्रसन्न हुए। राजा ने वरदान माँगा कि यह वैदूर्य पर्वत मांधाता के नाम से विख्यात हो, यहाँ देवताओं का वास हो और आप (शिव) 12 ज्योतिर्लिंगों सहित यहाँ निवास करें। तबसे यह क्षेत्र ओंकार-मांधाता के नाम से जगत प्रसिद्ध हुआ। इस क्षेत्र को शिव की जागृत भूमि कहा जाता है।

मांधाता के राजाओं की बड़ी विचित्र कहानी है। मालकम के दिनों में यह प्रथा प्रचलित थी कि 120 फीट से भी ऊँची भयानक चट्टान से गिरने के बाद यदि किसी आदमी को बचाया जाय तो उसे मांधाता का शासक बनाया जाता था। एक बार ऐसा हुआ था और बाद में दृढ़तापूर्वक स्वीकार कर लिया गया कि इसी प्रकार यह राजवंश 17 वीं शताब्दी के अन्त में उत्पन्न हो गया था। इस वंश की परम्परा जम जाने के बाद आगे से कोई व्यक्ति अपना हक जाहिर न कर सके इसलिए बलिदान देने वाले भक्तों की भोजन सामग्री में विष मिला दिया जाता था ताकि उसका असर धीरे-धीरे होने लगे और वे चट्टान से गिरने के पहले ही मर जायें।

इस प्रकार यह वंश परम्परा आज तक चली और मांधाता के राजा मंदिरों और महलों में यात्रियों द्वारा चढ़ाई गई भेंट पर अपना जीवन निर्वाह करते रहे। स्वाधीनता के बाद यह सब भी बंद हो गया। दरबार की शाही शान को देखते हुए राजा को जो आमदनी होती थी वह पर्याप्त नहीं थी। महल में एक दो सेवक कक्षे पर बन्दूक रखे, वर्दी पहने हुए राज्य चिह्न तलवार और गादी पर पहरा देते। महल के भीतर कोई खास सजावट आदि नहीं थी और पुराने राजाओं के बहुत से चित्र लगे हुए थे। ये राजा लोग बड़े उत्साही थे और उन्होंने 400 वर्ष पूर्व मृत्यु से बचकर यह शाही ठाठ कायम किया था, पर इनकी ऐतिहासिकता का कोई लिखित विवरण हमें तो पढ़ने को कहीं भी नहीं मिला। मांधाता की यह राज्य परम्परा संसार में एक विचित्र घटना है।

मांधाता की प्रायः बहुत सी भव्य इमारतें नदी के घाटों के चारों ओर बनी हुई हैं और सैंकड़ों छोटे-बड़े मंदिर भी। इस द्वीप का सब से सुन्दर और विशाल मंदिर सिद्धनाथ का है, परन्तु ओंकारेश्वर की तुलना में इसका महत्त्व कम है। इस द्वीप के आसपास पहले परकोटा था जो अब नहीं है और दो मुख्यद्वार जो बचे थे वे भी नष्ट प्रायः दशा में हैं। पिछली शताब्दी के आरम्भ की उथल-पुथल में नर्मदा का यह पथरीला क्षेत्र लुटेरे पिण्डारियों के झुण्डों ने लूट लिया था और निमाड़ जिले के इन गाँवों को वीरान और उजाड़ कर दिया था। इस कारण कई वर्षों तक यात्री लोग इस पवित्र मंदिर के दर्शन से वंचित रहे थे और कई मंदिर और अन्य इमारतें नष्ट भ्रष्ट हो गई थी, लेकिन बाद में इस भूमि के

सरकारी फौज के अधिकार में आ जाने से यहाँ पिछले कुछ वर्षों से शांति स्थापित हो गई थी और लोग वापस आकर धीरे-धीरे अपने गाँवों में बसने लगे थे। अब पुनः सैकड़ों यात्री स्वतंत्रतापूर्वक नर्मदा के किनारे विचरते हैं और नावों में बैठकर मांधाता के पार आते-जाते हैं।

मोरटक्का रेलवे स्टेशन से मांधाता को रास्ता जाता है और यह स्थान भारत वर्ष के धार्मिक केन्द्रों में अपना विशेष महत्त्व रखता है। इसके चारों ओर पथरीली भूमि है और घने जंगलों की रमणीयता में नर्मदा उताल तरंगों से बहती है। धर्मप्राण हिन्दुओं के जीवन में मांधाता की यात्रा एक स्मृतिदायक घटना होती है।

लोक-कलाओं में धर्म और समाज

डॉ. कीर्ति शर्मा

ऋग्वेद में लोक के पर्याय हेतु जन शब्द का प्रयोग हुआ है-

*‘य इमें रौदसी उभे अहमिद्रमन्नतुष्टव ।
विश्वमित्रस्य रक्षति ब्रह्मेव भारतं जनं ॥’*

भारत की छोटी-छोटी जनता के जीवन में एक प्राण होकर लोक-कला न जाने अतीत की किस स्वर्णिम बेला से हमारे उल्लास से जुड़कर जीवन से बंधी हमारे साथ चली आ रही है। लोककला मन की सहजावस्था में आदिम आनंद की अजस्र धारा है, जिसमें समय और स्थान की नवीन चेतना की छोटी-छोटी धाराएँ मिलती हैं। लोकजीवन में कला का स्फुरण स्वाभाविक रूप से होता है तथा वह अपने आदिम संस्कारों के साथ संस्कृति तथा युग संदर्भ से जुड़कर प्रवहमान होती है। आदिम काल की लोककला मनुष्य की अंतःप्रेरणा का सहज नैसर्गिक रूप है। इस कला की परम्परा का रहस्योद्घाटन मोहनजोदड़ो एवं हड़प्पा की संस्कृति में भी हुआ है।

लोककला मनुष्य की स्वाभाविक भावनाओं का क्रियात्मक विकास है। विविध कलाओं की उन्नति में लोककला का अक्षुण्ण महत्त्व है। यह प्रांतीय जनजीवन के आधार पर अवलंबित कला है। वस्तुतः लोककला हमारे जीवन का महासमुद्र है, जिसमें भूत, भविष्य और वर्तमान सभी कुछ संचित है। लोक ही राष्ट्र का अमर स्वरूप है। शास्त्रों में तो लोक शब्द सम्पूर्ण सृष्टि के लिये प्रयुक्त हुआ है। लोक कला बिना किसी अवलंब, आश्रय, प्रलोभन, प्रोत्साहन के स्वतंत्र एवं सौम्य गति से निरंतर आगे बढ़ती रही है। लोक से तात्पर्य जनपद या ग्राम नहीं है, बल्कि नगरों एवं गाँवों में फैली वह समूची जनता है, जो अकृत्रिम और सरल जीवन व्यतीत करती है। जनता के इस व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं और कला की जड़ें धरती में काफी गहराई तक गई हैं।

मानव समुदाय ने कला को जीवन का अविच्छिन्न अंग माना है। गुफाओं, कंदराओं में निवास करने वाला आदिम मानव भी अपनी सम्पूर्ण दिनचर्या में जो कुछ भी घटित होता, उसे दीवारों पर, पत्थरों पर उकेरकर पशुओं की आकृतियाँ, पेड़-पौधों तथा मानव की आकृतियों का चित्रण करता था, इन चित्रों में मंत्र-मुग्ध करने की शक्ति होती थी। मनुष्य की इन सुखद एवं दुखद भावनाओं की, हर्ष-उल्लास की अभिव्यक्ति ने ही भिन्न-भिन्न प्रकार की कलाओं को जन्म दिया। अतः मानव के जीवन पर पड़े जन्मजात प्रभाव ही उसकी कला के अभिन्न अंग होते हैं। जिन संस्कारों, परम्पराओं, रीति-रिवाजों आदि का प्रभाव मानव पर पड़ता है, वे सम्पूर्ण तत्त्व उसकी रचनात्मक क्षमता एवं दृष्टिकोण का निर्माण करते हैं। इसी आधार पर कलाकार की कलाकृति अपनी अनुभूति एवं अभिव्यक्ति की क्षमता से तादात्म्य स्थापित कर लोक की बन जाती है। लोक जीवन से प्रेरित होकर मानव द्वारा जिस कला का सृजन किया गया, वह लोक कला कहलायी। इस कला में जीवन के विविध पक्षों धार्मिक, पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक आदि का समावेश हुआ। लोक दर्शन, लोक धर्म, लोक मूल्य, लोक विश्वास, लोक मंगल से लेकर देवी-देवता के चित्र सूर्य, चंद्र, बिच्छू, साँप इत्यादि लोककलाओं में अमिट एवं व्यापक स्वरूप में चित्रित हैं।

लोक एवं शास्त्रीय कला का स्वरूप

लोक मानस निर्विकार एवं निर्द्वन्द्व है। उसमें न ज्ञान का अहं है न आतंक की प्रवृत्ति, उसके पास न शास्त्र है न आदर्श। वह जो कुछ है प्रत्यक्ष है, न बनावट न सजावट। उसके पास जो कला है, वह अपनी प्रकृति की है यथार्थ और निर्मल। वस्तुतः लोक कलाएँ शास्त्रीय कला की जननी हैं। जब कलाओं में किसी प्रकार की भी परिष्कृति होती है, तो कालान्तर में वह शास्त्रीय कला में बदल जाती है। इन शास्त्रीय कलाओं की जड़ें लोककला में ही पोषित होती रही हैं।

लोक कला, शास्त्रीय कला की भाँति किसी चिन्तन, वाद या शास्त्र के घेरे में नहीं आती। लोक कला का रचयिता सहज एवं स्पष्ट होता है। लोक की सीमा ही लोक कला की सीमाएँ होती हैं। लोककला में धार्मिक पक्ष अपेक्षाकृत अधिक होता है। जहाँ शास्त्रीय कलाएँ सभ्यता को संजोती हैं, वहीं लोककलाएँ

संस्कृति को संजोती हैं। स्थानीयता की गंध लिये लोककलाओं में समर्पण का भाव प्रमुख होता है, जबकि शास्त्रीय सृजन में अहं का भाव होता है। रंग संयोजन की दृष्टि से जहाँ लोककलाओं में प्राकृतिक एवं सीमित रंगों का प्रयोग होता है, वहीं शास्त्रीय कला में अनेक रंगों एवं नवीन तकनीकों का प्रयोग होता है।

परम्परा के रूप में लोककला पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है, परन्तु शास्त्रीय कला नियमों में बंधी व्यक्तिगत अभिव्यक्ति होती है। इसमें परिवर्तन भी जल्दी होते हैं। अपने अकृत्रिम रूप में लोककला उपलब्ध वस्तुओं के प्रयोग पर निर्भर रहती है, जबकि वाह्य प्रभाव से प्रभावित शास्त्रीय कला में सामग्री जुटानी पड़ती है। सहज अवचेतन मानव की अभिव्यक्ति के रूप में लोक कलाकृति में प्रतीकों का प्रयोग शास्त्रीय कला से अपेक्षाकृत अधिक होता है। उपाजित मानव की अभिव्यक्ति के रूप में शास्त्रीय कला का रचनाकार एवं रचनाकाल प्रायः ज्ञात होता है, जबकि लोककला का प्रायः अज्ञात होता है।

अतः शास्त्रीय कला लोककला का सहारा लेकर पनपी और उन्नति के शिखर पर पहुँच गयी। इन दोनों ही कला स्वरूपों में कुछ भेद हैं तथा कुछ साम्य भी हैं। यद्यपि शास्त्रीय कला ने अपनी रचना में इस बात का दावा किया है कि उसमें जीवन संदेश है, सत्य-शिव-सुंदर है, अलौकिक अनुभूति है तथा उसने शास्त्र रच डालें तथापि लोकमानस ने इसकी कभी परवाह नहीं की।

लोक कला एवं धर्म

धर्म की व्यापकता का अस्तित्व आदिकाल से प्रकृति, मानव और समाज के कण-कण में व्याप्त रहा है। जहाँ तर्क और विचार की समाप्ति होती है, वहीं विश्वास और भावना की पृष्ठभूमि पर धर्म को जन्म मिलता है। समाज का सम्पूर्ण आध्यात्मिक एवं भावनात्मक जीवन धर्म के आधार पर जीवित रहा है। हमारे ज्ञान की परिधि में जो भी परिकल्पना सामने आती है, उसमें हम एक अलौकिकता के दर्शन अवश्य करते हैं। इस असीम शक्ति के अस्तित्व से मानव हृदय में सर्वप्रथम समर्पण की भावना जाग्रत हुई, जो अर्चना, आराधना एवं वंदना के रूप में धर्म में अधिक प्रचलित है। समस्त ब्रह्माण्ड के स्वरूप की कल्पना एवं मानव

जीवन के अंतिम लक्ष्य की आध्यात्मिक एवं तार्किक विवेचना का आधार भी यही धर्म बना। धर्म ने मानव मन की गुत्थियों को सुलझाया। समाज में व्यक्तिगत शुभ या कल्याण की भावना को धर्म ने ही कला के माध्यम से सामूहिक कल्याणकारी बनाया। लोककला और धर्म का विकासक्रम एक सा ही है, ये दोनों ही जीवन की विस्तृत व्याख्या करते हैं। देवी-देवताओं के स्वरूप की कल्पना द्वारा लोककला ने धर्म की सहायता की, वहीं धर्म ने भी लोककला को सरस बनाकर समाज में इसके महत्त्व को बढ़ाया। जिस प्रकार लोककला का मूल आदिम अवस्था में है, उसी प्रकार धर्म का मूल भी वही आदिम अवस्था है। आदिम काल में मानव अपने धार्मिक अनुष्ठानों, भावनाओं को लोककला के माध्यम से व्यक्त करता था। धर्म मनुष्य का आदिम एवं प्राथमिक अनुभव है। धर्म ने लोककला को अपना अनंत वैभव प्रदान किया। धर्म की प्रेरणा अनंत और निराकार की खोज है। प्रतिमा और प्रतीक इसी दृष्टि की उपज हैं। प्रतीक के रूप में लोककला उभरकर आई और धर्म के ऊपर लोककला का वैभव छा गया। धर्म ने कला को गंभीरता दी तो कला ने धर्म पर अपना सौंदर्य न्यौछावर कर दिया। कहीं-कहीं धर्म का लोककलात्मक स्वरूप उपासना का अंग बन गया। लोककला ने धर्म के शुभ, मंगल एवं शुचिता के भाव को अभिव्यक्त किया है। धार्मिक पुराणों में व्यक्त कथाओं, शुभ प्रतीकों को लोक कला के माध्यम से परिपूर्ण स्वरूप की प्राप्ति हुई। रामायण, महाभारत एवं पुराण की कथाएँ लोककला के माध्यम से अमरत्व को प्राप्त हुई।

त्यौहारों, मांगलिक कार्यों, पर्वों, धार्मिक अनुष्ठानों में लोककला के अस्तित्व की कल्पना किये बिना सारा उमंग, उल्लास, माधुर्य फीका पड़ जाता है। धर्म एवं जीवन के अविभाज्य पहलू के रूप में लोककला गहरे मानवीय गुणों से युक्त, अतिसंवेदनशील एवं जीवन के उत्थान के लिये आह्लाद से परिपूर्ण है। भारतीय धर्म पर लोककला का प्रभाव उसके उत्थान का परिचायक है। भारतीय मान्यताओं को संचालित एवं नियंत्रित करने में लोककला का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है, इस रूप में लोककला की आत्मा सदैव के लिये धर्म की साक्षी बन गयी। लोककला के गुणों के बिना धर्म निर्जीव और नीरस होकर अब तक मिट गया होता। हमारे वेदों, उपनिषदों एवं अन्य ग्रंथों में भी कला का प्रयोग मिलता है। कोई भी जाति अपने धर्म, रीति-

रिवाज और परम्पराओं में ही जीवित रहती है। प्रदेश विशेष के समुदाय की धार्मिक भावनाओं एवं परम्पराओं को लोककला द्वारा संरक्षण प्राप्त होता है। इस रूप में लोककला धर्म की उद्घोषक बनी।

लोककला और धर्म दोनों में बहुत से समान तत्त्व हैं। दोनों मननशीलता पर आधारित हैं। दोनों ही मानव के दैवी-शक्तियों के साथ सामंजस्य स्थापित करने के प्रयत्नों का प्रतिनिधित्व करते हैं। मानवीय आकांक्षाओं और आदर्शों के अनुसार विश्व का पुनर्निर्माण करने में लोककला और धर्म समान रूप से प्रयत्नशील रहते हैं। ये दोनों ही मानव जीवन को अधिक समृद्ध एवं संगतिपूर्ण बनाने की आकांक्षा करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से लोककला और धर्म दोनों का प्रभाव चेतन मन पर एक समान पड़ता है। कल्पना दोनों को सुंदर बनाती है। दोनों के अनुभव में स्वतंत्र चिंतन एवं एकाग्रता का भाव पाया जाता है। इनमें प्रत्येक अनुभव सहज एवं कल्याणकारी होता है और उसकी प्राप्ति से अपूर्व शांति मिलती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ दोनों अलग-अलग रूप में विकसित हुए, परन्तु दोनों में एकरूपता पायी जाती है। जहाँ धार्मिक अमूर्त विषयों के अंकन से कला का सौंदर्य बढ़ा है, वहीं कोई भी लोककला ऐसी नहीं है, जिसका उपयोग धर्म में नहीं किया गया हो।

लोककला एवं समाज

लोक कलाकृतियाँ लोक सापेक्ष होती हैं, इसमें निहित भावनाएँ किसी एक व्यक्ति से संबंधित न होकर समस्त समाज से संबंधित होती हैं। लोककला इसी मानव-समूह की रचनात्मक शैली है, जिसका प्रारंभ आदि समाज से हुआ। एक दूसरे से सहयोग भावना, शिकार पर विजय, उत्साह, उल्लास भरे नृत्यों में सामूहिक आनंदोत्सव मनाना आदि सामाजिकता के ये लक्षण आदिम कला में विद्यमान थे। आदिम समाज की यह कला विकसित समाज में पहुँचकर लोक कला बन गई और समाज का एक अंग बन गयी। समाज में सुख, समृद्धि एवं मंगल की भावना के आधार को लेकर विविध रीति-रिवाज प्रचलित हैं, इन्हीं के अनुरूप लोककला गढ़ी जाती है। जैसे चौक, स्वस्तिक, अल्पना, सांकेतिक रेखाएँ, मंगल प्रतीक जो चावल, आटे, हल्दी, रोली इत्यादि से बनाये जाते हैं, सामाजिक जनजीवन से जुड़े हैं।

लोककला, सामाजिक परम्पराओं, संस्कारों को अपने में समाहित कर उनकी रक्षा करते हुए एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित करती है। इस रूप में लोककला समग्र सामाजिक जीवन को जपती हुई प्राचीनता और आधुनिकता के मध्य सृजनशील कड़ी बनकर विद्यमान है।

लोककला इतिहास की नित नई चुनौतियों के दबाव से दुर्बल होते समाज को लय और लोच देकर विकास की ओर प्रेरित करती है। प्रांत अथवा लोक विशेष को उसकी लोककला पृथक पहचान देती है। वह न केवल समाज की संस्कृति का सहज संस्कार ही करती है, अपितु वह समष्टि जीवन को प्राणों के रस से सींचती है। विभिन्न कालों एवं सभ्यताओं की साक्षी लोककला ने समाज में धर्म परम्परा एवं नैतिक मूल्यों के संवाहक का कार्य किया। बड़े सामाजिक आंदोलनों एवं युग परिवर्तन की उथल-पुथल भरी परिस्थितियों में लोककला ने समाज को सृजनात्मक शक्ति की प्रेरणा प्रदान की। लोककला में क्षेत्रगत स्थानीयता होती है, इसीलिये इसके माध्यम से क्षेत्र विशेष की परम्पराओं, रीति-रिवाज, रहन-सहन, सामाजिक नियम तथा भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रतिबिंबित होती हैं।

लोक-चित्रांकन

सहज प्रकृति के रूप में प्रकट होते लोकचित्रांकन पर युगों से पड़े प्रभाव एवं लम्बी परम्परा के दर्शन होते हैं। व्यवहारिक ज्ञान पर आधारित इन लोक चित्रों में सामाजिक-धार्मिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ, आस्थाएँ एवं विश्वास विद्यमान हैं।

भित्ति-चित्र

भित्तिचित्रों में जो भी अंकित किया जाता है, वह सब हमारी ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक पूंजी की निचोड़ है। भित्तिचित्रों में आस्था ईश्वर पूजा का प्रतीक माना जा सकता है, साथ ही इनका उद्देश्य साज-सज्जा भी होती है। कलाकार भीत को सूनी नहीं देख सकता। इसकी परम्परा तबसे है, जब मानव पूरी तरह से सभ्य भी नहीं था। प्रारंभ में वह अपनी कला संबंधी स्वाभाविक रूचि और इच्छा को पर्वत शिलाओं पर आड़ी-टेढ़ी आकृतियों के रूप में खींचकर सुख पाता रहा है। यही आदिम

कला मनुष्य के विकास के साथ-साथ मकान की दीवारों पर भित्ति-चित्र के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इन चित्रों में गोबर या मिट्टी एवं रंगों (गेरू, हल्दी, खड़िया, कोयला, कुंकुम) का प्रयोग किया जाता है।

इन रंगों को तैयार कर सावन-मास में हरियाली अमावस्या के दिन 'जिरोती' का त्यौहार मनाया जाता है। इस ऋतु में प्रकृति भी अपना श्रृंगार करती है। घर के मध्य के दरवाजे पर दोनों ओर गेरू से दीवार को पोतकर पृष्ठभूमि (कैनवास) तैयार की जाती है। इसे सुखाकर एक-एक फीट की चौखट बनाकर रंगों एवं बेल से उसे सजाया जाता है। त्यौहार के छह-सात दिन पूर्व से ही सजाने संवारने की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। बच्चों की रक्षा करने वाली देवी 'जिरोती' की तीन आकृतियों को चौखट के भीतर बीच में बनाया जाता है। इन आकृतियों के नीचे सिंहासन रूपी पालने बनाये जाते हैं। प्रत्येक आकृति के साथ बच्चे की आकृति तथा ऊपर छत्र भी बनाया जाता है। चौखट के भीतर इस मुख्य आकृति के अतिरिक्त चाँद और सूर्य, साँप-बिच्छू, दही बिलोती महिला, बालिकाओं के फुगड़ी खेलने की आकृति, मांगलिक प्रतीक इत्यादि बनाये जाते हैं। इनमें चाँद-सूर्य शाश्वत जीवन के, साँप-बिच्छू मृत्यु के, दही बिलोती महिला संपन्नता तथा बलिकाएँ खुशहाली की प्रतीक मानी जाती हैं। लोक कलाओं की यह मान्यता रहती है कि चित्र में आँख बना देने से उसमें प्राण आ जाते हैं। इसीलिये मुख्य दिन अमावस्या को प्रातः स्नान के तुरंत बाद एकांत में घर की बहू-बेटियों द्वारा पुतलियों की आँखें बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा कर दी जाती है। इसके पश्चात् पूरे परिवार द्वारा पूजा करके यह त्यौहार समाप्त होता है।

सावन मास में ही नाग-पंचमी के दिन सफेद पृष्ठभूमि पर काले रंग से 'नाग' बनाये जाते हैं। जिनमें आकृति का नहीं रेखांकन का महत्त्व होता है। क्योंकि आठ, बारह या सोलह कुण्डलियों के नाग बिना रूई या ब्रश उठाये एक ही बार में बनाये जाते हैं। इनकी पूजा के पूर्व भी आँखें बनाकर प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। चित्र-पूजा के आयोजन पूर्ण होने पर वर्ष भर इन अनुपम चित्रों को सुरक्षित रखा जाता है।

भित्तिचित्रों में 'साँजी' का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'साँझाफूली' या 'साँझी' का यह त्यौहार क्वार के महीने में प्रतिपदा

के दिन से प्रारंभ होता है। गाँवों में स्वच्छ होते आसमान और रंग-बिरंगे खिले फूलों के बीच खेतों में मानो संध्या स्वयं उतरती प्रतीत होती है। इस संध्या के स्वागत में छोटी-छोटी बच्चियाँ घर की दीवार पर गोबर से संध्या-देवी एवं चाँद और सूरज आदि की आकृतियाँ बनाती हैं। प्रत्येक बढ़ती तिथि पर आकृतियों को बढ़ाते हुए अमावस्या के दिन इस भित्ति चित्र को सम्पूर्ण कर लिया जाता है। प्रतिदिन संध्याकाल में कनेर, गेंदा, चंपा, चमेली, गुलपत्ती आदि फूलों से सजाकर संध्या-देवी की पूजा की जाती है। नन्हीं-नन्हीं बालिकाएँ दीप जलाकर लोकगीत-लोकनृत्य द्वारा घर के आँगन में संध्या को सजीव कर देती हैं।

मांडना

किसी भी सतही धरातल पर रेखाओं द्वारा चित्रण करना मांडना कहलाता है। माँडने, त्यौहारों और मांगलिक पर्वों पर घर की भूमि को गोबर, गेरू, मिट्टी या हल्दी से लीपकर बनाये जाते हैं। मांडनों में प्रायः त्रिकोण, चतुष्कोण, षटकोण, अष्टकोण, कमल, अष्टदल, फूल, बेल, चौपड़ एवं स्वस्तिक, चौक जैसे प्रतीक चिन्हों को रचा जाता है। स्वस्तिक सूर्य का ही संक्षिप्त प्रतीक चिन्ह है। इसमें केन्द्र बिन्दु सूर्य है, जिसकी चारों भुजाएँ पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा की ओर संकेत करती है तथा ये भुजाएँ जिन बिन्दुओं पर ठहरती हैं, उन्हें अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान कोण का प्रतीक माना जा सकता है। मांडने में रंग भरने हेतु चावल के आटे का घोल, खड़िया, पीली मिट्टी, हल्दी, गेरू, कुंकुम आदि का प्रयोग किया जाता है। बंगाल एवं दक्षिण भारत की अल्पना भी मांडने का सुंदर रूप है।

गोदना

यह प्रथा संस्कृति एवं धार्मिक विश्वास से जुड़ी है। जिन जातियों में गुदवाने की परम्परा प्रचलित है, उनका मानना है कि गोदने स्थायी गहना हैं, जो मृत्यु के पश्चात् भी साथ रहता है। इसके अतिरिक्त इस प्रथा के पीछे सुख-समृद्धि, कल्याण तथा बुरी आत्माओं की कोप दृष्टि से सुरक्षा की भावना भी निहित है। गुदवाने की परम्परा स्त्री वर्ग में अधिक प्रचलित है। आदिवासियों में गोदने का सौंदर्य देखने योग्य रहता है। गोदने की आकृतियों में पशु-पक्षी, सूर्य, चंद्रमा, सरल मानवाकृति, हाथ-घड़ी, धनुष-बाण, 'ॐ' की आकृति, नाम तथा प्रतीक चिन्हों को गुदवाया जाता है।

पटचित्रण

पटचित्रण भी लोक-कला का अद्भुत उदाहरण है। ये कागज, ताड़पत्र एवं कपड़े पर बनाये जाते हैं। इनके विषय मुख्य रूप में पौराणिक गाथाएँ, महाभारत, रामायण एवं सामाजिक कुरीतियों से संबंधित कथाएँ होती हैं। इन चित्रों में पूरी कथा का अंकन किया जाता है तथा प्रत्येक घटना का चित्रण बॉर्डर डाल कर किया जाता है। कलाकार इन चित्रों के माध्यम से गाथाएँ गाते भी हैं। इनमें गहरे रंगों का प्रयोग किया जाता है, जिससे दर्शक और श्रोता दूर से इन चित्रों को देख सके एवं कथा को समझ सके। लोक कला की ये परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती चली आ रही है।

लोक देवता गणीनाथ

मृदुल

तीर्थ व्यक्तियों के विशिष्ट आस्थाओं का प्रतीक एवं विश्वास के धरोहर होते हैं। प्रत्येक धर्म, जाति, वर्ग और समुदाय के अनुसार इसमें भिन्नताएँ देखी जाती हैं। इसे दो कोटियों में बाँटा जा सकता है- सांस्कृतिक और लोक। सांस्कृतिक तीर्थ प्रत्येक धर्मों के अलग-अलग होते हैं, उसी तरह लोक तीर्थ धर्मों में सम्मिलित प्रत्येक जातियों-उप-जातियों के अलग-अलग होते हैं। तीर्थ चाहे जो भी हो, सबों की मौलिक निर्माण-कथा होती है। अधिकांशतः सांस्कृतिक तीर्थों की कथाएँ पुराणों एवं धर्म-ग्रंथों में वर्णित होती हैं, वहीं लोकतीर्थों की कथाएँ जनश्रुतियों में पायी जाती हैं। जनश्रुति होने के कारण लोकतीर्थों की कथाओं में व्यक्ति के श्रद्धात्मक अनुराग से उत्पन्न भक्ति भावना की प्रबलात्मकता, काल्पनिक अनघट घटनाओं का सामंजस्य कर डालते हैं। फिर भी, जब हम इनका गहन विश्लेषण करते हैं तो वे एकदम तात्कालिक और प्रासंगिक लगती हैं। वे सभी प्रोत्साहन की अमर गाथाएँ हैं जिसमें हमारे जीवन का कोई न कोई सत्य छुपा रहता है। इसी सत्य की पुनरावृत्ति करने के लिए वैश्य वर्ण में मध्य देशीय हलवाई जाति के लोग अपने पवित्र तीर्थ-स्थल बिहार के वैशाली जिलान्तर्गत पलवैया ग्राम में, भाद्रपद कृष्ण पक्ष अष्टमी के बाद प्रथम शनिवार को लोक देवता गणीनाथ की जयंती अपने परिजनों के साथ धूम-धाम से मनाते हैं। उनके इस महोत्सव को 'सेनुरी' कहा जाता है।

'सेनुरी' के दिन गणीनाथ के मृण पिण्डों की पूजा होती है। कहा जाता है कि ये अवतारी पुरुष थे। पृथ्वी पर, पलवैया ग्राम में इनका अवतरण तेरहवीं शताब्दी के आस-पास हुआ था। पृथ्वी पर गणीनाथ के उद्भूत होने की एक रोचक गाथा है।

गाथानुसार एक बार माता पार्वती शिव के समक्ष अपनी एक जिज्ञासा प्रकट करती हुई मजाकिए लहजे में बोली- 'रज-वीर्य संयोग से संतानोत्पत्ति तो होती है, क्या उसके बगैर उत्पन्न नहीं हो सकता?'

शिव तो स्वभाव से ही भोले हैं। उनके उसी भोलेपन के कारण देवलोक में कई बार अन्य देवताओं के साथ खुद उन्हें भी विकट संकटों का सामना करना पड़ा था। इस बार भी वे बिना सोचे-समझे पार्वती के मनोविनोद वाक्य को गंभीरता से न लेते हुए झट कह दिया- 'अवश्य हो सकता है।' उनके इतना कहते ही पार्वती ने वैसे बालक को देखने की इच्छा व्यक्त कर दी। उसी आवेश में शिव ने वैयास कर दिखलाने का वचन भी पार्वती को दे दिया। पर जितना आसानी से वे कह गए थे, कार्य उतना ही दुरूह था। वे तो वचन दे चुके थे। अगर वे वैयास बालक उत्पन्न नहीं करते हैं तो पार्वती रूढ़ हो जाएगी और वचन भी खाली जाएगा। करें तो क्या करें? बिना रज-वीर्य के संयोग से बालक कैसे उत्पन्न होगा? असमंजस की मुद्रा में काफी चिन्तन-मनन करने के पश्चात् शिव ने अपने को समाधि में लीन किया। दो-तीन दिनों तक समाधि में रहकर, ध्यान तोड़ते हुए पार्वती को अपने करीब बुलाया। अग्नि-कुंड से भभूत निकालकर उन्होंने अक्षत में मिलाते हुए पास बैठी पार्वती की गोद में डाल दिया। तभी चमत्कार हुआ। वह अक्षत-भभूत का मिश्रण एक सुंदर, दिव्य आभायुक्त बालक में बदल गया। उसे देखकर पार्वती को खुशी का ठिकाना न रहा। शिव ने राहत की साँस ली, तो पार्वती के सामने समस्या उत्पन्न हो गई। पार्वती ने अपने उदर से अभी तक एक भी बच्चे को जन्म नहीं दिया था, इसीलिए उस बच्चे के पालन-पोषण को लेकर चिंतित थी। प्रसव की पीड़ा भुगते बगैर माँ की ममता में वात्सल्यता आ ही नहीं सकती और बिना वात्सल्यता के बच्चों का सही पालन असंभव प्रतीत होता है। पार्वती की घबराहट का मूल कारण यही था।

उसी समय शिवलोक में भगवान विष्णु पधारे। विष्णु द्वारा कुशल-मंगल पूछने पर पार्वती ने अपनी समस्या उनके सामने रखी। विष्णु ने कुछ विचार कर अपनी योग-माया से उस बालक को यौवन प्रदान किया। वह बालक युवक बन गया। पार्वती ने उस युवक का नाम गणीनाथ रखा। अक्षत और भभूत से उत्पन्न युवक के मुखमण्डल की आभा से विष्णु अत्यधिक प्रभावित हुए। विष्णु उस युवक को अपने साथ ले जाने देने के लिए शिव-पार्वती से अनुरोध किया। शिव-विष्णु के इस आग्रह को नहीं टुकरा सके। शिव ने उस युवक को विष्णु के साथ जाने की आज्ञा दी। विष्णु गणीनाथ को लेकर अपने लोक लौट आये।

गणीनाथ विष्णु-लोक की नूतन भंगिमाओं में बढ़ने लगे। विष्णु लोक में रहने वाले सभी प्राणियों को कर्मरत देखकर गणीनाथ की भी इच्छा कुछ करने की हुई। गणीनाथ ने विष्णु को अपनी इच्छा बतायी। विष्णु ने इन्हें रसोई का भार संभालने को कहा। उस दिन से गणीनाथ विष्णु लोक के लिए भोजन बनाने लगे। इनके हाथ का बना भोजन अत्यधिक स्वादिष्ट और रुचिकर होता था। रसोइया के रूप में गणीनाथ की प्रसिद्धि फैलने लगी। यह देखकर पूर्व के रसोइयों में ईर्ष्या की भावना उत्पन्न हो गई। सबके सब नारद से मिलकर षडयंत्र रच डाला। सबों ने जलावन में चंदन की लकड़ियों को हटाकर गम्हार की लकड़ियाँ रख दी। गम्हार की लकड़ियाँ जलती नहीं, केवल धुआँती है। इसका पता गणीनाथ को नहीं चला। जब वे भोजन तैयार करने चले, तो लकड़ियाँ जलने के बजाय धुआँने लगी। चूल्हे से अत्यधिक धुआँ निकलने के कारण गणीनाथ की आँखें डबडबा गईं। आँसू छलक पड़े। इधर नारद विष्णु के पास जाकर शिकायत करते हुए कहा कि आपका वह गणीनाथ सब दिन रो-रोकर खाना बनाता है। विष्णु ने ध्यान लगाया। गणीनाथ के आँखों में आँसू देखकर उन्हें नारद की बातें सत्य जान पड़ी। कुपित हो, गणीनाथ को शाप दे डाला- 'कष्ट में रहने वालों के लिए यह लोक नहीं है, जा तू अपने कष्टों का निवारण मृत्युलोक में कर।' शाप सुनकर गणीनाथ विष्णु के समक्ष उपस्थित हुए और वस्तुस्थिति से अवगत कराया। सब कुछ जानने पर विष्णु को काफी अफसोस हुआ। अब वे कर ही क्या सकते थे। शाप लौटता तो नहीं। विष्णु को चिंतित देखकर गणीनाथ ने मृत्युलोक में जाने की आज्ञा माँगी। भगवान विष्णु इससे प्रसन्न होकर गणीनाथ को आशीर्वाद देते हुए कहा कि तुम्हारा यश और कीर्ति मृत्युलोक में अमर होगी। पृथ्वी पर उस समय वर्ण व्यवस्था कायम थी। इसीलिए गणीनाथ ने विष्णु से अपना गोत्र एवं कार्य पूछा। विष्णु ने उन्हें सलाह देते हुए कहा कि मृत्युलोक में जाने के बाद, तुम्हें जो पहला व्यक्ति दिखे, उसी के गोत्र को स्वीकार कर उसके मार्गदर्शन में कार्य करना।

गणीनाथ विष्णु-लोक से शिव-लोक अपने माता-पिता से मिलने आये। उन्होंने मृत्यु लोक में जाने की बात उन लोगों को सुनाया। यह सुनकर शिव ने जगत् कल्याण हेतु गणीनाथ को योग की शिक्षायें दी। योग की शिक्षा प्राप्त कर वे शिव-लोक से भाद्रपद कृष्णाष्टमी के बाद वाले शनिवार को पलवैया ग्राम में

अवतरित हुए।

जिस समय गणीनाथ पृथ्वी पर आये, एक कृशकाय वृद्ध पर इनकी नजर पड़ी। वह वृद्ध अपने माथे पर लकड़ियों का बहुत बड़ा गट्टर लिये जंगल से अपने घर जा रहा था। गणीनाथ उसके निकट आकर गट्टर को हाथ से स्पर्श किया। हाथ का स्पर्श होते ही वृद्ध का बोझ एकदम हलका हो गया। वह आसानी से उसे लेकर चलने लगा। वृद्ध ने गणीनाथ की अलौकिक छटा एवं करतब देखकर उन्हें घर चलने का निवेदन किया। गणीनाथ उसके पीछे हो लिये। वृद्ध अपनी छोटी सी झोपड़ी के निकट जाकर रुका। झोपड़ी में वृद्ध की पुत्री खेमा थी। कुल मिलाकर दो सदस्य उस झोपड़ी में थे। वृद्ध का नाम मानशाह था और वह मध्यदेशीय वैश्य था। जंगल से लकड़ी काटना और उसे शहर में बेचना उसकी आजीविका थी। मानशाह को उतना बड़ा गट्टर बिना कोई परेशानी के लाये हुए देखकर खेमा ने आश्चर्य प्रकट किया। इस पर मानशाह अपने साथ आये व्यक्ति की कृपा बतायी। खेमा गणीनाथ को देखकर प्रभावित हुई। वह उन्हें बैठने के लिए कहकर घर में गई। घर में भोजन के लिए अन्न का एक भी दाना न था। वह घबराने लगी। यह बात गणीनाथ समझ गए। उन्होंने खेमा को घर के कोने में पड़ी धान की भुस्सी को फटकने कहा। गणीनाथ के आदेश पर खेमा उस भुस्सी को ज्योंहि फटकी, चावल के दाने निकलने लगे। इसके बाद उन्होंने मानशाह के सामने चर रही बछिया से दूध निकालने को कहा। मानशाह ने उस बछिया से बाल्टी भर दूध निकाला। गणीनाथ द्वारा किए गए इस चमत्कार की बात आग की तरह सारे गाँव में फैल गई। गाँव के बहुत सारे लोग उन्हें देखने के लिए मानशाह के यहाँ आए। गणीनाथ ने उसी में से एक को कुम्हार के यहाँ से नयी हाड़ी लाने के लिए भेजा। उस समय कुम्हार अपना आवां लगाने में व्यस्त था। उसने उस व्यक्ति को हाड़ी नहीं दिया। वह व्यक्ति खाली हाथ लौट आया। इधर कुम्हार आवां तैयार कर उसे सुलगाने में व्यस्त हो गया। अनेक प्रयत्नों के बाद भी जब उसका आवां नहीं सुलगा, तब उसे गणीनाथ द्वारा भेजे गए व्यक्ति का स्मरण हुआ। झट वह अपना आवां छोड़कर, एक नयी हाड़ी लिए खोजते हुए गणीनाथ के पास पहुँचा। गणीनाथ के आगे हाड़ी रखकर उसने अपनी गलती के लिए क्षमा माँगी। उसके इतना करते ही आवां में स्वतः आग की लपटे उठने लगी। गणीनाथ ने उस हाड़ी में खीर

बनवाकर उपस्थित सभी लोगों के साथ भोजन किया। हाड़ी छोटी होने के बाद भी खाली नहीं हुयी और खीर भी सभी ने खूब खायी। सभी प्रसन्न होकर उनका जयगान करने लगे तथा उनके शिष्य बन गए।

पलवैया पाल वंशों का राज्य था। धर्मशाह वहाँ का राजा था। एक दिन उसके इकलौते पुत्र परशुराम की मृत्यु सर्पदंश से हो गई। धर्मशाह काफी दुःखी हुआ। जब सभी लोग उसे अंतिम-संस्कार करने के लिए ले जा रहे थे, उसी समय रास्ते में गणीनाथ उन लोगों के समक्ष उपस्थित होकर अपनी योग-विद्या द्वारा परशुराम को जीवन-दान दिया। यह देखकर धर्मशाह समेत सभी उनके चरणों में आ गिरे। धर्मशाह प्रसन्न होकर उन्हें तत्काल अपनी कुछ भू-संपदा दान स्वरूप दे दी। कुछ दिनों के बाद धर्मशाह एवं उसके भाई गोपाल शाह सपरिवार उनके शिष्य बन गए और अपनी सारी संपदा उनके चरणों में अर्पित कर दी।

गणीनाथ पलवैया की समस्त बागडोर अपने हाथ में लेकर धर्मपुर-पलवैया में अपने राज्य की स्थापना की और वहाँ का राजा बनकर योगी-राज कहलाये। योगीराज बन जाने पर मानशाह ने अपनी पुत्री खेमा का विवाह गणीनाथ से कर दिया। खेमा मानशाह की दत्तक पुत्री थी। वह उसे जंगल में लकड़ी काटते वक्त शैशवावस्था में एक पीपल वृक्ष के नीचे मिली थी। गणीनाथ और खेमा परिणयोत्सव में सात सौ साठ जगह के मध्यदेशीय वैश्य भाग लिए। गणीनाथ ने उन सभी को 'मूल-डीह' (गोत्र) प्रदान करते हुए अपना प्रतिनिधि बनाया तथा उनके मध्य आचार-संहिता स्थापित की। परिणय-सूत्र में बँधने के बाद भी गणीनाथ योग-साधना अनवरत करते रहे।

एक बार मध्यरात्रि में गणीनाथ को स्वप्न आया। स्वप्न में उन्होंने देखा कि वे स्वयं गंगा स्नान कर रहे हैं और उनका शिष्य मानिक उन्हें पुकार रहा है। इतना देखते ही गणीनाथ 'झुनकी' खड़ाऊँ पहन, सोने का बेंत ले, घोड़े पर चढ़कर दक्षिण की ओर चल दिए। गंगाघाट पहुँचकर गणीनाथ ने स्नान किया और माता गंगा से उस पार जाने के लिए रास्ता देने को कहा। सात दिन और सात रात बीतने पर गंगा ने गणीनाथ की प्रार्थना सुनी। गंगा बाहर आकर गणीनाथ को अपनी योग-शक्ति से उस पार चले जाने की

बात चुनौती पूर्ण शब्दों में कही। यह सुन गणीनाथ सूर्य को अर्घ्य देकर दाहिना हाथ गंगा की ओर फैलाया। गंगा की धारा रुक गयी और बीच में उस पार तक बालू का ढेर लग गया। गणीनाथ जब उस पर होकर आगे बढ़ने लगे तो गंगा आकर पाँव पकड़ ली। बहुत अनुनय-विनय के बाद गणीनाथ धारा को खोलते हुए गंगा से शर्त करवाया कि वह भाद्रपद मास में हमेशा उनका पैर पखारती रहें।

स्वप्न मुताबिक गणीनाथ गंगा पार कर मानिक के घर गये। घर के बाहर कोई नहीं था। गणीनाथ मानिक को पुकारे। गणीनाथ की आवाज सुनकर मानिक की बूढ़ी माँ गाली देती हुई बाहर निकली और बतायी कि मानिक बारह वर्ष पूर्व ही उनका ध्यान करते वक्त मर गया। गणीनाथ जी ने उसकी माँ को धैर्य धारण कराया और मानिक को जीवित कर देने का वचन दिया। इस पर बूढ़ी झल्लाते हुए बोली कि वे पहले उस फुलवारी को हरा-भरा करके दिखावें जो मानिक के मरते ही सूख गयी हैं। गणीनाथ उस फुलवारी को देखने गये। उनके वहाँ जाते ही फुलवारी पहले की तरह लहलहाने लगी। इस आश्चर्य-कर्म को देखकर मानिक की बूढ़ी माँ आशान्वित हुई। वह गणीनाथ को लेकर श्मशान में गयी, जहाँ उसने मानिक की चिता जलायी थी। गणीनाथ उस स्थान पर बालू का सिरखार (मानव आकृति) बनाकर उसे चादर से ढँक दिया। बूढ़ी अपने बेटे मानिक को पुकारा। पुकारते ही सिरखार डोलने लगा। देखते-ही-देखते मानिक चादर हटाकर बाहर निकला। बेटे को पाकर बूढ़ी काफी हर्षित हुई। वह गणीनाथ को दुआयें देने लगी। इसी तरह गणीनाथ अपना राजकाज संभालते हुए अनेक भक्तों के कष्टों को दूर करते रहे। इनकी कीर्ति दूर-दूर तक फैलने लगी। काफी बाहर के लोग भी इनके दर्शन के लिए आने लगे।

नेपाल और भूटान की सीमा पर बोहा नामक ग्राम में सरयू शाह कुछ रोग से पीड़ित था। बाबा गणीनाथ की कीर्तियों को सुनकर उसकी पत्नी लक्ष्मी उसे लेकर पलवैया आयी। सरयू को रास्ते में ही बैठाकर स्वयं गणीनाथ की कुटिया पर गई। गणीनाथ की कुटिया पलवैया में गंगा के किनारे थी। यही वे योग-साधना करते थे। लक्ष्मी की विनती सुनकर सरयू को अपने पास लाने कहा। गणीनाथ सरयू को देखकर लक्ष्मी को कुछ भभूत उसके

अंगों पर मलने के लिए दिया। भभूत मलते ही सरयू का कुछ समाप्त हो गया। वह बिल्कुल स्वस्थ दिखाई देने लगा। खुशी के मारे वे दोनों अपने पुत्र फेकू और दाया को उनके चरणों में अर्पित कर चले गये।

बाबा गणीनाथ ने उन दोनों भाईयों को गायों को चराने का कार्य सौंपा। उस दिन से दोनों भाई कदली वन में गायों को लेकर जाने लगे। एक दिन कदली वन में एक 'शिल्ला' नामक बाघ गायों पर टूट पड़ा। फेकूराम झट उस बाघ को एक कुश से नाथ कर, उसकी सवारी करता हुआ दरबार में पहुँचा। यह देख गणीनाथ ने उसे अपना सेनापति बना लिया।

समयांतराल में खेमासती के गर्भ से दो पुत्र एवं दो पुत्रियाँ हुईं। पुत्र रायचन्द और श्रीधर तथा पुत्रियाँ सोनामती एवं शीलामती के नाम से बड़ी हुईं। अब ये चारों अपने पिता का प्रतिनिधित्व करते हुए भ्रमण करने लगे। उस समय शैव और वैष्णवों में काफी मतभेद चल रहा था। चारों ने मिलकर उन दोनों को एक करने का प्रयास किया। उस दौरान काफी मात्रा में दोनों धर्मावलम्बी गणीनाथ के शिष्य बन गये। इधर शैव और वैष्णवों की एकता हुई तो उधर कामरू-कामाख्या की नैना-मैना नामक योगिनों का आतंक पूरे साम्राज्य पर छा गया। इसके तंत्र-मंत्र से जनता में दहशत फैल गयी। ये दोनों बहनें इतनी शक्तिशाली थी कि गणीनाथ के योग-सिद्धियों को भी काट डालती थी। परेशान हो गणीनाथ, खेमासती के साथ विष्णु की तपस्या करने लगे। भगवान विष्णु इन दोनों की तपस्या से प्रसन्न होकर वरदान दिये कि वे स्वयं उनका पुत्र बनकर जल्द ही इस धरा पर अवतरित होंगे और कष्टों को दूर करेंगे।

प्रभु का अवतार हो और उनकी लीला न हो? गर्भ में आते ही उन्होंने अपनी लीला प्रारंभ कर दी। खेमासती को काफी कष्ट होने लगा। असहनीय पीड़ा से वे चीत्कार करने लगती थीं। जैसे-जैसे प्रसव के दिन निकट आते, पीड़ा बढ़ती ही जाती। प्रसव के दिन अत्यधिक पीड़ा होते देखकर गणीनाथ झींगमा कहार को चम्पापुर की डगरिन (प्रसव कराने वाली विशेष महिला) को बुला लाने के लिए भेजा। गणीनाथ के हँकार (बुलाहट) को सुनकर पहले तो वह डरी, लेकिन सब कुछ जानने पर वह अपने

को काफी गौरवान्वित महसूस की। वह साधारण वेश-भूषा में पैदल चलकर राजा के घर प्रसव कराने जाने में, राजा और खुद का अपमान समझी। उसने उस दास से कहा कि गणीनाथ उसके लिए चम्पापुर से पलवैया तक कपड़े का कपड़कोट लगवा दें ताकि उसे कोई न देखे। इसके साथ ही सोलह कहार वाली डोली में, सोलह श्रृंगार, बत्तीसों आभरण और लहंगा पटोर उसके लिए भेज दें, तब वह उनके यहाँ जाएगी। दास ने यह बात पलवैया लौटकर योगीराज से बतायी। गणीनाथ ने मजबूरी वश सारी वस्तुएँ चम्पापुर भेज दी। उसे पाकर डगरिन फूली न समायी। झटपट तैयार होकर पलवैया आ गई। पर उनके आने के पूर्व ही प्रसव हो चुका था। भगवान विष्णु 'गोविन्द' रूप में मुस्कुरा-मुस्कुरा कर अपनी माता खेमासती से बातें कर रहे थे। डगरिन जब प्रसव गृह में गई तो बालक गोविन्द उसे फटकार कर दूर रहने को कहा। नवजात शिशु को बोलते देख अपमानित डगरिन ब्राह्मणों के पास गई। वह ब्राह्मण से मिलकर उस बालक को मरवा देने का षडयंत्र रचने लगी। ब्राह्मण भी उसकी उलटी-सीधी बातों में आ गया। ब्राह्मण योगीराज को अनिष्ट की आशंका जतलाकर उस शिशु को जमीन के नीचे दबा देने की सलाह दी। सात सौ कुदाल टूटने के बाद भी जब कोई दरार तक न हुआ तब ब्राह्मण शिशु को मंजूषा में रखकर गंगा में प्रवाहित कर देने को कहा। जन्म लेते ही शिशु को बोलते देख सबके सब घबराये हुए थे। सबों ने झटपट चंदन का वृक्ष काटकर मंजूषा बनाया। फिर उस मंजूषा में शिशु गोविन्द को सुलाकर गंगा में प्रवाहित कर दिया।

मंजूषा के बहते ही गणीनाथ का धन-धान्य नष्ट हो गया। ब्राह्मण परिवार भी दरिद्र हो गया। इन लोगों का जीवन दुःखमय व्यतीत होने लगा। इधर माता गंगा शिशु रूप में गोविन्द को बहते देख, उन्हें अपने घर ले गयी। गोविन्द जी किशोर होने तक वहाँ रहे। जब उन्हें यार कारिख की याद आयी तो वे माता गंगा को सारी बात बतलाकर आज्ञा माँग ली। गंगा ने उन्हें कामरू जाने से पूर्व अपनी माँ से मिल लेने को कहा। गोविन्द जी माता से मिलने पलवैया आये। माता खेमासती उन्हें पहचान ली। हर्षित होकर घर के अंदर ले जाने लगी। लेकिन गोविन्द जी नहीं गये। कामरू-प्रयाण की बात बतलाकर माता से भिक्षा माँगी और 'हिछड़ा' नाम मरियल घोड़ा को तिलक लगा देने कहा। गणीनाथ के लाख समझाने पर भी अडिग रहे। हारकर माता खेमासती ने भिक्षा दे दी

और घोड़ा को तिलक लगा दिया। गोविन्द जी उस घोड़े पर सवार हो कामरू-कामाख्या के लिए प्रयाण किये। गोविन्द जी की सवारी कर हिछड़ा तंदुरुस्त हो गया। ऐंड़ लगाते ही वह हवा से बात करने लगा।

कामरू में प्रवेश करते ही गोविन्द जी की भेंट हिरबा-जिरबा नामक तमोलिनों से हुई। दोनों ने इनका स्वागत एक बीड़ा पान देकर की। गोविन्द जी पान लेकर मुँह में रख लिये, पर उसका एक भी पीक गले के नीचे नहीं उतारा। इससे उनके ऊपर पान का कोई असर नहीं हुआ। इनकी इस चतुरता से प्रसन्न होकर तमोलिन दोनों बहने नत-मस्तक हो आगे का रहस्य बतला दी। रहस्य जान लेने पर वे पहले कुसमा मालिन के यहाँ गए। वह इन्हें देखकर काफी खुश हुई। उसने झटपट इनकी ओर एक फूल बढ़ा दिया। गोविन्द जी उससे फूल लेकर सूँघने के बजाय मसल कर नीचे फेंक दिये। फिर उसे डाँटकर कामरू का अगला रहस्य पूछा। मालिन इनके रूप-जाल से मोहित हो, कामरू-कामाख्या की नैना-मैना का रहस्य बता डाली।

इधर इन दोनों योगिनों का प्रभाव नष्ट हुआ जानकर नैना-मैना अपने जादू की नगरी में सुरक्षित महसूस करने लगी। लेकिन गोविन्द जी समय पर वहाँ पहुँच गए और बड़ी चतुरता से जादू को तोड़कर दोनों बहनों के समक्ष उपस्थित हुए। दोनों बहनों ने इनको जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया। गोविन्द जी उसके साथ जुआ खेलने लगे। नैना-मैना जुआ के बहाने इनको बहलाने-फुसलाने लगी। गोविन्द जी वहाँ दृढ़ता से काम लेकर योगिन का सारा तंत्र-मंत्र जीत कर अपने अधीन कर लिए। इसके बाद उन दोनों बहनों को भी जीत लिया तथा उसे बंदी बना लिया। नैना-मैना के बंदी बनते ही यार कारिख समेत बहुत सारे लोक देवता उसकी कैद से मुक्त होकर गोविन्द जी का जयगान करने लगे। गोविन्द जी अपने अधीन हुए सारे तंत्र-मंत्र को नष्ट करने चले। इस पर लोक देवताओं ने प्रार्थना करते हुए कहने लगे कि अगर सभी तंत्र-मंत्र नष्ट हो जाएगा तो पृथ्वी पर धर्म का प्रभाव ही नहीं रहेगा। देवताओं की सामूहिक विनती सुनकर गोविन्द जी ढाई अक्षर मंत्र को छोड़कर सबको नष्ट कर दिये और अपने पिता गणीनाथ के पास लौट आये। पलवैया की जनता ने इनका भरपूर स्वागत किया। गोविन्द जी के लौटने से गणीनाथ को खोया हुआ

धन प्राप्त हो गया। सभी पूर्व की भाँति रहने लगे। स्थिति सामान्य होने पर गणीनाथ ने गोविन्द जी को ब्याह करने को कहा। इस पर गोविन्द जी ने अखंड ब्रह्मचर्य रहने का फैसला सुनाया। शीलामती और सोनामती की भी इच्छा यही थी। लेकिन लोक-लज्जा के खातिर उन दोनों का विवाह शिकारपुर (पश्चिम चंपारण) ग्राम में कर दिया गया।

श्रीधर और रायचंद गणीनाथ की आज्ञा से शादी करने के लिए तैयार हुए। इनकी शादी पटना के झोटी शाह की कन्या से तय हुई। झोटी शाह को अपने धन का घमंड था। उसने गणीनाथ को पूरी संख्या में बारात लाने के लिए कहा। बारात सज-धज कर चली। गंगा किनारे आने पर वहाँ एक भी नाव दिखाई नहीं दी। झोटी शाह ने नावों को बारात आने के पूर्व ही हटवा दिया था। यह बात बाबा गणीनाथ को समझते देर न लगी। उन्होंने गंगा से प्रार्थना की। गंगा का पानी घुटने भर हो गया। सभी आसानी से पार हुए। बारात आने की खबर सुन झोटी शाह अपने मित्र राजाओं को सैनिकों के साथ स्वागत के लिए भेजा। राजाओं ने बारातियों का स्वागत करते हुए गणीनाथ से कहा कि बाबा आप बेटे की शादी करने आये हैं तो आपको अभी नौ लाख रूपये देने होंगे। गणीनाथ ने कहा कि हम संन्यासी इतना रूपये आपको कहाँ से दे पाएँगे। इस पर राजा के सैनिक बारातियों को परेशान करने लगे। गोविन्द जी ने आगे बढ़कर कहा कि आप अपने सैनिकों को रोककर उन्हें पीठ पर हाथ रखकर खड़े रहने को कहिए, मैं रूपये की व्यवस्था करता हूँ। थोड़ी देर बाद गोविन्द जी कुछ सिक्के राजाओं के पास रखते हुए उसे गिन लेने को कहा। राजा उसे लेने के लिए आगे बढ़ा, पर वह उठ नहीं पाया। वह जहाँ बैठा था, उसी से चिपक गया। सैनिकों के हाथ भी पीठ पर से आगे नहीं आ रहे थे। लगता था पीठ से हाथ को बाँध दिया गया है। सभी त्राहि-त्राहि कर चिल्लाने लगे। उनकी चिल्लाहट सुनकर झोटी शाह दौड़ा आया और बाबा गणीनाथ के सम्मुख हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाने लगा। गणीनाथ द्रवित हो गए। सबकुछ पहले जैसा हो गया। सभी राजा दौड़ कर इनके चरणों में आ गिरे। बारात आगे बढ़ी।

गणीनाथ का एक सेवक था हनुबल। हनुबल ने गणीनाथ की कृपा से सिद्धियाँ प्राप्त कर रखी थी। वह दरवाजा लगने के वक्त एक छोटा-सा बालक का रूप बनाकर रोने लगा। पूछने पर

उसने खाने की इच्छा व्यक्त की। गणीनाथ ने झोटी शाह से आग्रह किया कि वे पहले इस बालक को खिलाने की व्यवस्था करें। झोटी शाह उस बच्चे को घर में ले जाकर खिलाने लगा। हनुबल सारे बरातियों के लिए तैयार किया गया भोजन अकेले ही चट कर गया। यह देखकर झोटी शाह का अहंकार समाप्त हो गया। वह बाबा गणीनाथ के चरणों में आ गिरा।

श्रीधर और रायचंद का विवाह क्रमशः चतुरी एवं बिजुली नामक कन्याओं के साथ हुआ। समयांतराल में श्रीधर राय के चार पुत्र-साहब राय, जगन्नाथ राय, सहपति राय और चक्रपाणि तथा रायचंद के एक पुत्र-नीलकंठ राय हुए। इसी दौरान सूबेदार लाल खाँ, किशती खाँ और बाकर खाँ ने मिलकर पलवैया पर चढ़ाई कर दी। गोविन्द जी आनन-फानन में सैनिकों को तैयार कर चल दिए। साथ में श्रीधर राय, रायचंद, शीलामती और सोनामती भी पूरे जोश में चले। कदली वन में घमासान युद्ध हुआ। इस युद्ध में सैनिक समेत किशती खाँ और बाकर खाँ मारा गया। गोविन्द जी ने लाल खाँ की एक बाँह काट डाली। यह देख उसके सैनिक भाग खड़े हुए। उसने आत्मसमर्पण कर दिया। आत्मसमर्पण करते ही उसके प्राण पखेरु उड़ गये।

बसही ग्राम की एक तेलिन को गणीनाथ की कृपा से पुत्र हुआ था। उसने प्रसन्न होकर एक सुन्दर घोड़ा बाबा गणीनाथ को भेंट स्वरूप दिया। गणीनाथ के पौत्र चक्रपाणि जी उस घोड़े पर सवार हो जंगल की ओर घूमने निकल गए। जंगल में घूमते वक्त उन्हें एक हिरण दिखाई पड़ा। वे उस पर तीर चला दिये। तीर लगते ही हिरण करुण विलाप करने लगा। हिरण का आर्तनाद सुन गणीनाथ दुखी हो शाप देते हुए कहा कि जिसने भी हिरण को मारा है, वह भी तड़प-तड़प कर मर जाय। गणीनाथ के मुख से इतना निकलते ही चक्रपाणि जी की मृत्यु उसी जंगल में हो गई। यह जानकर गणीनाथ को काफी अफसोस हुआ। चक्रपाणि जी की मृत्यु जहाँ हुई वहीं उनकी समाधि बना दी गई, जो चक्रपाणि चौड़ा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इसी तरह एक बार एक भक्त दो-तीन घोंद केला दे गया। सहपति राय उस घोंद से कुछ छीमियाँ (केला) तोड़कर खा गए। बाबा गणीनाथ ने जब घोंद से केला टूटा हुआ देखा तो सबों से

पूछताछ की। किसी ने कुछ नहीं कहा। बस, गणीनाथ के मुँह से शाप निकल गया कि जिसने भी इस घौँद से केला तोड़ा है, उसकी गर्दन मुड़ जाय। यह वाक्य पूरा होते ही सहपति राय की गर्दन मुड़ गयी। वे गूंगा हो गए। यह देखकर गणीनाथ तड़प उठे। उनके शाप का कोपभाजन उनके ही दो पौत्रों को होना पड़ा, इससे उनका मन विचलित हो गया। उन्होंने अब यहाँ रहना उचित नहीं समझा। उन्होंने समाधि लेने की इच्छा व्यक्त की। परिवार के सभी लोग इनका साथ देने के लिये आगे बढ़ आये। गणीनाथ के लाख समझाने के बाद भी किसी ने नहीं माना। सबके सब श्रावण पूर्णिमा के दिन बाबा गणीनाथ के साथ पलवैया में ही समाधिस्थ हो गए। फेकू राम, दायाराम और मंशाराम (मानशाह) बोहा गाँव वापस चले गये। ये तीनों 'मनुषदेवा' के रूप में भक्तों के बीच प्रतिष्ठित हुए।

गणीनाथ के भक्तों की संख्या काफी थी। उनके समाधिस्थ होने पर, उनकी स्मृति में समाधि स्थल पर एक विशाल मंदिर का निर्माण किया गया। गणीनाथ के इस मंदिर के अगल-बगल चौदह छोटे-छोटे और मंदिर बनाये गये। इस तरह बाबा गणीनाथ के सभी परिवारों के लिए अलग-अलग मंदिर बने। लोगों ने गणीनाथ के अवतरण के दिन, उनकी विशेष पूजा करने लगे। इस विशेष पूजा में बाहर के भक्त भी आने लगे। बाहर से आने वालों के ठहरने के लिए धर्मशाला बनायी गई। मंदिर के पीछे गंगा नदी पश्चिम से दक्षिण पूरब की ओर थी, उसमें उतरने के लिए सीढ़ियाँ बनायी गयी। इन सबों में जब चहारदीवारी दी गई, तो भीतर का प्रांगण ग्यारह सौ बीघा का हुआ। इस तरह बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिम बंगाल और नेपाल में फैले गणीनाथ के अनुयायियों ने पलवैया को अपना तीर्थ-स्थल बनाया। मध्यदेशीय वैश्यों का यह पवित्र तीर्थ-स्थल सन् 1938 के भीषण कटाव में गंगा की गोद में समा गया। पुनः गणीनाथ के भक्तों ने बचे भू-भाग में एक मंदिर का निर्माण कर लिया। अब सभी भक्त इसी मंदिर

में गणीनाथ की जयंती उनके अवतरण के दिन मनाने लगे। परन्तु यह मंदिर भी सन् 1998 के कटाव में पुनः गंगा में बह गया।

इतना होने के बाद भी भक्तों के उत्साह में कमी नहीं आयी। प्राचीन मंदिर के अवशेष को इकट्ठा कर बगल के गाँव हसनपुर में ले आये। तत्काल वहीं पर एक गहवर (घर) नुमा मंदिर तैयार कर अवशेषों को स्थापित कर लिया है। वर्तमान में इसी मंदिर में पूर्व की भाँति गणीनाथ की पूजा उसी श्रद्धा और विश्वास के साथ की जाती है।

बाबा गणीनाथ की पूजा चढ़ावन चढ़ाकर, धूप, दीप एवं अगरबत्तियाँ जलाने के बाद उनके प्रचलित लोक गीतों को यहाँ के लोकस्वर में गाकर की जाती है। इनके लोकगीतों की संख्या दो दर्जन से ऊपर है। चढ़ावन (पान, कसेली, फल, फूल, अक्षत, लहठी, जनेऊ और पीला वस्त्र) को बाँस की कमचियों से तैयार सुपती और मौनी में रखकर की जाती है।

बाबा गणीनाथ की कृपा केवल मध्यदेशीय वैश्यों पर ही नहीं, पलवैया में बसने वाले सभी जातियों पर समान रूप से थी। इसीलिए आज मध्यदेशीय वैश्यों के अलावा अन्य जाति के भी कुछ लोग इनकी पूजा करते हैं और इन्हें कुल देवता बनाकर अपने-अपने घरों में मृण-पिण्ड (बाबा गणीनाथ) को रखे हुए हैं।

अभी बिहार, उत्तरप्रदेश, पश्चिम-बंगाल एवं नेपाल में स्थित इनके अनुयायियों ने जगह-जगह इनके अनेक मंदिर बना लिए हैं। प्रत्येक मंदिर में गणीनाथ अवतरण दिवस पर धूमधाम से गणीनाथ-जयंती मनायी जाती है। इसके बावजूद गणीनाथ अवतरण दिवस के अवसर पर पलवैया के नाम से हसनपुर में कोने-कोने से भक्तों की जैसी भीड़ लगती है, वह और कहीं देखी नहीं जाती।

महाराजपुर के बहाने

डॉ. सुरेश मिश्र

इस बार जब मैं अपने गृहग्राम महाराजपुर गया तो मालूम पड़ा कि कढ़ोरी भरेवा का स्वर्गवास हो गया है। कढ़ोरी का जाना उस इलाके से दो और भी चीजों का जाना था- चंग गायकी का और पैरी की ढलाई की कला का। कढ़ोरी मेरे साथ प्रायमरी में पढ़ा था और फिर पढ़ाई छोड़कर पैरी बनाने के पुश्तैनी धन्धे में लग गया। उसका गला अच्छा था और जल्दी ही वह चंग पर गाने लगा। महाराष्ट्र में इसे लावणी कहते हैं पर महाराजपुर के आसपास के इलाके में इसे चंग ही कहा जाता है। मुझे याद है कि जब मण्डला के उदय चौक में जबलपुर की चंग पार्टी का मण्डला की पार्टी से मुकाबला होता था तब किशोर कढ़ोरी की गायकी से समां बंध जाता था। लावणी में या चंग गायकी में दो दल होते हैं- कलगी और तुरा। कढ़ोरी कलगी गायकी का था। चंग गायकी का रिवाज महाराजपुर-मण्डला से काफी पहले खत्म हो गया है। पिछले साल जब मैं कढ़ोरी से मिला था तो वह महाराजपुर के चौबटा में एक होटल चला रहा था। चंग से उसका इतना नाता टूट गया था कि उसके घर में चंग ही नहीं थी। हाँ, गायकी के कवित्तों के रजिस्टर जरूर थे। पता नहीं अब वे किस हालत में हैं।

महाराजपुर में पैरी बनाने वाले कुछ भरेवा परिवार थे। मैं जब छोटा था तब नारायण भरेवा, उनके बड़े भाई साहबलाल, लिप्पी और करिया भरेवा के यहाँ पैरी ढलाई का काम होता था। करिया कढ़ोरी के पिता थे। पैरी बनाना और घोड़े पर माल लादकर आसपास के हाट बाजारों में पैरी बेचना। पैरी गिलट की बनती थी और इसे मोम का सांचा बनाकर ढाला जाता था। यह काम कलात्मक भी था और बारीक भी। गोंड महिलाएँ और गाँव के गरीब लोग पैरों में पैरियाँ ही पहनते थे। सम्पन्न परिवारों की महिलाएँ तब चाँदी की तोडर पहनती थी। चाँदी के लच्छे पहनना तब कुछ फैशनेबल माना जाता था। यह मैं 1950 के आसपास की बात कर रहा हूँ। धीरे-धीरे पैरी का रिवाज कम हो गया और भरेवों का यह धन्धा खत्म हो गया और भरेवा अन्य धन्धों में लग गये। इस तरह धातु की ढलाई का एक पारम्परिक शिल्प नष्ट हो गया।

पैरी बनना ही बन्द नहीं हुआ। और भी कुछ खत्म होने में देर नहीं लगी। कढ़ोरी के यहाँ से लौटकर मैं सुखराम भैया के यहाँ गया। अब ये पचहत्तर पार कर चुके हैं। मैंने अपने बचपन में उन्हें महाराजपुर में हनुमानजी के चबूतरे पर चौपड़ और कोट नामक ताश का खेल खेलते देखा था। बिजिक नाम का ताश का खेल भी उन दिनों प्रचलित था। ताश की कई गड्डियों से यह खेल खेला जाता था और इसमें अंकों का काफी हिसाब रखना होता था यह मुझे धुंधली सी याद है। मैंने सुखराम भैया से पूछा कि चौपड़, कोट और बिजिक का खेल खेलते हैं या नहीं। सूखी सी मुस्कराहट से वे कहते हैं कि कई साल से नहीं खेला और अब तो भूल भी चुके हैं वे खेल। मैंने मण्डला-महाराजपुर में चौपड़ और उसके पांसे खरीदने चाहे पर वे मिले नहीं। चौपड़ हाथी दांत या हड्डी के तीन पांसे से खेला जाता है पर महाभारत सीरियल में शकुनि को दो पांसों से खेलते दिखाया गया था।

चौबटा अब दूकानों से गुलजार है और महाराजपुर की सारी दूकानें वहीं आ गयी हैं, क्योंकि वहाँ से बसें आती जाती हैं और महाराजपुर के पड़ोसी गाँव वाले उसी रास्ते से आते जाते हैं। पर पहले बाजार बस्ती के भीतर था। हनुमानजी के चबूतरे से लगाकर नावघाट तक दोनों तरफ दूकानें और सड़क के किनारे पट्टी पर सब्जी वालियों, चना, शकरकन्द वालियाँ और हाट के दिन आसपास के गाँव से आये दूकानदार, चावल, प्याज, मौसमी फल आदि लेकर बैठते हैं। सन और गेहूँ, सरसों के मौसम में बाजार की रौनक बढ़ जाती थी, क्योंकि आसपास के किसान ये चीजें लेकर आते थे और महाराजपुर के व्यवसायी उनका माल खरीद लिया करते थे। तब पूसू लोहर अनाज को कुड़ों से नापने में मशगूल रहते थे और पल्लेदार सन की गांटों को उतारने लादने में। पर कुछ साल बाद यह परिवार नर्मदा के उस पार मण्डला चला गया और सन आदि की मण्डी भी मण्डला चली गयी।

चौबटा के पास ही टौरिया में महाराजपुर के सारे मवेशी एकत्र होते थे और मवेशियों की यह बरदी बारेलाल अहीर चराने ले जाता था। यही बारेलाल अहीर दीवाली के समय लोहे के पैजन पहने, कौड़ी के अलंकारों से सजा, मांदर और थाली के वादकों के साथ सभी घरों में नाचने जाता था। हाथ में मोटी सी लाठी जिसके सिरे पर खरपतवार बंधे होते थे- बारिश के बाद

चरागाह से खरपतवार उखाड़कर मवेशियों के लिये चरागाह तैयार करने के प्रतीक रूप में। अहीरों की नाच का यह क्रम पूरे पन्द्रह दिन चलता था। घर में नाचने के बाद असीस पढ़ी जाती थी- हम तो अपने घर चले, अब बाढ़ियों जस गंगा में बाढ़ी पानी रे.....। अब महाराजपुर में इतनी मवेशियाँ नहीं हैं कि बरदी चराई के लिये जायें। महाराजपुर की मड़ई, मड़ई भाटा में लगती थी और मण्डला की मड़ई लालीपुर मैदान में। अब दोनों मड़ई खत्म हो गयी हैं क्योंकि खुली जगह नहीं बची है। बम्हनी की मड़ई, सीतारपटन की मड़ई और बिछिया की मड़ई के तब बड़े चर्चे होते थे। अब दीवाली में अहीर नाचते जरूर हैं पर मड़ई अब वैसी नहीं होती क्योंकि बाजार तो सभी जगह हो गये हैं। पहले मड़ई खरीददारी का खास केन्द्र होता था।

प्राथमिक शाला के ग्राउण्ड में चाँदनी रात में महाराजपुर के नौजवान, जो अब 75 पार कर रहे हैं, चर्चा खेलते थे। हम छोटे होने के कारण दर्शक बने रहते थे, क्योंकि इसके लिये काफी तेजी, ताकत लगती थी और काफी भागदौड़ होती थी। हम लोग तो गुल्ली डण्डा और गढ़ा गेंद और फुटबाल खेलकर संतोष कर लेते थे। किसी पेड़ की डाल की हाकी बनाकर हाकी खेलना भी बहुत चलता था। चर्चा तो पचास साल पहले से खत्म हो गया और गिल्ली डण्डा तथा गढ़ा गेंद भी अब देखने में नहीं आते। ये ही क्या हाकी और फुटबाल भी नहीं दिखते।

उन दिनों महाराजपुर में तमेरों के कई घर थे। मेरे घर के पास ही मोटी दाई के तीन बेटे-सरजू, बासदेव और मुरारी और दूसरे हिस्से में नरसिंह का घर। एक तरफ पंचम तमेरा के बेटों गणेश तमेरा और उनके भाई महेश के घर। दूसरी गली में चुन्नू दादा और उनके चार लड़के थे लछमन, भारत, अजुध्या और सुदामा और उनके घर से लगे उनके दो भाइयों के घर। वहाँ के गणेश, मथुरा और हरी मेरे हम उग्र थे। बाजार के आगे हुब्बा तमेरा और उनके दो भाइयों के घर। सुबह भोर से ही तमेरों की ठक-ठक शुरू हो जाती थी। मर्द बर्तन बनाते थे और औरतें बने हुए पीतल के बर्तनों को साफ करती थीं। महाराजपुर के ज्यादातर कसैड़ी याने गुण्ड बनते थे। बाजार हाट और मड़ई मेलों में महाराजपुर की कसैड़ी की बहुत माँग थी।

सरजू, वासुदेव और मुरारी की माँ मोटी दाई का खुद के

घर पर ही क्या सारे मोहल्ले पर प्रभाव था। तब वे करीब साठ साल की होंगी लेकिन उनके चेहरे से झलक मिलती थी कि वे कभी बहुत सुन्दर रही होंगी। मोहल्ले की बहुएँ, जिनमें मेरी माँ भी शामिल थी, अपना दुखड़ा मोटी दाई से बताती थीं और फिर मोटी दाई शिकायतकर्ता के पति को अच्छी डांट पिलाती थीं, जो बड़े सम्मान के साथ सुनी जाती थी और बहुओं की समस्याएँ काफी कम हो जाती थीं। थीं वे तमेरा जाति की लेकिन आसपास के बाम्हन बनिये भी उनकी इज्जत करते थे। सुबह होते ही वे अपने मिट्टी के घर के ओटले पर बैठ जाती थी। मोहल्ले के शिशुओं की छोटी-मोटी बीमारी का इलाज मोटी दाई ही कर देती थीं। पेट दर्द हुआ तो नाभि में हींग लगाने की, चोट लगी तो हल्दी चूना लगाने की, कान दर्द हुआ तो सिकाई की और बच्चा ज्यादा रोता हो और माँ को काम न करने देता हो तो उसे घुटी के साथ अफीम चटाने की सलाह दे देना।

धीरे-धीरे महाराजपुर के तमेरों का धन्धा खत्म होने लगा क्योंकि अब बाजार में स्टील के बर्तन आ गये थे। जब, स्थानीय भाषा में, दिसावर याने बाहर का कारखाने का माल आने लगा तो यह धन्धा बिलकुल ही चौपट हो गया। तब इन तमेरों ने दूसरे धन्धे अपना लिये या फिर कारखाने में बने बर्तन या अल्यूमीनियम के बर्तनों की दूकानें खोल लीं। इस प्रकार महाराजपुर से पीतल के बर्तन बनाने का पारम्परिक शिल्प भी गायब हो गया।

चुन्नू तमेरा के दूसरे बेटे भारतलाल को मुहर्रम के दिन सवारी आती थी। एक और हिन्दू को और ईदू मियां को भी सवारी आती थी और इसमें सारा महाराजपुर बड़े जोश से भाग लेता था। अब्बू मियां के साथ मर्सिया पढ़ने की जैसे होड़ लगती थी। वैसे महाराजपुर में मुस्लिमों के तब 5-7 ही घर थे पर मुहर्रम मुस्लिमों का नहीं पूरे महाराजपुर के लिये था। नर्मदा नदी में गुसल याने स्नान के साथ ही भारतलाल को सवारी आ जाती थी और भारतलाल हरे कपड़े पहने वहाँ आ जाते थे, जहाँ नेजा रखा रहता था।

हम लोग हरे धागे की सेली में गुंथी चाँदी का चाँद पहनते, गन्ने लिये सवारी के पीछे दूल्हा-दूल्हा कहकर भागते थे और अखिरी दिन खिचड़ा खाते थे। संयोग की बात है कि मुहर्रम जैसे

50 साल पहले होता था वैसे आज भी वहाँ होता है। अब भी यहाँ हिन्दू युवकों को सवारी आती है।

अब्बू मियां की बात करते हुए बंसू दीक्षित, शान्तकुमार जैन और पंसारी के गठे हुए बदन की मुझे याद आती है। पर यह सब शौक से होता था। ये सभी उम्मी सेठ के गठीले बदन की याद करते नहीं थकते थे, जो बूढ़े हो गये थे। सुन्दर बदन के स्वामी परमात्मा सेठ भी अब ढलान पर थे। नागपंचमी के दिन ज्वालाजी के अखाड़े में बहुत भीड़ होती थी और महाराजपुर और उसके आसपास के पहलवान उसमें जोर आजमाइश करते थे। मजाल नहीं कि कोई फसाद हो जाये। पुलिस का एक भी सिपाही वहाँ नहीं रहता था। बड़े-बूढ़े ही सब सम्हाल लिया करते थे। अब तो अखाड़े का नामोनिशान नहीं है।

चुन्नू दादा के घर के सामने ही पूसू लखेरा का दो मंजिला मकान था जिसमें पूसू, शंकर और उनके एक और भाई के साथ हमारा सहपाठी मन्नू लाख बनाते रहते थे। तीनों भाई की पत्नियाँ, जिन्हें हम लोग भौजी कहते थे, काम में हाथ बंटाती थीं और हफ्ते में एक-दो बार महाराजपुर में चूड़ी और कलाई में पहनने की लाख बेचती थीं। शंकर सबसे छोटे थे और उनकी पत्नी याने हमारी भौजी बहुत सुन्दर और मृदुभाषी थीं। उनके यहाँ दो अच्छे घोड़े थे जो आसपास के हाट-बाजार जाने के काम आते थे। मन्नू हम लोगों के लिये हीरो था क्योंकि वह इन घोड़ों की सवारी बड़े मजे से करता था और रोज इन्हें नर्मदा में नहलाने और पानी पिलाने ले जाता था। कई साल बाद जब मैं महाराजपुर गया था तब तक लाख का धन्धा खत्म हो गया था और तीनों भाई और उनका परिवार मजदूरी करके बसर करता था। एक मकान बनते समय जब मैंने शंकर भैया और उनकी पत्नी याने हमारी भौजी को ईंट उठाते देखा तो मेरा कलेजा मुँह को आ गया था। तब इन दोनों ने मुझे देखा और दूसरी ओर मुँह फेर लिया था और मैं भी ऐसे निकल गया जैसे कि मैंने उन्हें देखा ही नहीं।

पुत्रा तेली के यहाँ रात में होने वाले भजनों की याद मुझे खूब है। हीरा बाबा, पंचम उस्ताद वगैरह की याद मुझे हैं और यह भी याद है कि ब्रह्मानन्द के भजन गाये जाते थे। लकड़ी की फ्रेम पर बकरी का चमड़ा मढ़ा होता था और फ्रेम पर पीतल की

चकरियाँ या घुँघरू। अब तो खंजड़ी क्या है यह भी लोग नहीं जानते। मैंने जब खंजड़ी खरीदने की कोशिश की तो मुश्किल से समझाना पड़ा कि यह है क्या। जवाब में मुझे आर्केस्ट्रा में बजायी जाने वाली ढपली दिखायी गयी। मुझे आज भी भजन के समवेत स्वर और खंजड़ी की ताल याद है। खंजड़ी मिल जाये तो मैं उसे ब्रह्मानन्द के भजनों की ताल पर बजा दूँ।

पुन्ना का घर मेरे घर के पास ही था। उसके घर में दो घानी चलती थीं और तेल बेचकर बड़े मजे से गुजर हो जाती थी। तब कारखानों का तेल गाँवों और कस्बों में नहीं पहुँचा था। पुन्ना के अलावा खूब्बी तेली, झाड़ू तेली और अन्य दो घरों में भी घानियाँ थी। उस इलाके में सरसों, तिली काफी होती थी और घरों में सरसों का तेल ही खाया जाता था। मूँगफली इस इलाके में नहीं पैदा होती थी। बाद में बाहर से मूँगफली का तेल आना शुरू हुआ और उसके प्रचलन में सरसों के तेल को चलन से बाहर कर दिया। बचपन में पुन्ना के यहाँ की घानी में बैठकर चक्कर लगाने की मुझे खूब याद है। यह विशेषाधिकार मुझे इसलिये मिलता था क्योंकि पुन्ना मेरा सहपाठी था पुन्ना के यहाँ बिजिक का सेट भी था जिसे हम लोग कभी-कभी खेला करते थे, हालाँकि वह बड़ों का खेल माना जाता था।

पुन्ना के घर के बाजू से ही नर्मदा नदी के पथरौला घाट को रास्ता जाता था जो सुबह पनहारियों और स्नान के लिये जाने वालों

से गुलजार रहता था। नल तो थे नहीं तो सारा निस्तार नदी और कुँए से होता था। नदी में ही स्नान करने सभी जाते थे। छुट्टी का दिन नर्मदा के तट के पथरौला घाट पर बहुत चहल-पहल का होता था क्योंकि सभी लोग अपने कपड़े भी धोते थे और जमकर नहाते थे। तुअर की दाल कुँए के पानी से नहीं पकती थी इसलिये दाल पकाने के लिये घर में नर्मदा का पानी जाता ही था। नल आने से नर्मदा तट के घाट की चहल-पहल खत्म सी हो गयी है। नर्मदा तट और भी कई बातों के लिये सभी से जुड़ा था। सावन में माहुलिया के त्यौहार में बच्चियाँ अपनी सहेलियों के साथ अपने भाई को नदी तट पर ले जाती थी और वहाँ खेलना होता था। पोला के दिन गेंड़ी की खपच्चियाँ सिराने का काम भी नर्मदा तट पर होता था। और सबसे रोमांचक बात यह कि मुहर्रम के दौरान भारत तमेरा की सवारी की गुसल भी उसी घाट पर होती थी, जिसे देखने सैकड़ों की भीड़ जमा होती थी।

महाराजपुर में सवारी तो अभी भी है पर बाकी चीजें नहीं हैं। चंग, पैरियाँ, तमेरों की ठक-ठक, पथरौला घाट की चहल-पहल, अखाड़े, कसैड़ी, खंजड़ी के भजन, बिजिक, चौपड़, तेल घानियाँ आदि सभी कुछ तिरोहित हो गये हैं। महाराजपुर के लोगों के जीवन में धीरे-धीरे होने वाला यह बदलाव समय के एक अन्तराल के बाद ही समझ में आता है। यह सिर्फ महाराजपुर की कहानी नहीं है, बल्कि हर गाँव और कस्बे की कहानी है। बात वही है, महाराजपुर तो बस एक बहाना है।

बातचीत

गोविन्दराम निर्मलकर से सुनील मिश्र की बात

प्रख्यात रंगकर्मी हबीब तनवीर ने छत्तीसगढ़ी लोकनाट्य नाचा के पुराने और सशक्त कलाकारों को लेकर जब शुरूआत में 'नया थिएटर' की स्थापना 60 के दशक में की थी, तब उनके साथ अपने गुरु के पीछे-पीछे गोविन्दराम निर्मलकर भी चले आये थे। तब से लगातार उन्होंने हबीब तनवीर के साथ काम किया है। एकदम युवावस्था में हबीब तनवीर के साथ हो लिए गोविन्दराम निर्मलकर अब 70 साल से ऊपर के हैं। उम्र के साथ-साथ क्षमता और स्मृति की अपनी कठिनाईयों के चलते तथा परिवार से लगातार अलग रहते हुए उनके और अपने बीच की परस्पर आत्मीयता से वंचित रहने वाले गोविन्दराम ने कुछ समय से घर जाने और आराम करने का मन बनाया है। यह समय की विडम्बना ही कही जायेगी कि जब तक सक्रिय रहे तब तक आराम की उन्होंने परवाह नहीं की। हाल ही में उनका स्वास्थ्य ऐसा गड़बड़ाया कि अब वाकई राजनांदगांव के अपने मोहारा गाँव में आराम करने के अलावा कोई विकल्प नहीं रह गया है। लेकिन जो प्रेक्षक, जानकार और दर्शक उनके काम के साक्षी हैं वे उनकी क्षमता, प्रतिभा और प्रभाव की लम्बी व्याख्या कर सकते हैं।

गोविन्दराम निर्मलकर उन अभिनेताओं में से हैं जो न केवल हास्य भूमिकाओं को सहजता-सरलता से करते हैं बल्कि दुखान्त चरित्रों को भी आभासहीनता से अभिनीत करते हैं। अपनी हास्य भूमिकाओं के लिए वे शायद ही कभी मसखरेपन का सहारा लेते हैं उसी तरह वे हँसोड़ चरित्र को सीधे बेबाक रूप से दुखान्त चरित्र की भाँति ही प्रभाव के प्रति तटस्थ होकर प्रस्तुत करते हैं। यह विशेषता छत्तीसगढ़ कलाकारों में कम ही दिखाई देती है क्योंकि उनमें हास्य के प्रति एक अनुकूल वृत्ति होती है। गतिवान चेहरा, तरल आँखें और भारी बुनावट की शक्तिशाली आवाज के धनी गोविन्दराम के अभिनय के इस गुण ने नाचा कलाकार की रंगकला में एक

नया आयाम जोड़ा है। 1935 में राजनांदगांव के पास मोहारा गाँव में उनका जन्म हुआ। उनके पिता का नाम गेंदलाल था। धोबी के अपने पुश्तैनी धंधे को परिश्रम से चलाते हुए बचपन से ही गोविन्दराम अपने अतिरिक्त समय में नाचा मंच पर स्वतंत्र कलाकार के रूप में अभिनय करते रहे हैं। विभिन्न समयों में वे रावेली पार्टी, रिगनी रावेली पार्टी, लाखोली पार्टी और अन्य अनेक लोकमण्डलियों से जुड़े रहे हैं। वे 1960 में पहली बार मदनलाल के साथ दिल्ली गए और हबीब तनवीर की प्रस्तुतियों में रुस्तम सोहराब और मिर्जा शोहरत बेग में अभिनय किया। 1974 में अन्ततः वे नया थिएटर से जुड़ गए और 1984 तक उसमें काम किया। उनको पहला काम चरणदास चोर में मिला, जिसमें उन्होंने अनेक भूमिकाएँ निभाईं। गंजेड़ी से शुरुआत करके पुजारी मुनीम गुरु और अन्त में उन्होंने प्रमुख भूमिका भी अदा की। उन्होंने कुछ स्मरणीय भूमिकाओं का सृजन किया है। जैसे-मिट्टी की गाड़ी में मैत्रेय, लाला शोहरत राय में प्रमुख भूमिका, बहादुर कलारिन में जर्मीदार, गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद में बूढ़ा दूल्हा, सोनसागर में चंदा का पति बवन। नाचा मंच पर उन्होंने अधिकांश वे भूमिकाएँ की हैं जो उनसे वरिष्ठ कलाकार ठाकुर राम और मदनलाल ने अपने सुनिश्चित हास्य कोष से खेली थीं। इसके अतिरिक्त उन्होंने चरण अमृत और नवीन प्रस्तुति 'इंग्लैण्ड' में भी अभिनय किया।

कुछ समय पहले जब हबीब तनवीर को दिल्ली, मुम्बई, कोलकाता और बेंगलोर में कुछ नाटक करने के अवसर एक साथ मिले थे, तब उन्होंने अपने उन सभी कलाकारों, विशेषकर बुजुर्ग कलाकारों को भी याद किया जो वर्तमान में उनके साथ काम नहीं कर रहे हैं। भोपाल में अरेरा कॉलोनी के एक बड़े मकान में वे सब कलाकार ठहरे थे। वहीं पर एक दोपहर गोविन्दराम निर्मलकर से बातचीत हुई। यह बातचीत बहुत गहरी और किंचित उत्तरार्ध पर पहुँचते-पहुँचते मार्मिक और भावुक अनुभूतियाँ देती है। प्रस्तुत है इस बातचीत के अंश-

आगरा बाजार नाटक कितने वर्षों बाद दोबारा करने का विचार बना है ?

ये दादा, ये हुआ है, मेरे ख्याल से, अब मैं सबसे पहली बात तो अनपढ़ हूँ। मुझे तारीख-वारीख का याद नहीं रहता।

करीब आठ-दस साल तो हो ही गया होगा।

आखिरी बार हमने इसे भारत भवन में देखा था जब हबीब जी को कालिदास सम्मान मिला था। इस बीच आपको लगता रहा होगा कि इस नाटक को दोबारा करने का अवसर आये ?

जी हाँ, जी हाँ।

लेकिन यह था बहुत कठिन!

हाँ, बहुत कठिन काम था। क्योंकि इसमें जो पात्र हैं, वो खासकर के उर्दू बोलने वाले हैं। इससे थोड़ी सी कठिनाई आ रही है अभी भी। मगर कुछ पुराने लोग आ रहे हैं जो पहले काम कर चुके हैं। तो उससे उम्मीद बंध रही है कि अच्छा होगा ये।

कब होगा ये नाटक ?

ये, हम दादा बम्बई जा रहे हैं। वहाँ पाँच-छः ड्रामा है, वहीं पर होगा। शेड्यूल तो हमको नहीं मालूम। ये नाटक है, गाँव ससुराल है, चरणदास चोर है, पोंगा पण्डित है, सड़क है, ये पाँच-छः ड्रामा हैं।

इसमें कौन-कौन से पुराने कलाकार आये हैं दोबारा ?

इसमें आये हैं दादा, रामचरन निर्मलकर और भुलवाराम यादव जो अभी काम करने के लायक नहीं हैं फिर भी उनको बुलाया गया है कि कम से कम थोड़ा सा कुछ कर लें। वो इतने बूढ़े हो गये हैं और थोड़ी सी याददाश्त भी उतनी नहीं रही है। आँख में मोतियाबिन्द हो गया है। उसके ऑपरेशन के लिए शायद कुछ किया जा रहा है।

आपका क्या किरदार है आगरा बाजार में ?

आगरा बाजार में, मैं दादा ककड़ी वाला हूँ। ककड़ी बेचना हूँ।

क्या नाम है उस किरदार का ?

ककड़ी वाला ही है। ये रोल करने में मुझे शुरू से ही बहुत मजा आया। पहले मेरे गुरु करते थे मदनलाल निषाद। उसके बाद

में कर रहा हूँ। मुझे अच्छा आनंद आता है ये रोल करने में।

ककड़ी वाला क्या गाता है ?

ककड़ी वाला गाता है, दादा यदि गाना सुनाऊँ तो हो सकता है थोड़ा सा—(गाकर सुनाने लगते हैं)

क्या खूब नम ओ नाजुक इस आगरे की ककड़ी
और इसमें खास काफिर अस कन्दरे की ककड़ी
क्या प्यारी-प्यारी मीठी और पतली-पतलियाँ हैं
गन्ने की पोरियाँ हैं, रेशम की टिकलियाँ हैं
फरहाद की निगाहें, शीरी की हँसलियाँ हैं
मजनू की सर्द आहें....हो ओ.....
लैला की उंगलियाँ हैं
क्या खूब नर्म ओ नाजुक इस आगरे की ककड़ी.....

ये गाना है। इसी के लिए वो घूमता रहता है कि मेरी ककड़ी पर कोई नज़्म लिख दे तो मैं गाकर ककड़ी बेचूँ तो बहुत बिकेगी। ये किरदार वैसा ही है कि पहले कोई नहीं खरीदता उनकी ककड़ी। और जब ये शेर लिखवा के लाता है नजीर साहब से, लाखों हो जाते हैं खरीदने वाले।

आपने हबीब साहब के नाटकों में जितने भी किरदार किए हैं उनके बारे में जानना चाहता हूँ ?

हबीब साहब के साथ दादा मैं, शायद ही कोई ऐसा नाटक होगा जिसमें मेन भूमिका न निभायी हो। जैसे लाला शोहरत राय में शोहरत राय का।

उस किरदार के बारे में थोड़ा सा बताएँगे ?

उसका दादा, ऐसा है, वो पहले मिर्जा शोहरत राय के नाम से चलता था। बाद में लाला शोहरत राय हुआ। वो एक बड़ा आदमी रहता है और उनको हर चीज सीखने की ख्वाहिश रहती है। जैसे डांस है, पढ़ना-लिखना है, कुछ है, ये है। वो इन सबसे बहुत अनभिज्ञ रहता है और चाहता है कि ये सब सीखूँ मैं। और उसकी पत्नी थोड़ी सी देहाती है। गाँव की। वो पसन्द नहीं करती इन सब चीजों को। और वो चाहता है कि मैं सब सीखूँ। डांस भी सीखूँ सब करूँ। ये किरदार भी मुझे बहुत अच्छा लगा। और मैंने

यह किया भी दिल से। वैसे हर रोल भी मैं करता हूँ तो दिल से ही करता हूँ। जो भी रोल मिल जाये, छोटा हो बड़ा हो। छोटा-बड़ा रोल नहीं होता, वो तो किरदार होता है जिसे जिया जाता है।

और चरणदास चोर का चरणदास ?

हाँ, चरणदास चोर तो दादा, ऐसी कहानी है इसमें कहीं हमे ऐसी दिक्कत नहीं आयी कि कोई न समझ पायें। और कहानी भी वैसे ही चलती है कि इस कहानी में डूबना पड़ जाता है। इन्सान झूठ बोलते-बोलते जब सच बोलना सीख जाता है तो फिर सच बोलने के लिए मर-मिट भी जाता है। ऐसी कहानी है ये। तो इसमें हमारा यही रिप्लेक्सन होता है कि अब तक हम झूठ बोलते आये हैं और जब सच बोलना सीख गये तो सच को क्यों छोड़े ? कुछ भी आ रहा है, चाहे मौत भी आये तो उसे गले लगा लीजिए खुशी से।

यह तो राजस्थानी लोककथा थी जिसे छत्तीसगढ़ी में खेला गया !

जी, राजस्थानी है। मगर यह कहानी ऐसी सिम्पल है कि हर देश हर गाँव जानते हैं इसको कि चरणदास चोर क्या है !

छत्तीसगढ़ में गुरु घासीदास के प्रति सबकी अपार श्रद्धा होती है। वे भी सत्य के अनुरागी थे। 'चरणदास चोर' नाटक का सन्देश गुरु घासीदास के सत्य के आग्रह का ही एक तरह से पालन करता है। आपका क्या कहना है ?

जी हाँ, सच्चाई ही है। सच्चाई का ही एक महत्त्व सामने आता है। ये सच के कारण ही यह सब कुछ हुआ। और घासीदास जी सच्चाई के बारे में ही लड़े थे। वो मेल खाता है इसमें। गांधी जी भी सच्चाई के बारे में ही लड़े थे। तो ये सब मेल खाता है दादा।

यह बड़ा अचरज ही लगता है कि 'चरणदास चोर' कथा राजस्थानी भाषा की कहानी है अन्यथा जितना इस नाटक का मंचन छत्तीसगढ़ में लोकप्रिय और चर्चित हुआ है उससे लगता है कि जैसे मूल रूप से इसे छत्तीसगढ़ी में ही लिखा गया होगा !

हाँ, लेकिन हमें सबसे ज्यादा प्रिय दर्शक मिले कलकत्ता

में। कलकत्ता में जब भी वो बुलाते हैं हमें, तो चरनदास चोर पहले ही बोलेंगे। उसके बाद आप चाहे जितने भी नये ड्रामा हैं, वो लाइए पर चरनदास जरूर लाइए। चरनदास देखे बगैर उनका मन नहीं भरता, ऐसी एक बात छुपी है इस कहानी के अन्दर।

एक वो नाटक देखा था, गाँव का नाम ससुराल मोर नाम दामाद। उसमें भी आपका दामाद का किरदार बड़ा दिलचस्प था ?

जी हाँ! उसका किरदार ऐसा है दादा कि एक बूढ़ा है, पैसे वाला है और पैसे के बल पर अपना कुछ करना चाहता है। वो नाती के नाम से, नाती जो होते हैं न, तो उसके नाम से कुछ वो ऐसा कर देता है कि वो खुद ही शादी कर लेता है। शादी करके ले जाता है, बाकी घर नहीं पहुँचता वो। बीच में ही उनको ले जाते हैं जो सच के जानने वाले हैं। अब उनका पैसा भी गया और सब कुछ गया। पैसे का ही मामला है वो कि पैसे की लालच में इन्सान क्या नहीं कर लेता। ये है उसका महत्त्व।

मिट्टी की गाड़ी में आपने कौन सा किरदार किया था ?

‘मिट्टी की गाड़ी’ में मैंने मैत्रेय का किरदार किया था। मैत्रेय मतलब चारुदत्त का दोस्त।

आपको खुद किस किरदार को करने में ज्यादा मजा आता है ?

अब मुझे मजा दादा एक ही है, कि मेरे ख्याल से मुझे जो रोल दे दें, मैं उस मजे से करता हूँ कि मुझे सब रोल में मजा आता है। क्योंकि एक चीज है कि एक तो मैं बिना पढ़ा-लिखा हूँ, एक सिर्फ अनुभव मेरा ज्ञान है जिसके सहारे चल रहा हूँ। मैं स्कूल नहीं गया हूँ पढ़ने के लिए, आप जैसे सब सत्संग मिलने की वजह से मुझे ज्ञान हुआ कि इन्सान चाहे जिस चीज में हो, ढल जाए तो वो बन जाता है।

पहले कभी या बचपन में आपको लगा था कि इस तरह आप कलाकार बन जायेंगे ?

जी हाँ! बचपन से इसी कलाकार के नाम पर पढ़ाई छोड़ा मैंने। बचपने से मैं अपने गाँव में, राजनांदगाँव के पास एक गाँव

है- मोहारा, वहाँ का रहने वाला हूँ, वहीं जनम लिया। वहीं एक बहुत बड़ा कलाकार रहता था, मदनलाल निषाद वो मेरा गुरु था नाचा का। उसके, एक पान दुकान थी, तो वहाँ हमेशा गाना-बजाना होता था, मैं छोटा था, मैं हमेशा जाता था वहाँ सुनने के लिए। सुन-सुन के उनके गाने-बजाने को मेरे दिमाग में ऐसा आया कि मैं भी नाचा सीखूँगा। हमारे बुजुर्ग लोग करते थे गाँव में नाचा। तो उनको देख के मुझे प्रेरणा हुई कि मैं भी नाचा सीखूँगा। फिर जो भूत सवार हुई तो बस सबसे कह दिया कि नाचा सीखूँगा और कुछ नहीं करूँगा।

घर में विरोध नहीं हुआ माता-पिता का ?

हुआ थोड़ा सा। शुरु-शुरु में हुआ। बोलते थे थोड़ा पढ़-लिख ले। पढ़ाने के लिए टाटा भेज दिए हमको, यहाँ नहीं पढ़ सकते तो टाटा जाओ। टाटा से भी कुछ हादसा करके आ गये। मैंने कह दिया कि मैं नहीं पढ़ूँगा सिर्फ नाचा सीखूँगा। मेरे सर पे वही भूत सवार हो गया। फिर नाचा ही सीखा मैंने।

मदनलाल जी का भी कोई गुरु था ?

हाँ, मंदराजी दाऊ थे, वो हमारे समाज के थे। वो बहुत बड़े कलाकार थे नाचा के। उन्हीं की वजह से, उन्हीं की प्रेरणा से हम सब कलाकार बने। उनका एक ग्रुप था, उन्हीं के साथ हो जाते थे। वे मुझे भी ले के गये। पहले मैं मंजीरा बजाना शुरु किया उसके बाद थोड़ा सा ढोलक बजाना शुरू किया। उसके बाद एक बार ऐसा हुआ कि जो कलाकार नहीं आये थे उनकी जगह खड़ा होना पड़ा। एक बार ऐसा हुआ कि ठाकुर राम जो कि महान कलाकार थे वो नहीं आये, धोखा दे दिया तो बोले कि उसका काम करो। फिर धीरे-धीरे ऐसा हुआ कि सभी काम करने लग गया। तो इसी तरह मैं आगे बढ़ा।

आपके परिवार में कोई इस काम में नहीं है ?

मेरे परिवार में दादा कोई नहीं है इस काम में। मेरे परिवार में दो लड़के हैं। एक लड़का ड्राइवर है। ट्रक चलाता है। एक लड़का मिस्त्री है। शुरु-शुरु में ऐसा लगा कि वह इस काम में आयेगा फिर वो हट गया। मिस्त्री का काम करने लगा।

हबीब जी कब मिले थे आपको पहली बार ?

हबीब साहब से करीब 59-60 में मिले थे। वे जब विदेश से आये थे तो राजनांदगाँव में इनका एक लेक्चर था, फंक्सन था कुछ टाउन हॉल में। तो वहाँ हम सब लोग गये थे। पार्टी बनी थी हम लोगों की। उसके बाद इनसे मुलाकात हुई। बातचीत हुआ। उन्होंने रायपुर में नाचा का प्रोग्राम देखा नाचा देखने के बाद बोले कि आप हमारे साथ आ सकते हैं ? तो हम लोगों ने हाँ कह दिया। हाँ कह दिया, बाकी सबसे पहले बुलावा आया मेरे लिए और मदनलाल के लिए। उस समय यहाँ मिर्जा शोहरत और रुस्तम सोहराब की रिहर्सल चल रही थी दिल्ली के कनाट प्लेस में। उसी समय उन्होंने कहा कि आप आ सकते हैं। आने के बाद ये हुआ कि....पहले तो हम घबराए कि इतनी बड़ी दिल्ली, नाम सुनते थे पहले दिल्ली का। दिल्ली बहुत बड़ी बात है हम लोगों के लिए। जब खबर आया तो हम लोग घबराये कि दिल्ली कैसे जायेंगे ? तो एक दोस्त था उनका नांदगाँव में शरद कोठारी करके, वो हमको बुला के समझाया कि देखिए आप लोगों के लिए खबर आयी तो जायें आप। हम पैसे पे बैठे हैं फिर भी दिल्ली नहीं पहुँच पा रहे हैं। और जब आप लोगों के पास खबर आयी है तो आप जाइए। मैं बैठा हूँ, मेरा दोस्त है वो। कोई गड़बड़ होगी तो मैं सम्हालूँगा, मैं जानता हूँ उनको। तो हम लोगों की हिम्मत हुई और आये दिल्ली। जब हम दोनों आये दिल्ली तो स्टेशन पे हबीब साहब गाड़ी लेके आये थे ले जाने के लिए। अब आये तो हम दोनों बैठे कार में। बैठने के बाद वो पूछ रहे हैं हमारे गुरु जी से। अब मैं तो उनके सामने बच्चा था। तो गुरु जी से पूछे कि भाई आप लोग सुबह क्या नाश्ता करते हैं, दोपहर में क्या खाते हैं, शाम को क्या खाते हैं। तो हमारे गुरु जी इतने सीधे कि उन्होंने कहा जो आप देंगे बस। अब मैं मन ही मन सोचता था कि एकाध का तो नाम ले लूँ पर गुरु जी कह ही दिए थे तो उसी पर निर्भर थे।

पहुँच गये रूम में। पहले साथ में खाते थे उनके साथ हबीब साहब के साथ। खाना-वाना वहीं खाते थे। वहीं रहते थे। वहीं से रिहर्सल में जाते थे। कुछ दिन बीता ऐसा। बीच में वहाँ अड़चन आयी क्योंकि हम लोग ठेठ छत्तीसगढ़ी और हिन्दी नहीं जानते थे उस समय बोलना। वहाँ के कलाकारों को देख के थोड़ा सा झिझक लगी कि इन लोगों के साथ कैसे बैठेंगे कि सब कार से

आ रहे हैं, कोई कैसे आ रहा है। इतने बड़े-बड़े लोग थे। बाद में पता लगा कि कलाकारी में कमजोर हैं थोड़ा सा। याद करने में, कुछ करने में। हम लोगों को जो रोल देते थे, फट से याद कर लेते थे, हम लोग क्योंकि रटते थे उसको रात भर-दिन भर। तो वो हमसे पूछते थे कि यार आप लोग कैसे याद कर लेते हैं ? हम कहें, रात भर सोते नहीं हैं। रात भर रटते हैं हम। तो फिर दूसरे रोज आये, बोले, यार हम रात भर नहीं सोए, मगर याद नहीं हुआ। तो उनके पास हजार काम रहता था, बड़े लोग हैं। कहीं यहाँ जा रहे हैं, वहाँ जा रहे हैं, कुछ कर रहे हैं तो कहाँ से याद होगा ? तब हमें थोड़ा सी हिम्मत बंधी कि हमारे से कमजोर हैं थोड़ा सा। फिर बाद में दोस्ती हो गयी उनसे। सब हो गया।

तमाम नाटकों के साथ दुनिया के कई देशों में जाना हुआ आपका। कहाँ-कहाँ हो आये आप ?

मैं गया दादा, लन्दन, पेरिस, युगोस्लाविया और एथेंस।

कौन-कौन से नाटक हुए वहाँ ?

वहाँ हुआ था, आगरा बाजार। चरनदास चोर को तो फर्स्ट अवार्ड मिला। इन्दिरा गांधी के समय जो फेस्टिवल था एडिनबरा में वहाँ फर्स्ट क्लास अवार्ड मिला। बहादुर कलारिन ले के गये और मिट्टी की गाड़ी भी ले के गये। देख रहे हैं नैन भी ले के गये। सभी सक्सेस हुआ, ये बात है ऐसा कोई भी ड्रामा नहीं है जो कमजोर हो गये वहाँ। और ये बड़ी खुशी की बात है कि हम जिस लहजे से बात करते हैं अलग लेंग्वज होती है वहाँ। मगर लोग खुश रहते हैं। अब यही है कि ब्रोशर जो छपाते हैं वो इंग्लिश में छपता है वहाँ। इससे समझ में आ जाता है सबको। उसको देख-देख के वो लोग समझ जाते थे। कुछ एक्टिंग से समझ जाते थे कि क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है। अब चरनदास चोर को ही लें, बिल्कुल सिम्पुल है। उसको देख के बच्चा भी समझ जाता है कि क्या हो रहा है, क्या कर रहे हैं।

कोई घटना ऐसी याद हो विदेश की जो कभी भूल न पाये हों ?

घटना, दादा विदेश की, ऐसी तो कोई हम लोगों के साथ

नहीं हुई कि कोई अड़चन वाली घटना हो, या कुछ हो।

कोई अच्छी या मजेदार घटना ?

अच्छी घटना सिर्फ ये है कि पहली बार जब हम गये बिदेस। तो ये रामचरन जो है, तो रामचरन अपने बाल-बच्चों को पूरा बाँट-बुटा के चला गया कि हवाई जहाज में पहली बार बैठना था उनको। तो उसने कहा कि भैया अब मैं जा रहा हूँ। मरने के पहले गंगाजल तुलसीजल पिलाते हैं न, उसको पी लिया। बोले कि अब मैं शायद नहीं आ सकूँगा। वो कुछ कमजोर जी का था थोड़ा सा। और दूसरे दिमाग का है वो।

हवाई जहाज में बैठने में डर भी लगा होगा पहली बार ?

जी हाँ, जी हाँ। तो वो कहा कि मैं सबको बाँटकर आ रहा हूँ। बाल-बच्चों को कह दिया कि तुम इतना ले लेना, तुम वो ले लेना, तुम वो कर लेना। मैंने कहा कि ऐसा क्यों यार सोचते हो। ऐसा मत सोचो कि वहाँ से वापस नहीं आयेंगे। बाकी विदेश में ऐसा कुछ भी नहीं हुआ कि कुछ गड़बड़ हो। अच्छा ही अच्छा निपटा वहाँ पर।

एक बात ये ध्यान में आती है, कितने सारे नाटक आपने किए, कितने ही किरदार निभाए, चाहे वो संस्कृत की मूल स्क्रिप्ट का नाटक हो या किसी विदेशी नाटककार की कृति, वो आपकी भाषा में भले आपको करने के लिए मिली हो मगर इतनी भिन्न भाषाओं के क्लैसिक को, कैरेक्टर्स को कैसे मंच पर कर पाये आप ?

एक ये है दादा मेरी समझ में, मुझे तो ये लगता है कि जितना भी मैं ड्रामा करता हूँ, जितने भी किरदार निभाता हूँ तो मेरी समझ से तो यही होता है कि इन्सान यदि सब्जी भी बेच रहा हो तो वो सब्जी बेचने वाला बन जाये तो फिर वो गलत नहीं होता। इसी तरह से हर चीज है। ये क्या है, मैं ये सोचता हूँ, मेरी समझ में ये अनपढ़ सी चीज है, दिमाग से सोचता है कि हम ये जो कुछ भी कर रहे हैं, नाटक ही तो है। खाना बनाते हैं वो भी नाटक है, पानी भरते हैं वो भी नाटक है। जहाँ भी जाते हैं वो भी नाटक है। यानी ये जीवन ही नाटक है। जीवन भी नाटक लगता है। क्योंकि बिना

नाटक से कुछ होता ही नहीं। अगर आप नाटक नहीं करेंगे तो कुछ नहीं कर सकते, ऐसा है। खाना खायेंगे आप तो पहले पानी रखिए, फिर बिछाइए, फिर कुछ कीजिए आप, उसके बाद पूरा सामान रखिए, फिर खाना खाएँगे आप। तो ये सब चीज ही है, अब साइकिल पर बैठ रहे हैं, बैठ गये पर जब तक पैडल नहीं मारेंगे, चलेगा ही नहीं। तो वो भी एक नाटक ही है। बिना चलाए चल जाये तब ठीक है लेकिन बिना मारे चलता नहीं है वो। तो मारना तो पड़ेगा ही। वो भी एक्टिंग है, और क्या है ?

तो इसी तरह मुझको भी लगता है। मेरी जहाँ तक समझ पहुँची है, तो मुझे अनुभव लगता है कि कुछ भी होता है, बच्चे के साथ खेलिए, तो बच्चे के साथ नहीं मिलिएगा तो उसका मन नहीं भरेगा। उसके साथ नाटक करना पड़ेगा। वो रो रहा है तो उसको समझाना पड़ेगा। कैसे समझाएंगे ? चुप रहो, ऐसा थोड़ी कह सकते ? उनको उसकी तरह समझना पड़ेगा। नाटक करना पड़ेगा उनके साथ। तो यहाँ तक मुझे लगता है कि हर चीज नाटक है। जीवन ही नाटक है।

उन तमाम नाटकों जिनमें आपने काम किया है। आपके साथ दूसरे साथी कलाकारों ने भी उसमें काम किया है। आप सभी की एक और प्रतिभा जिसमें बड़ा सुखद विस्मय या कह लें ताज्जुब होता है कि गाने की अद्भुत और प्रभावित करने वाली कलाकारी किस तरह का जादू है, कैसी एक अलहदा खूबी है जो सबमें समान विकसित हुई है ?

गाने का दादा ऐसा है कि गाने का ताल यदि समझ में आ जाये, तो वो आदमी नहीं चूकेगा गाने के लिए। ताल का महत्त्व है गाने के लिए। और मैंने तो यही अनुभव किया है, बाकी ऐसा कोई गुरु नहीं बनाया कभी गाने के लिए। ऐसे ही मन से किया और जो गुरु ने बताया कि ऐसा गाओ, वैसा ही गा देता था। जैसे फिल्म देख के कभी-कभी उसी गाने को गाये। शुरु-शुरु में सीखा, तो पहले हम पिक्कर देखते थे बहुत और पिक्कर देख के ही ज्यादा सीखे हैं हम गाने-बजाने के कारोबार। तो पहले पिक्कर देखते थे उसके गाने को देखते थे कि क्या बज रहा है, उसको ध्यान में रखकर पहले गा लेते थे उसके बाद ही खाना खाते थे। तो इसी तरह वो ऐसा बैठा दिमाग में कि ताल से आप बाहर मत जाइए। तो ताल मेरे समझ में आ गया। इसी से सब कुछ है। अब

बोल मात्रा की चीज तो हमें आती नहीं है। हम पढ़े-लिखे नहीं हैं। बाकी एक ताल समझ में आयी कि ताल क्या होता है। ताल जो है वो तलवार की तरह है। तलवार से जरा भी चूके तो कट जाआगे। इसी तरह ताल है। इससे जरा भी एक मात्रा इधर-उधर हुआ तो वो फिर बेकार है। ये जेहन में बैठा हुआ है।

कोई ऐसा गीत जो बहुत पसन्द है वो सुनाना चाहेंगे? वैसे तो बहुत से गीत इतने मजेदार और अच्छे हैं कि उनको सुनना अच्छा लगता है, फिर भी आपको कोई लगता है तो.....

वो ककड़ी वाला सुनाया था न पहले। नहीं कोई दूसरा यदि याद आता हो जो बहुत पसन्द हो?

वैसे बहुत से हैं लेकिन मेरी अब थोड़ी सी कमजोरी ये हो गयी है कि अब उमर के साथ कहिए, मुझे लगता है कि दिमाग अब कमजोर होने लगा है। पहले गा लेता था। फ्री हो के गाता था लेकिन अब मुझे महसूस होने लगा है कि जहाँ तक साँस को पहुँचाना चाहता हूँ वहाँ तक पहुँच नहीं पा रही है। तो मुझे कमजोरी लग रही है। अपने शरीर में। कुछ कमजोरी आ गयी है जो उमर के लिहाज से कहिए, कुछ भी कहिए।

‘देख रहे हैं नैन’ में कोई गाना?

मेरा नहीं है उसमें। मैं वही गाना गाया हूँ जो मेरा खुद का है।

कौन से नाटक में था?

उसमें है, ‘.....सपना’ (कामदेव का अपना वसंत ऋतु का सपना) में एक गाना। उसमें है एक ‘पिया ला ले गय बिलैया’। उसको थोड़ा सा सुनाता हूँ-

ऐ दे पिया ला ले गय बिलैया
ऐ दे पिया ला ले गय बिलैया
बिलैया ओ दाई मोर
पिया ला ले गय बिलैया
या दे दाई मोर
पिया ला ले गय बिलैया
पीपल पेड़ पपीहा हर

बोले पीहू पीहू
अमली पेड़ पे कोयल कूके
ओ बोलत है कूकू
उई समय सब कुकरी पीला
नाची थैया थैया
बिलैया ओ दाई मोर
पिया ला ले गय बिलैया

ये गाना है। है तो ये छत्तीसगढ़ी में मगर इसी में रानी जो है वो मोहित हो जाती है।

अभी छत्तीसगढ़ में और नाचा ग्रुप का क्या हाल है?

नाचा ग्रुप का ऐसा है, दादा, एक तो पहली चीज यह है कि हम लोग जब से यहाँ हैं, छत्तीसगढ़ का रवैया ही नहीं मालूम। बाकी कभी-कभी ऐसा देखते हैं, कभी छुट्टी में जाते हैं, कहीं जाते हैं, तो नाचा का भी बुरा हाल हो गया है। सब लोग कुछ बदल चुके हैं जो ठेठ नाचा था, वो ठेठ नाचा अभी नहीं है। उसमें भी कुछ बनावटीपन आ गया है। कुछ शो देखने पर लगा कि बनावटीपन आ गया है। जैसा पहले हम लोग जो देखते थे, करते थे, हमारे बाप-दादा करते थे, वो ओरीजनल था। अब ओरीजनल नाचा मुश्किल हो रहा है देखने में। तो यहाँ पे फर्क हो रहा है। अबकी जो नाचा पार्टी है तो वो बहुत कुछ तो आर्केस्ट्रा जमा लिए हैं पहले का नाचा होता था खाली तबला, हारमोनियम और मंजीरे के साथ और अब क्या हो रहा है कि अब जितने भी आर्केस्ट्रा का समान है, वो सब जुटा रहे हैं नाचा वाले। और जैसे हो वैसे ही कर रहे हैं। उसमें थोड़ी बनावटीपन आ रहा है। वेशभूषा भी है वैसी। पहले साड़ी होती थी हाथ की बुनी हुई। उसी को पहनते थे। अब ये किस्म-किस्म की साड़ी आ गयी है, वो पहन रहे हैं। उसमें भी फर्क हो रहा है। जेवर है, उसमें भी फर्क हो रहा है। ये बनावटी सब निकल गये हैं। पहले की जो कटनी, बनुरिया, हरैया, करधन ये सब होता था, रुपया-उपया, ये सिंगार जो होता था वो भी नहीं दिखता। तो इससे थोड़ा सा लग रहा है कि छुप जा रहा है।

तो ये परम्परा क्या खत्म हो जायेगी?

अब वो, लग रहा है दादा ऐसई। इसलिए कि अब ये जमाना को देखते हुए, आजकल के जमाने को देखते हुए लग रहा

है कि शायद अब वो ख्याल भी नहीं करेंगे। अच्छा उसका ख्याल कराने वाले भी नहीं हैं वहाँ। बहुत कम हुए हैं अब। एकाध हैं उनकी कोई गिनती नहीं है। अगर हम जाके कहें कि ऐसा करो, वैसा करो तो शायद उनको पसन्द न आये। और आज के दर्शक भी ऐसे हो गये हैं, खाली टीवी को देख-देख के, सिनेमा को देख के, ये जो वेशभूषा है, डांस-वांस है, वो सब को देख के, अगर हम ओरीजनल करना चाहें तो शायद उनको पसन्द न आये। अरे, क्या बक रहे हैं, बोल सकते हैं। आजकल के बच्चे ऐसे भी कह सकते हैं। तो ये डर लगता है कि कहीं लुप्त न हो जाये।

नाचा में तो सामाजिक बुराइयों को भी दिलचस्प ढंग से सामने लाने के प्रहसन होते हैं। उस तरह से तो इसका एक बड़ा योगदान भी है। यह संस्कृति लुप्त हो गयी या अपने स्वरूप को खो गयी तो बड़ा नुकसान भी होगा, नहीं ?

जी हाँ। ये समझ में नहीं आ रहा है कि इसको किस तरीके से सम्हाला जाये और कैसे सम्हाला जाये ? पहले नाचा में यही होता था कि जैसे 'भाई बँटवारा' में भाई बँटवारा करते हैं, उनका हम नकल बनाकर करते थे कि ऐसा न हो। भाई की बुराई क्या होती है और बहुओं की क्या आदत थी, यही सब चीज मनगढ़ंत होती थी। क्योंकि हम लोग बिना पढ़े लिखे थे और यही सोच के करते थे कि ये सुधर जाये। कहीं बँटवारा हो रहा है तो न हो। इस तरह के 'मौसी माँ' है। मौसी माँ ऐसी है अपनी दूसरी औलाद को दुख देना, इसके बारे में हम लोग करते थे। मैंने एक बार बनाया था, मौसी माँ के लिए, कामेडी जिसमें खुद मेरे घर का किस्सा था। मेरा बाप ही मौसी माँ ले आया था। तो उसको मैं करके, उसकी कहानी बना के, मुझे लगा कि जिस दिन मैं शो किया अपने गाँव में, उस दिन मेरी मौसी माँ मेरे को खुद बोली, आना बेटा मेरे पास, नहा लेना, खाना तैयार है, खा लेना, ये करना-वो करना, पहली बार हुआ। तो मैं सोचा कि जब मेरे यहाँ मन बदल सकता है तो और के यहाँ भी बदल सकता है। तो पहले ये होता था, ऐसी सब चीजें।

एक बार हम एक नाचा में गये थे किसी गाँव में। तो वहाँ रात यही किए, मौसी माँ। उसके बाद मैं सुबह मेकअप-ओकप निकाल के पान खाने गया, किराना दुकान में, तो वहाँ एक माँ थी,

माँ और औलाद दोनों थे। माँ रोने लगी मुझको देख के। मैंने कहा, पान बनाओ। वो पान बनाते-बनाते रोने लगी। मैंने पूछा, क्यों रो रही हो ? तो वो बोली, बेटा मैंने रात में तुम्हारा नाचा देखा, लेकिन मेरे साथ उल्टा है। मैं मौसी माँ हूँ, लेकिन मैं खुद अपने से पहले वाली के बेटे को प्यार से पाल रही हूँ। तो मुझे लगा कि चलो एक कहानी ये भी मिली। उल्टा भी मिला और सीधा भी मिला। तो माँ ऐसी होती हैं। छत्तीसगढ़ी नाचा का यही महत्त्व है कि मनगढ़ंत तो करते थे बाकी सिर्फ यही सब चीज को सोचकर। जैसे गाँव के कोतवाल को क्या होना चाहिए, गाँव के सरपंच को क्या होना चाहिए, यही सब विषय में बात करके, किसी से सुन लिए कि वहाँ का सरपंच खराब है, तो इसी से सोच लेते थे, तुम सरपंच बन जाओ, मैं पंच बन जाता हूँ, एक कामेडी बन गयी आधा घंटा, एक घंटा की। इसी तरह हम लोग करते थे।

हबीब तनवीर एक कलाकार, निर्देशक के रूप में आपकी निगाह में, कैसे हैं ?

अब उनके बारे में तो मैं यह कहूँगा कि वो महान आदमी हैं। कलाकारी में, निर्देशन में, सब चीज में बहुत नेक हैं। बहुत समझ है उनकी। अब इससे ज्यादा और क्या कह सकता हूँ। उनका जो नजरिया है, उनका जो काम कराने का ढंग है, वो इतना सहज है और इतना कठिन है, कि मैं तो समझता हूँ कि हम लोग अनपढ़ होते हुए ही उनको समझ पाये हैं कि ये हैं ऐसे। बाकी कई लोग आते हैं, तो कई लोग समझ नहीं पाते हैं, ऐसई फेल हो के चले जाते हैं उनके सामने से। बाकी ख्याल जो है उनका, बहुत ऊँचा है। सबको देख के चल रहे हैं ये बात भी है। किसको कैसे देखना चाहिए, किसको क्या करना चाहिए, ये ख्याल रहता है उनको।

इतना लम्बा समय आपने थिएटर को दिया। देश-दुनिया के मंचों पर अपार दर्शक समाज को अपनी प्रतिभा और क्षमता से हतप्रभ किया। अब उम्र के इस पड़ाव पर आकर आपको क्या लगता है ?

'रंग प्रसंग' में मेरे एक इन्टरव्यू में हेडिंग छपा है कि अब गोविन्द राम जी घर वाले हैं। मैंने हबीब साहब से कह भी दिया है कि अब मैं आराम करना चाहता हूँ और अब मैं घर वापस जाना

चाह रहा हूँ। मेरा ख्याल अब थोड़ा सा ये दादा, कि मैं बचपने से बाहर घूम रहा हूँ। हालाँकि मेरे पूरे बाल-बच्चे नाती-नत सब कुछ हैं, पोते हैं, सबकी ब्याह शादी सब कुछ कर चुका हूँ मगर मैं घर वालों को कोई खुशी नहीं दे सका ये ख्याल थोड़ा सा आ रहा है मन में। बचपने से जो घूम रहा हूँ बाहर तो बाहर ही हूँ। कभी-कभी जाता हूँ छुट्टी में तो लोग समझते हैं कि मेहमान आया है। थोड़े दिन रहेंगे फिर चले जायेंगे, ऐसा समझते हैं बच्चे लोग। तो अब मैं चाहता हूँ कि थोड़ा-बहुत अपने जीवन का जो सुख है वो बच्चे लोगों के साथ घर में बिताऊँ। अब शक्ति भी थोड़ा सा कम हो रही है।

सबसे बड़ी बात ये है कि बहुत से कलाकार भी नहीं रहे। कलाकार भी नहीं हैं। कुछ ऊपर चले गये, कुछ बूढ़े हो गये। जो हमारी बराबरी के थे वो सब हैं नहीं तो उससे भी थोड़ा सा मन कच्चा होता है कि जब तक कि बराबर के कलाकार न हों तो क्या काम करोगे? ऐसा भी महसूस होता है। इसीलिए हबीब साहब से कहा कि ये फेस्टिवल करके हमें छुट्टी दे दीजिए।

फिर क्या बोले वो?

कहने लगे, ये हो जाने दो फिर देखेंगे। अब हमारा उनका

चालीस साल का सम्बन्ध है। सच बात तो ये है कि उनके बगैर न तो हमें अच्छा लगेगा और न ही हमारे बगैर उनको। है दोनों तरफ से कुछ। मगर मैंने अपनी शक्ति को देखकर के कहा उनसे कि मेरी शक्ति.....क्योंकि गाना गाता हूँ तो पूरा पहुँच नहीं पाता। कुछ गड़बड़ी होती है, पहले उछलकूद करता था, सब कुछ करता था, उसमें मुझे मजा आता था। अब ये है कि छोटा सा रोल मिले तो आनंद आता है, बड़ा रोल करने की इच्छा नहीं होती अब। मगर अब जो कर चुके हैं उनको तो कराएँगे ही। ऐसा है। और कोई करने वाला है नहीं।

गोविन्दराम निर्मलकर से बातचीत यहीं पूरी होती है। अब जीवन का, सृजन का और दिल का सब कुछ बड़े अपनेपन से, भोलेपन से उन्होंने बखान कर दिया था इस बातचीत में। हाल ही में उनके स्वास्थ्य को लेकर चिन्ताजनक सूचनाएँ मिली हैं। अब वे घर पर ही हैं। गोविन्दराम निर्मलकर एक विलक्षण कलाकार हैं, लोकमंच के सम्मोहक जादूगर से। स्वास्थ्यगत कारणों से ही सही मगर मंच से उनकी अनुपस्थिति बेहद असहज और भावुकता में कहा जाये तो बर्दाश्त के बाहर लगती है मगर उनका भी अपना जीवन है। उनका स्वास्थ्य बेहतर रहे, वे दीर्घायु हों, यह कामना अपनी पहले वाली कामना से ज्यादा मानवीय और स्वार्थ के परे लगती है।

लोक धरोहर का अनुपम संरक्षक

डॉ. हरिसिंह पाल

भारतीय जनमानस में गाथाएँ नैतिक शिक्षा एवं मनोरंजन के लिए प्राचीनकाल से ही प्रचलन में रही हैं। लोकमानस की हर धड़कन अपनी निसर्ग और प्रकृत रूप में कथा तत्व का प्रश्रय लेकर गेयात्मक गाथा बन जाती है। लोकगाथाओं में विपुल जनरंजिनी और मनःप्रसादिन ऊर्जा होती है। ये सरल, सहज, निर्मल तथा श्रद्धापूर्वक मन से उद्गीरित होने के कारण ग्राह्य बन जाती है। कथन गेयता के कारण ये गाथाएँ हैं। वस्तुतः ये गाथाएँ लोक जीवन की चलती फिरती संस्कार शालाएँ हैं। जनमानस को सहज, समरस, प्रेमशील और संस्कारवान बनाना इनका स्वरूप लक्षण है। इनमें कालजयी नैतिक जीवन मूल्य विद्यमान हैं। इन गाथाओं में जीवन रस है और विषम परिस्थितियों, दुष्टात्माओं के अत्याचारों से जूझने की अदम्य इच्छा शक्ति का प्रकाश, इनके चरित नायकों में हैं। इनमें लोक आस्था, लोक विश्वास, लोक आदर्श तथा लोक संस्कृति की मूलभूत निष्ठा, कर्मयोग के भाव अनुगुंजित होते हैं। आदिवासी समाज में भी लोक गाथा गायन की पुरातन परम्परा रही है। मध्यप्रदेश के मालवांचल की कोरकू जनजाति में अन्य गाथाओं के साथ 'ढोलाकुँवर' गाथा को गाने और सुनने की बड़ी पुरानी परम्परा है। लोक साहित्य के विद्वान डॉ. धर्मेन्द्र पारे ने इस कोरकू गाथा को बड़े परिश्रम और निष्ठा से संकलित किया है। लोक साहित्य के संरक्षण संवर्द्धन में लगी देश की प्रमुख मध्यप्रदेशीय आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल ने इस गाथा को पूर्ण मनोयोग के साथ रुचि लेकर कलात्मक ढंग से प्रकाशित किया है।

प्राक्कथन के अंतर्गत संकलनकर्ता डॉ. धर्मेन्द्र पारे ने इस कोरकू गाथा की पृष्ठभूमि को प्रस्तुत किया है। कहने को तो यह लोकगाथा राजस्थान की लोक प्रचलित गाथा 'ढोलामारू का दूहा' तथा मध्य पश्चिमी उत्तर की महागाथा 'राजा नल का ढोला' से साम्य रखती है किन्तु मूलरूप में यह कोरकू जनजाति की अपनी ही गाथा है। भौसिंग राजा और भौतारी रानी का बेसहारा पुत्र नेली राजकुमार को चम्पा दीवान ने पाला। बड़े होने पर नेली को, मसदई राजा की पुत्री दयमन्ती प्रेम करने लगती है। बाद में दोनों का विवाह कर दिया जाता है। उनके ढोला कुँवर पुत्र का जन्म हुआ। इस परिवार पर अनेक प्रकार की औंखा (विपत्ति) पड़ती है। ढोला का विवाह रंग

मालन से हो जाता है बाद में रानी मारोनी से भी विवाह कर लेता है। यद्यपि इस गाथा के कुछ पात्र जैसे दयमन्ती, हीरामन तोता, गढ़ पिंगला ढोलाकुँवर, करिया घोड़ा, लारग बंजारा, काना डगमल आदि राजस्थान और उत्तरप्रदेश की लोकगाथा में भी मिलते हैं लेकिन इस गाथा की अंतर्कथा कोरकू जनजातीय ही है। भौसिंग राजा और भोतारी रानी, चम्पा दीवान, मसदई राजा, राजपूत रेंगड़ा, सारोनी रानी, दुबालिया ब्राह्मण, शुकनी शनीचर, पूरखेड़ा, बावनखेड़ा, कुम्पानी रानी, छत्तीस देवता, धम्मा मालन, अंगोछा नींबू (जो कोरकू देवताओं के काम आता है) धन्नावड़ किसान आखेट नदी, डोकरा-डोकरा आदि पात्र और स्थान कोरकू समाज के अपने हैं। इस गाथा के पात्र कोरकू समाज के रीति-रिवाजों को ही अपनाते हैं। भौसिंग राजा बेलकार काका से मदद लेने जाता है वह नौ मंजिले मकान में सुआपंखी घोड़ों की घुड़साल भी बनवाना चाहता है। नैलीराजा की चम्पा दीवान, उसके माँ-बाप के मरने के बाद कुतिया और बिल्ली के दूध से पालन करता है। राजा बत्तीस रंग का हार पहनकर सोलह सिंगार करता है। मसदई दूती डोकरियों की मदद लेता है। नैली अपने विवाह का निमंत्रण पत्थर झाड़, पेड़ सहित सभी कुटुम्ब परिवार को भेजता है, बारातियों के लिए चार बोरी चावलों का भोजन बनवाया जाता है। दुबालिया को भिक्षा में सवा पाई आटा मिलता है। रानी दयमन्ती चिरोठिया की भाजी तोड़कर लाती है। ढोलाकुँवर अपना तंगिया लेकर घर से बाहर निकलता है। कौआ पत्र को गले में बाँधकर ले जाता है। राजा ढीमर से मछली की भीख माँगता है, धान कूटने वाली मोट अपने आप चलने लगी। कौवा धन्नावड़ किसान के ज्वार के खेत में रूकता है। ढोला और टोटा आखेट नदी पर मिलते हैं, ढोला का ससुर गोलासिंग था। रानी मारोनी से सेवामालन ने चोमल और बासन लेकर कुएँ पर चलने को कहा। गाँव के लोग आम के कटे पेड़ से केरी बीनते हैं। डोकरा-डोकरा आमरस बनाते हैं। तुअर को सुखाते हैं आदि अनेक प्रसंग, कोरकू लोक जीवन के ही हैं।

श्रुति परम्परा वाली गाथा को लेखनीबद्ध करना बड़ा ही परिश्रम और धैर्य संयम वाला कार्य होता है। लोक गायक तो अपनी धुन गाता चला जाता है जितनी बार पाठ प्रस्तुत किया है उतनी बार उसमें विचलन और वैविध्य मिलता है, गायक पढ़कर तो गाता नहीं वह कंठ पर बिराजी गाथा का ही पाठ करता है। डॉ. धर्मेन्द्र पारे जी के परिश्रम की दाद देनी चाहिए। गाँव-गाँव घूमकर,

गाथा गायक को मनाकर एक ही बैठक में गाथा को सुनना, फिर लिखना बड़े ही जीवट का कार्य है किन्तु डॉ. पारे ने बड़ी कुशलता से सफलतापूर्वक निभाया है। दुर्घटनाग्रस्त होने के बावजूद उन्होंने कार्य को बखूबी अंजाम दिया है यह उनका लोक साहित्य के प्रति प्रेम, निष्ठा और समर्पण का ही परिचायक है, इस कृति में ढोलाकुँवर गाथा को कोरकी भाषा में मूल रूप में प्रस्तुत किया गया है। कोरकी भाषा में इतनी रवानगी मिलती है कि अन्य भाषा भाषी पाठक भी गुणगुनाने को बाध्य हो उठता है। जैसे-जैसे वह पढ़ता जाता है वैसे-वैसे इस भाषा के रहस्य पर्त-दर-पर्त खुलने लगते हैं और ढोलाकुँवर गाथा प्राणवन्त हो उठती है। सहज ही अंदाज लगाया जा सकता है कि लोक गायक जब हाथ में सारंगीनुमा लोकवाद्य लेकर किसी चौपाल या सघन पेड़ के नीचे बैठकर तन्मयता से गाथा ऊँचे स्वर गाता होगा तो कैसी रस वर्षा हो रही होगी। सभी दर्शक श्रोता इस चुम्बकीय आकर्षण से बंधे मूर्तिवत ठगे से बैठे रह जाते होंगे। मूल कोरकी पाठ के बाद इस गाथा का हिन्दी में भावानुवाद प्रस्तुत किया गया है। जो इस गाथा का सार संक्षेप ही है किन्तु कथा को स्पष्ट करने में समर्थ है। अंतिम अध्याय में इस लोकगाथा के स्थानीय आंचलिक शब्दों का हिन्दी अर्थ किया गया है जिससे पाठक इस लोक भाषा के शब्दावली से परिचित हो सके। मुख पृष्ठ पर कोरकू जनजाति के लोकदेवता की प्रस्तर मूर्ति चित्रित की गई है। अंतिम आवरण पर कोरकू लोकगायक का तन्मयता से लोक गाथा गाते हुए चित्र दिया गया है इससे इस कृति की सुंदरता में चार चाँद लग गए हैं। बस खटकने वाली बात यही है कि इसमें लेखक का परिचय या चित्र देने में बेहद कंजूसी की गई है। आखिर लेखक को कुछ तो महत्त्व मिलना ही चाहिए, मात्र उसका नाम देना ही पर्याप्त नहीं है।

आदिवासी लोक कला अकादमी के निदेशक डॉ. कपिल तिवारी और उनकी टीम साधुवाद की पात्र है जिसने कलात्मक ढंग से कुशलतापूर्वक इस महत्त्वपूर्ण कृति को प्रस्तुत कर प्रकाशित किया है।

समीक्षित कृति : ढोलाकुँवर (कोरकू जनजातीय गाथा)

संकलन-डॉ. धर्मेन्द्र पारे

प्रकाशक : आदिवासी लोक कला अकादमी, भोपाल

पृ. 150, मूल्य : 50 वर्ष-2005

इस अंक के लेखक

- आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी, 2, स्टेट बैंक कॉलोनी, देवास रोड, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
- डॉ. प्रभा श्रीनिवासुलू, 94 सेठी नगर, उज्जैन (मध्यप्रदेश)
- निसार अहमद, गुलमोहर, दयानंद मार्ग, धार (मध्यप्रदेश)
- डॉ. अर्जुनदास केसरी, लोकावार्ता शोध संस्थान, राबर्ट्सगंज, सोनभद्र (उत्तरप्रदेश)
- ओंकार सिंह चन्देल, प्रीतम हार्डवेयर, अमरकंटक रोड, पुरानी डिण्डौरी (मध्यप्रदेश)
- रमेशचन्द्र तोमर 'निमाड़ी', मु.पो. दवाना, तह. ठीकरी, बड़वानी (मध्यप्रदेश)
- गुप्तेश्वर द्वारका गुप्त, ई-डी.-25, विद्युत मण्डल कॉलोनी, रामपुर, जबलपुर (मध्यप्रदेश)
- डॉ. हरिसिंह पाल, 684, इन्द्रा पार्क, नई दिल्ली-45
- डॉ. हरिप्रसाद दुबे, अवध साहित्य संस्कृति अकादमी, गयादेवी नगर, रामपुर भगन, फैजाबाद (उत्तरप्रदेश)
- कु. अनिता राजपूत, राजपूत छात्रावास के पीछे, महाराणा प्रताप कालोनी, हरदा (मध्यप्रदेश)
- डॉ. शेरसिंह बिष्ट, उपाचार्य, हिन्दी विभाग, कुमाऊँ विश्वविद्यालय परिसर, अल्मोड़ा (उतरांचल)
- डॉ. वीरेन्द्र कुमार सिंह, केन्द्रीय भूमि जलबोर्ड, भूजल भवन, एन.एच. IV फरीदाबाद (हरियाणा)
- बी.एल. द्विवेदी, 3, स्कूल रोड, चौबे कॉलोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
- शिवप्रसाद 'कमल', कल्पना मंदिर, चुनार, मिर्जापुर (उत्तरप्रदेश)
- निरंजन महावर, 26, सेन्ट्रल एवेन्यू, चौबे कॉलोनी, रायपुर (छत्तीसगढ़)
- अश्विनी केशरवानी, राघव, डागा कॉलोनी, चांपा (छत्तीसगढ़)
- गजानन वर्मा, 39 अलकापुरी कॉलोनी, उदयन मार्ग, फ्रीगंज-उज्जैन, (मध्यप्रदेश)
- डॉ. कीर्ति शर्मा, ई-3/323, अरेरा कॉलोनी, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- मृदुल, साहित्य निकेतन, रसलपुर, बघड़ा, समस्तीपुर (बिहार)
- डॉ. सुरेश मिश्र, ई-1/138 अरेरा कॉलोनी, भोपाल (मध्यप्रदेश)
- सुनील मिश्र, 13/27, साउथ टी.टी. नगर, भोपाल (मध्यप्रदेश)